UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180404

UNIVERSAL
LIBRARY

अन्धों आग

लेखक
सुमंगलप्रकाश

प्रकाशक
धारा प्रकाशन, पटना–३

मुख्य वितरक
पोस्टबाक्स ६७, इलाहाबाद

बिहार को-ऑपरेटिव प्रेस सुसाइटी लिमिटेड
पटना–३

सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

प्रथम संस्करण
१९५५

मूल्य
चार रुपये

पहला परिच्छेद

[१]

"चपरासी !" डिप्टी-साहब ने कड़क कर आवाज दी ।

"जी सरकार ?" बूढ़ा चपरासी दौड़ा हुआ आया और डिप्टी-साहब की लम्बी-चौड़ी शानदार मेज के एक ओर अदब से झुका हुआ खड़ा हो गया ।

डिप्टी-कलक्टर पंडित भगवतीचरण ने बिना उसकी ओर नजर उठाए हुक्म दिया—"बड़े मुंशी को भेज !........फौरन !"

और कुछ ही मिनटों के अन्दर बड़े मुंशी भी करीब-करीब उसी तरह दौड़ते-से आए और उसी तरह अदब से झुके हुए खड़े हो गए डिप्टी-साहब की मेज के नजदीक ।

"कौन है यह मुहम्मदअली......मुझे यह तार भेजने वाला ?" पंडित भगवतीचरण ने मुंशी जी की ओर एक तार फेंकते हुए, बिना उनकी ओर भी आंखें उठाए, कड़कती हुई आवाज में पूछा ।

जल्दी-जल्दी मुंशी जी ने अपनी ऐनक जेब से निकाल कर कानों पर चढ़ाई और और-भी जल्दी-जल्दी उस तार को पढ़ने लगे ।

"कौन है यह बदतमीज ?" इस बार पंडित जी ने अपनी भौंहों को ऊपर तक चढ़ा कर अपनी कठोर आँखों की तीक्ष्ण दृष्टि मुंशी जी के चेहरे पर स्थापित कर दी, मानो सारी बदतमीजी उन मुंशी जी की ही हो ।

"हुजूर कलक्टर साहब के खास बेरा हैं यह, हुजूर," बेहद सहमी
[illegible] अदब के साथ अर्ज किया ।
[illegible]धे मुझीको तार दे दिया...

मुझी पर हुक्म चलाने चला है ?" पंडित जी का पारा सातवें आस्मान तक जा पहुँचा था।

"हुज़ूर, ऐसा ही होता आया है......"

"जो होता आया है वही होगा अब भी ?" मुंशी की बात पूरी होने के पहले ही पंडित जी गरज उठे और उनके हाथ से वह तार छीन कर उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े करके रद्दी की टोकरी में डाल दिया।

यह तार भेजने वाला था गोरे कलक्टर मिस्टर मैकेंजी का बेरा, जिसने डिप्टी-कलक्टर पंडित भगवतीचरण को, जो हाल ही में तबादले के बाद इस हलके में नए-नए आए थे, कुछ हिदायतें भेजी थीं कलक्टर साहब के वहां के दौरे पर उनके ठहरने और खाने-पीने के इन्तजाम के सिलसिले में।

यह घटना कुछ ही दिन के अन्दर एक कहानी बन कर दूर-दूर तक मशहूर हो गई और तरह-तरह से बढ़ा-घटा कर जगह-जगह, दफ्तरों और कचहरियों में, सुनी-सुनाई जाने लगी और मुंशियों और क्लर्कों के मन में डिप्टी-कलक्टर पंडित भगवतीचरण के प्रति तरह-तरह के भाव जगाने का कारण बनी।

तहसीलदार से डिप्टी-कलक्टर बने पंडित भगवतीचरण को कुछ ही दिन हुए थे कि उनकी 'बदनामी' सारे सूबे में फैल गई थी। सारे सूबे में, अर्थात् सूबे के सरकारी हलकों में। पंडित भगवतीचरण की ऊपरवाली श्रेणी के ही अफसरों में नहीं, उनकी बराबरी के और नीची श्रेणी के भी अफसरों और मातहतों में।

ऊपरवालों की निगाह में पंडित जी का गुनाह था 'जी-हुजूरी' से उनका सख्त परहेज, सरकारी काम के अलावा किसी अफसर से कोई रब्त-जब्त न रखना, और न कुछ खुद लेना-लिवाना और न अपने हलके में अपने अफसरों के दौरों पर उनके ही पल्ले कुछ पड़ने देना।

और अपने ऊपर के अफसरों में अपनी इस 'बदनामी' पर [illegible] जी को फख्र था।

पर अपने इन गुणों के लिये पंडित जी अपनी बराबरी के और नीची श्रेणी के भी अफसरों में कम 'बदनाम' नहीं थे, और सुनते हैं कि ऊपरवाले किस्से को ही बहुत-कुछ इस बात का भेय था कि हिन्दुस्तानी डिप्टी-कलक्टरों की अपनी बिरादरी से भी पंडित जी अन्त तक खारिज ही रहे।

उपर्युक्त घटना से उस दिन पंडित जी के दफ्तर में एक तहलका मच गया था, क्लर्कों और मुंशियों में कितनी ही कानाफूसी हुई थी उस दिन। सारे दफ्तर का खयाल था कि इसका नतीजा मामूली नहीं होगा और पंडित जी को लोहे के चने चबाने पड़ जाएंगे। गोरे कलक्टर मैकेंजी के बेरे मुहम्मदअली का डर कचहरियों के मुंशियों और क्लर्कों पर ही नहीं, हिन्दुस्तानी डिप्टी-कलक्टरों तक पर हावी था।

बात सच भी निकली। उस दौरे में ही कलक्टर साहब की नाराजी उनके रुख से साफ प्रकट हो गई। पर पंडित जी का काम आईने की तरह साफ था, उनकी मुस्तैदी अचूक थी। पंडित भगवतीचरण को लोहे के चने जरूर चबाने पड़े, पर शायद उनके दांत भी इस्पात के बने थे और लोहे के ही चने चबाने की उनकी आदत थी। और मुहम्मद-अली बेरा के आका के लिये भी उनके खिलाफ सहसा कुछ कर सकना आसान नहीं साबित हुआ। पर पंडित जी के साथ कलक्टर मैकेंजी की जो दुश्मनी उस दिन से शुरू हुई वह अन्त तक नहीं गई और जब मैकेंजी कमिश्नर हो गया तब भी उसने पंडित जी का पीछा नहीं छोड़ा। हर तरह उसने पंडित जी को दबाने की, उन्हें किसी न किसी तरह किसी मामले में फँसा देने की कोशिश जारी रखी, और यद्यपि पंडित जी कभी भी उसकी पकड़ में नहीं आ सके, मगर उनकी तरक्की बहुत-कुछ मैकेंजी के ही कारण रुक गई, और उनसे कहीं कम प्रतिभा और कहीं कम कार्य-कुशलता लेकर भी उनके अन्य हिन्दुस्तानी सहयोगी धीरे-धीरे उनसे कहीं आगे बढ़ गए।

पर उन सहयोगियों में से जिस-किसीको पंडित जी ने जब-कभी

याद किया तब केवल एक ही शब्द उनके पास रहता था उसका स्मरण करने के लिये—'वह गधा !'

और जिस तरह पंडित जी अपने अफसरों की जी-हुजूरी और खुशामद से कोसों दूर रहते थे और अपने हलके में होने वाले उनके दौरों में उनकी कोई भी नाजायज आमदनी न होने देकर उन्हें हमेशा ही नाराज पर नाराज करते चले जाते थे, उसी तरह दूसरी ओर अपने मातहतों के 'हकों' पर भी चोट पहुँचाने में वह कभी कोई कसर नहीं उठा रखते थे। मातहतों पर उन्होंने कभी दया नहीं दिखलाई। वे स्वयं किसी के आगे झुकना नहीं जानते थे, पर जिन पर उनका बस चल सकता था उनकी स्वाधीन इच्छा का अस्तित्व उनके मस्तिष्क में ही नहीं था। मातहतों को जब डाटते और दुतकारते थे तब उन्हें कुत्तों से भी गया-बीता समझते थे और बिना किसी की हैसियत देखे गाली-गलौज ही नहीं, कभी-कभी लात-घूंसों तक पर उतर पड़ते थे। इसके लिये भी कभी-कभी उन्हें मुसीबत में पड़ना पड़ा, पर यह आदत भी उनकी अन्त तक नहीं गई।

और जो थोड़ी-बहुत कसर बाकी रह भी जाती थी, वह पूरी तरह से, सूद-ब्याज समेत, घर में पूरी की जाती थी—बाल बच्चों और स्त्री के साथ।

[२]

पंडित भगवतीचरण से जिस तरह उनके मातहत थर-थर कांपते थे, उसी तरह उनके घर के लोग—उनकी स्त्री और बच्चे ही नहीं, एक हद तक उनकी बूढ़ी माँ भी। और जिस तरह घर के बाहर वह 'पंडित जी' कहलाते थे, उसी तरह घर के अन्दर भी। 'बाबूजी', 'पिता जी', 'चाचा जी', आदि घनिष्ट सम्बोधन उनके कानों को बड़े कर्कश लगते थे, और अपने बच्चों के लिये भी 'पंडित जी' ही बने रहना उन्हें पसन्द

था। यहाँ तक कि उनकी माँ भी अब उन्हें 'भगवतिया' कहने में हिचकने लगी थीं, और अक्सर—कुछ तो परिहास में, पर कुछ अपने बेटे के आतंक से भी—'पंडित' कह कर ही उन्हें सम्बोधित करने लग गई थीं।

पंडित जी ने अपने किसी भी बच्चे को कभी प्यार से दुलराया हो, उसे चूमा हो, या गोद तक में लिया हो, यह कभी किसी ने नहीं देखा। और उनके बच्चे भी उनकी ललाट की सिकुड़ी हुई रेखाओं को मिटते या उनकी चढ़ी हुई भौंहों को उतरते बहुत ही कम देखते थे। उनके चेहरे पर मुसकराहट खिलती, घर वाले तो दूर, उनके दोस्तों तक ने नहीं देखी। मुसकराते वे कभी नहीं थे। हां, हँसते जरूर थे—एक गगनभेदी अट्टहास के साथ। और इस अट्टहास में या तो विद्रूप की ध्वनि होती थी, और या तृप्त अहंकार की।

उन्हें देख कर दुर्वासा, विश्वामित्र और परशुराम का स्मरण हो आता था। गौर वर्ण, हृष्टपुष्ट बलिष्ठ देह, ऊंचा कद, और छाती तक लटकती हुई घनी दाढ़ी, जिसके काले-स्याह बालों के बीच कहीं-कहीं चांदी के बारीक तारों-से सफेद बाल चमकने लग गए थे। ऊंचा माथा; ऊंची नुकीली नाक; न छोटी, न बड़ी, पर चमकती हुई तेज आँखें, जिनकी दृष्टि जिस पर पड़ जाती उसे भीतर तक छेद कर मानों आर-पार निकल जाती। बादलों की कड़क सी आवाज और आंधी-तूफान सी उपस्थिति। जिधर निकल जाते थे तहलका-सा मच जाता था।

पंडित भगवतीचरण का जन्म जिस साल हुआ वह साल हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर हो चुका है। १८५७ का साल। 'गदर' का साल। अथवा अंग्रेजों के आधिपत्य और बलात्कार के सामने आत्मसमर्पण करने के पहले हिन्दुस्तान की आखिरी लड़ाई का वर्ष। मुगल-साम्राज्य के अधःपतन से लाभ उठा कर अंग्रेज बनियों ने जब अपने नाखून और दांत दिखाकर हिन्दुस्तान पर अपने साम्राज्य का विस्तार करना शुरू किया तब पुरानी दुश्मनी भूल कर एक बार मुगलों और मराठों, पठानों

और राजपूतों ने एक होकर हिन्दुस्तान को सात-समुन्दर-पार के बनियों के हाथ बिक जाने से रोकने की आखिरी कोशिश में खून की नदियाँ बहा दीं। भारत में अंग्रेजी शासन की नींव पक्की होने के पहले भारतीय आत्म-सम्मान, भारतीय क्षत्रियत्व, भारतीय राष्ट्रीयता का वह अन्तिम प्रदर्शन था।

पर अंग्रेजों की जीत हुई, भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ जम गई, भारतीय आत्म-सम्मान की भावना का खून हो गया। ब्राह्मणों के ब्राह्मणत्व की, क्षत्रियों के क्षत्रियत्व की मर्यादा का धीरे-धीरे लोप होने लगा। पंडित भगवतीचरण के पिता ने मुगल-साम्राज्य के अन्तर्गत अपने सौम्य ब्राह्मणत्व की जिस मर्यादा को कठिनता से सुरक्षित रखा था उसकी रक्षा करना अब उनके लिये असंभव हो चला। मुसलमानी प्रभाव से प्रभावित बुलन्दशहर जिले के अपने गाँव में फारसी-अरबी साहित्य और संस्कृति के प्रभाव से बचने के लिये वह काफी छोटी उम्र में भाग कर काशी चले गए थे और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित बनकर और ब्राह्मण-संस्कृति से और भी सुसंस्कृत होकर युवावस्था में अपने गाँव वापस लौटे थे। मुगल-साम्राज्य के अधःपतन के और दक्षिण में मराठों और उत्तर में सिखों की उन्नति के साथ-साथ उनके गांव का भी वातावरण बदलने लगा था, और काशी से लौटने पर यहां उन्हें अपने लिये काफी अच्छा क्षेत्र मिला। धीरे-धीरे जिले भर में उनके पांडित्य और ब्राह्मणत्व का सम्मान होने लगा।

पर 'गदर के साल' पैदा हुआ उनका एकमात्र जीवित पुत्र 'भगवतिया' मानों उनका सिर नीचा करने के लिये ही पैदा हुआ था। उसकी प्रकृति उनमे सर्वथा विपरीत थी। उद्धत, उद्दण्ड, अत्यन्त क्रोधी और लड़ाका। बचपन से ही वह गाँव-भर में 'छुट्टा साँड़' के नाम से प्रसिद्ध हो चुका था। सारा गाँव उसके उत्पातों से डरता था। मल्ल-युद्ध में वह उम्र में अपने से बड़े-बड़े दो-तीन बच्चों को एक-साथ पछाड़ कर रफू-चक्कर हो जाता था; आम के बागों के सबसे-मीठे फल देने वाले पेड़ों

में उसके कारण एक भी फल बचने नहीं पाता था; दस-बारह बरस की उम्र में ही गाँव की बहन-बेटियों के साथ वह छेड़-छाड़ करने लगा था। धीरे-धीरे उसकी यह 'कीर्त्ति' आसपास के गाँवों तक और फिर तहसील भर में फैल गई।

भगवतीचरण के पिता पंडित श्रीधर यह सब देखते-सुनते थे और अपनी प्रकृति से विवश होकर भीतर ही भीतर घुलते जाते थे। अपनी आँखों के आगे वे अपनी सुकीर्त्ति पर कलंक लगता, अपनी आशाओं पर पानी फिरता देख रहे थे। उनकी कितनी आशा थी कि उनकी यह बुढ़ापे की संतान, सात-सात बच्चों के बाद जीने वाला उनका यह एकमात्र पुत्र उनके गौरव को बढ़ाएगा, जिले भर में ही नहीं, सारे देश में उसका पांडित्य और ब्राह्मणत्व चमकेगा।

पर गुण भगवतीचरण में शायद एक ही निकला। उसकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी, वह अपने पिता से भी कहीं अधिक मेधावी था। पंडित श्रीधर ने उसे जो-कुछ पढ़ाया वह सब उसने बड़ी सरलता के साथ पढ़ लिया, जो पाठ याद करने में उन्हें अपने विद्यार्थी-काल में कई दिन लग जाते थे, वह उसे कुछ ही घण्टों में कण्ठस्थ हो जाते। पर कठिनाई यही थी कि उसे पढ़ने-लिखने का शौक नहीं था, और कभी भी जमकर एक साथ कुछ घण्टे वह घर नहीं बैठता था। और जब अचानक एक दिन पढ़ने-लिखने की उसकी इच्छा जगी भी, तब संस्कृत विद्या के अध्ययन की ओर उसकी प्रवृत्ति न होकर तहसीली मिडिल स्कूल में भरती होने का उसने स्वयं ही निश्चय कर डाला। पिता ने रोका, माता रोई, पर भगवतिया किसी तरह भी न माना, और एक रोज घर छोड़ कर निकल भागा। अन्त में माता-पिता की हार हुई और तहसील के मिडिल स्कूल में उसका नाम लिख गया।

और जब पढ़ने-लिखने में एक बार सहपाठियों के साथ प्रतियोगिता का भाव जाग्रत हो गया तब तो भगवतीचरण आश्चर्यजनक वेग से उन्नति करने लगा। चार साल में ही उसने मिडिल पास कर लिया

और इतनी प्रतिष्ठा के साथ कि शिक्षा-विभाग ने उसे ऐंट्रेंस पास करने के लिये वजीफा देना मंजूर कर लिया। उस समय भगवतीचरण की उम्र अठारह साल की थी।

और उसी साल पंडित श्रीधर का देहान्त हो गया। भगवतीचरण उस समय उनकी इच्छा के विरुद्ध अंग्रेजी स्कूल में शहर में दाखिल हो चुका था। मृत्यु से पहले अपने एकमात्र पुत्र को देखने की इच्छा तक उन्होंने नहीं प्रकट की।

जब पिता के श्राद्धादि संस्कार के लिये भगवतीचरण घर आया, तब गाँव वालों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि पिता की स्मृति में उसने एक बूंद आँसू नहीं टपकाया, और न अपनी भाव-भंगी तथा मुद्रा से ही किसी प्रकार यह प्रकट किया कि उसे शोक हुआ है। और उसकी नालायकी में किसी को जरा भी शक नहीं रह गया।

पर भगवतीचरण को इसकी परवा नहीं थी कि लोग उसे लायक समझते हैं या नालायक। उसके लिये इतना ही काफी था कि वह खुद अपने को लायक समझता है। न उसने बचपन में अपने माँ-बाप की ही परवा की थी, और न अब गाँव वालों और पुराने बुजुर्गों की ही की। जिस तरह चुपचाप आकर उसने पिता का श्राद्ध-तर्पण किया था, उसी तरह चुपचाप, वह कार्य समाप्त होने पर, शहर वापस चला गया और उतनी ही लगन के साथ पढ़ने लगा और दो बरस की कड़ी मेहनत के बाद एण्ट्रेंस भी उतनी ही प्रतिष्ठा के साथ पास कर लिया।

एण्ट्रेंस के बाद भगवतीचरण ने, अपनी माँ की इच्छा के विरुद्ध, कौलेज की पढ़ाई भी पूरी की, जिसके लिये पढ़ने के साथ-साथ कभी ट्यूशन करके कुछ कमाना भी पड़ा।

जिस वक्त उसने बी० ए० पास किया, उसकी उम्र चौबीस साल की थी, और तब तक वह दो बच्चों का बाप हो चुका था, और कुछ ही महीने के बाद तीसरे बच्चे का भी। उस समय की प्रथा के अनुसार उसकी शादी तभी हो चुकी थी जब वह बिलकुल बच्चा ही था और गाँव

में ही घर पर पढ़ता था, और अधिकांश समय खेल-कूद और शरारत में बिताता था। और सत्रह वर्ष की उम्र में वह बाप बन चुका था!

पर अपने इतने बड़े परिवार की भगवतीचरण ने बी० ए० पास करने से पहले जरा भी चिंता नहीं की। पिता जो-कुछ छोड़ गए थे वह इस समय तक मुश्किल से उसकी माँ के भरण-पोषण के लिये काफी हुआ, और इसलिये उसकी स्त्री को विवश होकर अपने बच्चों के साथ अपने पिता के यहाँ रहना पड़ा।

किन्तु बी० ए० पास करने के बाद पंडित भगवतीचरण के परिवार का अर्थ-संकट भी चला गया, और उनका गौरव भी बढ़ गया। पहले तो पंडित भगवतीचरण ने तीन-चार साल तक एक हाई-स्कूल में मास्टरी और हेड-मास्टरी की, पर वह काम उन्हें रुचा नहीं और वे युक्तप्रान्तीय सरकार के शासन-विभाग में चले गए और बत्तीस वर्ष की उम्र में डिप्टी-कलक्टर हो गए।

गाँव वालों की निगाह में अब वही नालायक भगवतिया 'बहुत बड़ा हाकिम' हो गया था—पंडित श्रीधर का लायक ही नहीं, 'बहुत लायक' सपूत। पर पंडित भगवतीचरण की कृपा-दृष्टि अब उन्हें चाह कर भी नहीं मिल सकती थी। अपने गाँव से उन्होंने अपना सम्बन्ध सदा के लिये तोड़ लिया था।

यों पंडित भगवतीचरण बचपन से ही उद्दण्ड और अहंकारी थे, पर डिप्टी-कलक्टर होने के बाद उनकी यह प्रकृति और भी स्फुटित हुई। इसका कारण यह नहीं था कि एक दरिद्र वंश में जन्म लेकर इतने ऊंचे सरकारी पद पर पहुँचने के कारण उनका दिमाग फिर गया। यों, डिप्टी-कलक्टरी उस समय, ईसवी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, उच्चशिक्षा-प्राप्त भारतीय नवयुवकों की महत्वाकांक्षा की ऊंची से ऊंची सीढ़ी थी और वहां तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दुस्तानियों के सिर फिर जाया करते थे; पर पंडित भगवतीचरण की अपरिमित महत्वाकांक्षा के लिये डिप्टी-कलक्टरी एक ऐसी कृत्रिम सीमा थी जहां पहुँच कर अंग्रेजों के साथ

होने वाला पक्षपात उनके लिये बहुत ही अधिक स्पष्ट और मार्मिक हो उठा था। 'गदर' के साल पैदा हुए पंडित जी मानो उस साल रौंदे हुए भारतीय आत्मसम्मान के तेजस्वी प्रतीक बन उठे थे। दुर्बल प्रकृति को ही कुचल कर दबाया जा सकता है; तेजस्वी प्रकृति दबाई जाने पर क्षुब्ध होकर और भी प्रचण्ड हो उठती है।

सौम्य विनीत ब्राह्मणत्व को पंडित जी भारत की पराधीनता का कारण मानते थे, पर जब डिप्टी-कलक्टरी तक पहुँच कर उनकी आगे की प्रगति पाश्चात्य गोरे चमड़े की रुकावट ने रोक दी और उनके अहंकार पर चोट पड़ी तब उन्होंने भारतीय दर्शन की सर्वोच्चता की शरण लेकर अपने बड़प्पन को छोटा नहीं होने दिया, अंग्रेजों के आगे अपनी आध्यात्मिक महानता के अहंकार से अपने को बड़ा स्वीकार करके मानसिक संतोष प्राप्त किया। और तबसे वे उपनिषदों और गीता के अध्ययन में लग गए।

और साथ ही साथ अंग्रेजों के आगे न झुकने के प्रतीक-स्वरूप उन्होंने न कभी 'हैट' लगाया और न 'नेकटाई'। अन्त तक उनकी सरकारी पोशाक रही—पतलून के ऊपर बन्द-गले का कोट और सिर के ऊपर सफेद साफा।

[३]

अंग्रेजों या गोरों के प्रति इस सहज-द्वेष के कारण पंडित जी की सरकारी नौकरी कितनी ही बार खतरे में पड़ी दिखाई दी, पर ऐसे मौकों पर उन्होंने अपने आत्म-सम्मान के आगे उसे कोई महत्व नहीं दिया, और एक बार गोरों के प्रति उनके इस विद्वेष ने उन्हें एक ऐसा पुरस्कार दिया जिसकी उन्होंने कभी आशा नहीं की थी और जिसके कारण एक प्रभावशाली गोरे के साथ उनकी स्थायी मैत्री स्थापित हो गई। और इसी मैत्री के कारण आगे कई बार उनकी जाती-जाती नौकरी रह-रह गई।

बात यों हुई। उन दिनों पंडित जी का बंगला जहां था, गोरी पलटन की छावनी वहां से ज्यादा दूर नहीं थी। यह डर हमेशा ही बना रहता था कि शराब के नशे में चूर दो-चार गोरे किसी दिन भी बंगले में घुस आएं और न-जाने क्या-क्या उत्पात करें, किस-किसकी इज्जत लें। सूरज छिपने से पहले से ही मां-बहू-बेटियों का बगीचे में आना पंडित जी ने बन्द करा दिया था और नौकरों के क्वार्टरों के लिये भी कड़ी ताकीद थी कि बाहर सड़क पर से शाम होने पर उनकी भी कोई औरत कहीं न दिखाई दे। कई बार शाम होने के बाद सामने की सड़क पर जाते हुए पिये-हुए गोरों का अट्टहास सुनकर पंडित जी की भौंहें तन चुकी थीं और उनका खून खौल-खौल कर रह गया था, और अपनी पिस्तौल और बन्दूक वह भरी-हुई तैयार रखने लग गए थे।

एक दिन की बात है, सूरज कबका छिप चुका था पर चांद की रोशनी काफी तेज थी। गरमियों के दिन थे और पंडित जी ऊपर छत पर आराम कर रहे थे। सहसा नौकरों के क्वार्टरों की ओर से एक स्त्री का आर्त्तनाद सुनाई दिया, और "सरकार बचाइये", "बचाइये सरकार" की नौकरों की आवाज। पंडित जी एकदम उछल पड़े और मानों एक ही छलांग में सीढ़ी पार करके नीचे आ पहुँचे।

जब छः गोलियों का भरा रिवौल्वर अपने दाहिने हाथ में ताने हुए पंडित जी नौकरों के क्वार्टरों में पहुँचे तब तक स्त्री का आर्त्तनाद और नौकरों का शोरगुल सब खत्म हो चुका था। सिर्फ एक कोठरी का दरवाजा खुला था, और उसके अन्दर अँधेरा ही अँधेरा था; बाकी कोठरियां अन्दर से बन्द थीं।

"कौन है?" पंडित जी कहीं किसी आदमजात को न पाकर कड़क उठे।

धीरे से एक कोठरी का दरवाजा खुला और उसमें से चपरासी निकला; फिर दूसरी कोठरियों के दरवाजे खुले और उनमें से भी एक-एक दो-दो करके कई नौकर, उनकी औरतें, कई बच्चे निकल पड़े।

"तीन गोरे थे सरकार !" कांपते हुए चपरासी ने हाथ जोड़ कर कांपती आवाज में कहा।

"कहां थे ? क्या किया उन्होंने ? बताते क्यों नहीं हो ?" पंडित जी का पारा सातवें आसमान पर था।

"यहीं घुस आए थे सरकार", "राजाराम की औरत को खींच ले गए सरकार", "हम सबको पीटा है सरकार", "बड़ा जुलुम हुआ है सरकार"—सबने एक साथ फरियाद की, औरतें रोने लगीं, बच्चे चीखने लगे। राजाराम पंडित जी के सरकारी चपरासी का ही नाम था, जो एक दूसरे नौकर की कोठरी में से सबसे पहले निकला था। बिलकुल नौजवान, हट्टा-कट्टा, मिर्जापुरी पहलवान था; और सबसे ज्यादा वही कांप रहा था—क्रोध से नहीं, भय से।

पंडित जी की इच्छा हुई कि अपने रिवौल्वर की पहली गोली का शिकार उसी नामर्द को बनाएँ, पर जो शिकार निकल गए थे उनका खून करने के लिये पंडित जी अधीर हो उठे, और उस राजाराम की औरत को बचा लाने के लिये भी।

"किधर गए हैं सब ? चलो, ढूँढ़ो सब मिल कर, नहीं तो एक-एक की जान ले लूंगा," पंडित जी गरज कर बोले और खुद सबके आगे-आगे बंगले का फाटक पार करके सड़क पर आ गए। वहाँ से सब लोग अलग-अलग दिशाओं में खोजने के लिये दौड़ा दिये गए।

चपरासी राजाराम के साथ पंडित जी एक ओर को थोड़ी ही दूर गए होंगे कि पास के सूखे नाले में से 'गों-गों' की एक आवाज आई, ठीक वैसी ही जैसी कि मुंह में कपड़ा ठुँसा रहने पर भी चिल्लाने की कोशिश करने पर आती है। और दौड़ कर पंडित जी नाले के अन्दर जा घुसे।

तेज चांदनी में तीनों गोरे और एक औरत साफ दिखाई दे गए। "हाथ ऊँचे करो !" सहसा उनके बिलकुल ही निकट पहुँच कर पंडित जी ने कड़कती हुई आवाज में अंग्रेजी में कहा, और बिजली की सी

तेजी के साथ तीनों गोरे हाथ ऊंचे करके एक कतार में पंडित जी के सामने खड़े हो गए। पंडित जी को आशातीत सफलता मिली; उन्होंने यह कल्पना तक नहीं की थी कि वह सबके-सब निहत्थे होंगे और इस तरह चुपचाप आत्मसमर्पण कर देंगे।

दो-तीन नौकर और इस वक्त तक आ गए थे, और पंडित जी ने तीनों गोरों को अंग्रेजी में हुक्म दिया उन नौकरों के पीछे-पीछे चलने का, और नौकरों को हुक्म दिया उनके आगे-आगे चलने का, और आप खुद गोरों के पीछे रिवौल्वर ताने हुए चले। और उनके पीछे-पीछे सिकुड़ी-सिकुड़ाई आ रही थी राजाराम की औरत।

तीनों गोरे पंडित जी के गुसलखाने में लाए गए और अन्दर जाकर उनकी मरम्मत शुरू हुई। राजाराम चपरासी को पंडित जी ने हुक्म दिया तीनों गोरों के सिरों पर बालटियाँ भर-भर कर पानी डालने का, और रिवौल्वर लिये पंडित जी गुसलखाने के दरवाजे पर खड़े हो गए। नौकर कुएँ से पानी भर-भर कर लाने लगे और राजाराम बालटियां भर-भर कर लगा उन वर्दीधारी गोरों के ऊपर उँड़ेलने। धीरे-धीरे शराबियों की लड़खड़ाहट बन्द हो चली, उनकी आवाज ज्यादा स्वाभाविक हो आई और उन्होंने माफी मांगना और गिड़गिड़ाना शुरू कर दिया।

पर पंडित जी का क्रोध शांत नहीं हुआ था। उन्होंने उन्हें पीटा नहीं यही आश्चर्य की बात थी; शायद चुन-चुन कर उन्हें गालियाँ देने में जो उन्हें केवल अंग्रेजी का ही प्रयोग करना पड़ रहा था उसीमें उनकी सारी शक्ति केन्द्रीभूत हो गई थी, क्योंकि असभ्य अंग्रेजी का उन्हें महावरा नहीं था, और भद्दी से भद्दी गालियों की उन्हें खोज थी।

अन्त में जब गोरों को स्नान कराते-कराते सभी थक गए और पंडित जी के लिये भी यह क्रिया नीरस हो उठी तब गोरों को कपड़े उतारने का हुक्म हुआ—बदन का एक-एक कपड़ा उतार डालने का। और इस हुक्म का पंडित जी ने अक्षरशः पालन कराया। बंगले में उन दिनों कुछ

काम लगा हुआ था और उसी दिन तारकोल का कोई काम हुआ था। वही कनस्तर लाया गया और एक कपड़ा उस कनस्तर में भरे रस से तर कर-करके राजाराम ने एक-एक कर उन गोरों को अफ्रीका के हबशियों से भी ज्यादा काला बना कर छोड़ा; शरीर का एक अंग भी उनके गोरेपन का प्रमाण देने के लिये बाकी नहीं बचा।

और इसके बाद अपने उन तारकोल-मण्डित शरीरों पर आबनूस से भी ज्यादा काले उन गोरों को अपनी-अपनी पूरी वर्दी पहनने का हुक्म हुआ और उसके बाद पंडित जी ने वहीं कागज-कलम-दावात मंगा कर कागज के छोटे-छोटे तीन टुकड़ों पर अंग्रेजी में लिखा—"गोरों को नितांत काला करने की क्रिया में प्रवीण—पण्डित भगवतीचरण, डिप्टी-कलक्टर", और एक-एक पिन से एक-एक कागज पण्डित जी ने एक-एक गोरे की वर्दी की छाती पर नत्थी करा दिया।

इसके बाद तीनों गोरों के लिये दरवाजा खोलकर बाहर जाने का रास्ता देते हुए पण्डित जी ने सहसा अपनी भाषा की शैली बदल कर अत्यन्त सभ्यतापूर्वक और क्रोध-रहित गंभीर स्वर में उनसे कहा—"और अब महाशयगण, आप लोग अपनी छावनी को तशरीफ ले जा सकते हैं, और अगर आपका यह काला रंग छुटा दिया जाय और उसके बाद भी आपका गोरा चमड़ा प्रकट हो जाय तो उसके बल पर अगर आप मेरी डिप्टी-कलक्टरी, मेरी प्रतिष्ठा और मेरी सम्पत्ति ही नहीं, मेरा यह काला शरीर भी इस दुनिया में न रहने दें, तो इसके लिये मुझे अफसोस नहीं होगा।"

किये पर पछताना पंडित जी की प्रकृति में नहीं था, पर नींद उन्हें सारी रात नहीं आई। जान-बूझ कर बर्रों के छत्ते में हाथ डाला था; नतीजा तो भोगना ही पड़ेगा। नौकरी जा सकती है, प्रतिष्ठा धूल में मिला दी जाय, और न-जाने क्या-क्या हो—कौन कह सकता है? पर इन परिणामों की उन्हें जरा भी परवा है, सारी रात न सो सकने पर भी यह पंडित जी ने किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया, और दूसरे

दिन सबेरे से ही उनका मिजाज जो बिगड़ना शुरू हुआ तो शाम तक बिगड़ता ही चला गया। चपरासी राजाराम पर सबसे ज्यादा गुस्सा था, जिसकी सारी पहलवानी निहत्थे गोरों के आगे गायब हो गई और जो अपनी ही जवान औरत को गोरों के हाथ सौंपने के लिये दूसरे की कोठरी में बन्द हो गया। बात-बात पर राजाराम को अगले दिन पंडित जी की गालियाँ खानी पड़ीं और एक बार तो उनकी ठोकर भी उसकी पीठ पर कस कर पड़ी। घर में भी स्त्री और बच्चों की उस दिन खैर नहीं रही; और कचहरी में अमलों को उस दिन पंडित जी के असाधारण क्रोध का पात्र बनना पड़ा।

शाम को थके-थकाए पंडित जी नंगे-बदन आरामकुरसी पर लेटे छत पर आराम कर रहे थे; नौकर का एक लड़का पीछे खड़ा ताड़ का एक बड़ा पंखा झल रहा था; और बादाम की ठंडई और बेल के शरबत के एक-एक गिलास पंडित जी ने अभी पीकर खाली किये थे—कि चपरासी राजाराम ने सामने आकर एक कार्ड पेश किया। हाथीदांत-से चमकते हुए सफेद छोटे-से कार्ड पर अंग्रेजी की खूबसूरत लच्छेदार लिखावट में छपा हुआ था—कर्नल डब्लू० एच० किंग।

कोई न कोई आफत जल्द ही आएगी यह पंडित जी जानते थे, पर इतनी जल्द आएगी और छावनी का सबसे बड़ा अफसर खुद आ धमकेगा, यह पडित जी ने नहीं सोचा था।

"कहना, थोड़ी देर में आते हैं," पंडित जी ने चपरासी को कठोर स्वर में जवाब दिया, और जब वह चल दिया तब उसे रोक कर फिर कहा, "कमरे में रोशनी रखवा दे; पर पंखा नहीं चलवाना अभी।"

सिर झुकाए राजाराम चला गया।

पण्डित जी का नियम था कि घर पर उनसे मिलने आने वाले अंग्रेजों को काफी देर तक इन्तजार कराकर वे उनसे मिलें। जो इन्तजार करने में अपनी हेठी समझते थे वे वापस चले जाते थे, पर पण्डित जी को इसकी परवा नहीं थी। आज भी पण्डित जी ने कपड़े पहनने-पहनाने

में जरूरत से काफी ज्यादा देर की; जब छत्ते में हाथ दिया ही है तो फिर दो-दो हाथ भी क्यों न हो जायं ?

पण्डित जी का 'ड्रौइंग रूम' साधारण सा ही था। एक आराम-कुरसी, तीन-चार साधारण कुरसियाँ, बीच में एक बड़ी गोल मेज, दीवाल के सहारे छोटी मेज पर एक बड़ा लैम्प, जिसमें दो बत्तियाँ जल रही थीं और दूधिया ग्लोब चढ़ा हुआ था। एक बड़ा पंखा भी ऊपर लगा था, जिसकी डोरी बरामदे की ओर के दरवाजे के ऊपर चौखट छेद कर बाहर चली गई थी। दरवाजों पर परदे पड़े थे, और खिड़कियाँ खुली हुई थीं।

कोट-पतलून पहने, नंगे-सिर, पण्डित जी जब बगल के एक कमरे के दरवाजे से परदा हटा कर 'ड्रौइंग-रूम' में दाखिल हुए तब उनके चेहरे पर शिष्ट गंभीरता थी। "गुड-ईविनिग, कर्नल !" अन्दर कदम रखते ही पंडित जी ने कृत्रिम मुसकराहट के साथ अभ्यागत का अभिवादन किया। गोरा अफसर भी पण्डित जी को देखते ही खड़ा हो गया, और अपनी कुरसी छोड़ कर उसी तरह की कृत्रिम मुसकराहट के साथ आगे बढ़कर उसने "गुड-ईविनिंग" कह कर पण्डित जी से हाथ मिलाया।

ऊँचे कद, लम्बे-चौड़े डीलडौल और अधेड़ उम्र का गोरा था, दाढ़ी-मूछें सफाचट, और अपनी पूरी वर्दी पहने। सारा चेहरा पसीने से नहा रहा था और ठोड़ी पर से एक-एक बूंद रह-रह कर गिर पड़ती थी।

बीच की गोल मेज के इधर-उधर एक-एक कुरसी पर दोनों के बैठ जाने पर पण्डित जी ने मानों सहसा अभ्यागत के चेहरे के पसीने पर दृष्टिपात करके कहा—"उफ, कितनी जबर्दस्त गर्मी है; आप तो बिलकुल नहा ही रहे हैं पसीने से !" और फिर सहसा ऊपर छत से लटके हुए पंखे की ओर आँखें उठा कर, मानों अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए हों, बोले—"ओ, हे ईश्वर, पंखा बन्द ही है; और आपको इतनी देर इसी तरह बैठना पड़ा।.....बहुत लज्जित हूँ,.....चपरासी ! पंखा !..... अभी तक क्यों नहीं चलाया पंखा ?....." और फिर, मानों अब

उन्हें खयाल आया हो कि अभ्यागत को उन्होंने बहुत देर तक रोका था, कृत्रिम नम्रता के साथ बोले—"आपको शायद बहुत देर रुकना पड़ा.....?"

"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं है....." अभ्यागत ने भी अपनी अप्रत्याशित नम्रता से पंडित जी को परेशानी में डाल दिया।

"बात यह है," गोरे कर्नल की रोकबन्दी की किसी कोशिश को पहले से ही बेबुनियाद करने की गरज से बातचीत का सिलसिला साधारण से साधारण दिशा में अग्रसर करते हुए पंडित जी ने कहा, "बात यह है कि इस गरम देश में रहने के कारण हम लोग घर पर गरमियों में करीब-करीब बिलकुल नंगे ही बदन रहते हैं। और इसलिये इतने सारे कपड़े," पंडित जी ने अपने कोट-पतलून को इशारे से दिखाते हुए कहा, "इतने सारे कपड़े पहनना कुछ हँसी-खेल नहीं है, काफी वक्त लग जाता है।" और कुछ हँसते हुए इतना और जोड़ दिया, "और फिर, हम लोगों का ऐसी तंग पोशाक पहनने का अभ्यास भी कम है, इसलिये पहनने में और भी ज्यादा देर लग जाती है।"

गोरा कर्नल भी हँसे बिना नहीं रह सका।

इसके बाद कुछ क्षण चुप्पी रही, और ऐन उसी वक्त जब कि कर्नल कुछ शुरू करने जा ही रहा था पंडित जी फिर बोल उठे—"देखिये, कैसी अजीब बात है कि छः महीने से ज्यादा मुझे यहाँ आए हो गया, और आप तो यहाँ मुझसे पहले से ही होंगे, फिर भी आज से पहले हम लोग एक-दूसरे से नहीं मिल सके।"

"निश्चय ही, बड़े दुःख की बात है यह," कर्नल ने भी समर्थन किया।

"कितने दिन हो गए आपको इस छावनी में आए?" पंडित जी ने मानों बड़े कुतूहल के साथ पूछा, मानों यह मुलाकात एक दोस्ताना मुलाकात है, और कर्नल किंग मानों डिप्टी-कलक्टर पंडित भगवतीचरण से यों ही मिलने आए हैं, किसी विशेष घटना के कारण नहीं।

"कोई डेढ़ साल हो गया मुझे यहाँ," अभ्यागत ने जवाब दिया।

इसके बाद शायद तुरन्त ही वह कुछ और कहने वाले थे कि पंडित जी ने उन्हें मौका न देकर खुद ही कह डाला—"सचमुच मुझे बड़ा ही अफसोस है कि पहले आप मेरे यहाँ तशरीफ लाए और हमारी पहली मुलाकात आपके घर पर नहीं हुई।"

"ओह नहीं-नहीं.....यह क्या बात है !....." कर्नल ने शिष्टता और तहजीब की मूर्त्ति बन कर अपना फर्ज अदा किया।

"तो आज किसी खास वजह से आपने कृपा की?" पंडित जी ने मर्म की बात भी अपनी ही ओर से शुरू करना उचित समझा।

"जी हाँ," कर्नल ने तुरन्त ही गंभीरता धारण करके कहा, "दरसल मैं आपके पास इसलिये आया हूँ कि कल रात को आपके बंगले में हमारी पल्टन के तीन सैनिकों का घोर अपमान होने की एक निजी रिपोर्ट मुझे मिली है।"

"निजी रिपोर्ट?" पंडित जी ने भी सहसा एक कठोर व्यंग्यात्मक गम्भीरता धारण करते हुए कहा, "और शायद आप भी निजी तौर पर ही मेरे पास आए हैं?"

"आपको क्या समझने में सहूलियत होगी?" जरा मुसकराते हुए कर्नल ने पूछा।

"मेरी सहूलियत?" पंडित जी ने विद्रूप-कठोर स्वर में कहा, "मेरी सहूलियत का सवाल नहीं है कर्नल, आपकी नीयत का सवाल है। हां, इतना कह सकता हूँ कि अगर आप निजी तौर पर नहीं आए हैं तो आपको यों ही वापस चले जाना पड़ेगा।.....आप सरकारी तौर पर मुझसे लिखा-पढ़ी कीजियेगा, या और ऊपर से दबाव डाल कर जो चाहे कर लीजियेगा।" और इतना कहते-कहते पंडित भगवती-चरण का चेहरा तमतमा उठा।

पर पंडित जी ने अपने अनुमान से विपरीत देखा कि कर्नल का गंभीर चेहरा और कठोर न होकर एकदम स्निग्ध हो उठा है और उस पर हलकी-सी मुसकराहट खेल गई है।

सहसा कुरसी छोड़ कर कर्नल उठ खड़ा हुआ—और साथ ही साथ पंडित जी भी—और कर्नल ने अपना हाथ पंडित जी की ओर जरा बढ़ाकर अकृत्रिम सम्मान और स्नेह के स्वर में कहा, "क्या आप अपना हाथ मिलाएंगे मुझसे ?"

इस बार पण्डित जी की बारी थी हतप्रभ और कुण्ठित हो उठने की; वह समझ नहीं सके, बात क्या है। कुछ क्षण उन्हें सम्हलने में लग गए।

"क्या मतलब है आपका ?" कर्नल के बढ़े हुए हाथ की उपेक्षा करते हुए अन्त में पण्डित जी ने कुण्ठित ही स्वर में कहा, "कोई मजाक कर रहे हैं आप, या·····?"

"नहीं-नहीं," कर्नल ने स्निग्ध स्वर में कहा, "मजाक की क्या बात हो सकती है ? मैं सचमुच आपका अभिवादन करता हूँ, मेरा हृदय आपके सम्मान में झुका हुआ है।"

"मगर क्यों ? किस बात पर ?" पण्डित जी ने झुंझला कर पूछा।

"इसलिये कि मुझे मालूम हो गया कि जो रिपोर्ट मुझे मिली थी वह बिलकुल सच है।"

"जरूर सच है," आवेश में आकर पण्डित जी ने कहा, "एक-एक अक्षर सच है, कुल की कुल·····"

"पर आपको कैसे मालूम कि मुझे क्या रिपोर्ट मिली है ?" कर्नल ने पण्डित जी की बात काट कर कहा।

"अनुमान से। शासक जाति अपने अपमान को छिपाना नहीं जानती, अपने अपमान का ढोल पीट कर वह सारी दुनिया को दिखा सकती है ताकि शासित जाति पर अत्याचार करने का बहाना पाए। अपने अपमान को छिपाना तो हम जानते हैं, शासित जाति के लोग, जो अपने अपमान का बदला नहीं ले सकते और इसलिये अपना अपमान उनके लिये ढोल पीटने की चीज नहीं शर्म की चीज है·····"

"मगर आप तो उन लोगों में नहीं हैं; आपने तो अपमान का

बदला ले लिया; आपके लिये तो शर्म की कोई बात नहीं है।" कर्नल के चेहरे पर फिर एक हलकी मुसकराहट थी।

"मगर हमारा क्या अपमान हुआ, इसकी रिपोर्ट तो आपको मिली नहीं होगी।" कुछ आपे में आते हुए पण्डित जी बोले।

"हाँ, यों ही नहीं मिली, मगर सख्ती के साथ पेश आने पर थोड़ी-बहुत मिली," कर्नल ने फिर गंभीर होकर कहा। "मगर आपसे थोड़ी ही देर बात करके मैं समझ गया कि उन्होंने जो किया होगा वह साधारण अपराध नहीं होगा।"

"मगर कालों के ऊपर गोरों की ज्यादती तो कोई ज्यादती नहीं है; सजा तो दोनों तरफ से कालों ही को मिलनी चाहिये।" क्षुब्ध स्वर में पंडित जी ने कहा।

"यह गोरों के लिये और उनकी सभ्यता के लिये शर्म की बात है, गौरव की नहीं, मिस्टर चरन! और मैं लज्जित हूँ कि मैं उस शर्म का एक हिस्सेदार हूँ क्योंकि मैं भी गोरा हूँ," कर्नल भी इस समय आवेश में था। "मगर सब गोरे एक-से नहीं होते मिस्टर चरन, और न यूरोप के सभी राष्ट्र इस शर्म के हिस्सेदार हैं। अंग्रेज साम्राज्यवादियों के पाप के भागी सभी नहीं हैं..... मैं आयरिश हूँ, और हम आयरिश दिल से अंग्रेजों की इस नीति के समर्थक नहीं हैं....."

"अच्छा, आप आयरिश हैं!" और सहसा पंडित जी के चेहरे पर से सारे के सारे बादल एकदम उड़ गए, और धूप ही धूप खिल गई, और इस बार उन्होंने अपना हाथ बढ़ा कस कर कर्नल के हाथ से मिलाया।

"तो हम लोग दोस्त बन गए?" उल्लासपूर्वक आयरिश अफसर ने पंडित जी का हाथ झकझोरते हुए कहा।

"अगर आपको एतराज न हो," पंडित जी ने भी वैसे ही स्वर में जवाब दिया।

और दोनों फिर अपनी-अपनी कुरसियों पर बैठ गए, और पंडित

जी ने विस्तार के साथ उस दिन की सारी घटना कर्नल किंग को सुनाई और बीच में राजाराम चपरासी को बुलाकर उनके सामने पेश किया और कहा कि—"यही है उस औरत का जवान आदमी, इतना हट्टाकट्टा पहलवान, जो उनकी मार भी खा गया और एक दूसरे नौकर की कोठरी में दुबक गया और अपनी औरत उन शराबियों के सुपुर्द कर दी।" और राजाराम को अपने बदन के हट्टेकट्टेपन और अपनी पहलवानी के सबूत में पंडित जी के हुक्म पर अपना बदन खोल कर अपनी मांस-पेशियाँ, अपने मजबूत पुट्ठे 'गोरे साहब' के सामने हाजिर करने पड़े। इस समय पंडित जी इस गोरे के कहीं ज्यादा नजदीकी बन चुके थे, और राजाराम चपरासी की कायरता एक भारतीय के नाते उनके लिये उतनी अधिक लज्जा का विषय नहीं रह गई थी।

और जब राजाराम चला गया तो काफी देर तक इन नए गोरे-काले दोस्तों के बीच हिन्दुस्तान की गुलामी और उसके आत्मिक पतन पर दुःख भरी बातचीत होती रही।

और पंडित जी उस घटना के परिणामों से बिलकुल बच ही नहीं गए, कर्नल किंग के रूप में उन्हें एक ऐसा प्रभावशाली दोस्त भी मिल गया जिसके कारण बाद को भी पंडित जी कई सरकारी विपत्तियों से छुटकारा पाने में समर्थ हुए।

दूसरा परिच्छेद

[१]

पंडित जी की प्रकृति की कुंजी थी, उनका अदम्य अहंकार। पर कोई भी मनुष्य, चाहे वह कितना ही बड़ा, कितना ही शक्तिशाली, क्यों न हो, अजेय नहीं हो सकता। उसके बड़े से बड़े अहंकार को चूर्ण-विचूर्ण कर देने के लिये एक-से-एक बड़ी चोटें उसपर पड़ती हैं, जिनके आगे झुकने के लिये उसे बाध्य होना ही पड़ता है। पर ऐसे भी बिरले मनुष्य होते हैं जो कितनी ही बड़ी बड़ी चोटों को तो चोट ही नहीं समझते और हँसी-हँसी उन्हें झेल जाते हैं और उनका अहंकार फिर भी जहाँ का तहाँ अटल खड़ा रह जाता है; और जब कोई इतनी बड़ी चोट पड़ती है जिसे वे पूरी तरह से झेलने में असमर्थ ही हो उठते हैं तो अपने अहंकार की जड़ें न हिलने देने के लिये ऐसी जबर्दस्त लड़ाई लड़ते हैं कि अगर कोई जान सके और देख सके तो दाँतों-तले उंगली दबाए। अगर उस भयंकर लड़ाई में से वे सही-सलामत निकल आए तो उनका वह अहंकार वट-वृक्ष की तरह अपनी शाखा-प्रशाखाओं को भी जमीन में गाड़ कर अपनी जड़ें और भी मजबूत कर लेता है, और मरते-दम तक तना ही खड़ा रहता है।

पंडित भगवतीचरण भी ऐसे ही प्रचण्ड बिरले पुरुष थे। कितनी ही बड़ी-बड़ी चोटों को उन्होंने चोट नहीं समझा और हँसी-हँसी उन्हें झेल गए, और जब उनके भी अहंकार की जड़ें हिला देने लायक उनके जीवन की पहली जबर्दस्त चोट पड़ी तब उन्होंने लड़ते-लड़ते जिन्दगी गुजार दी, पर हार नहीं मानी।

उनकी यह लड़ाई मृत्यु के साथ थी जिसने उनकी भरी जवानी में,

उन्तालीस साल की ही उम्र में उनकी स्त्री उनसे छीन ली थी।

यों पंडित जी न स्त्रैण ही थे, और न हृदय के दुर्बल। प्रेम-व्रेम का भूत उन पर कभी भी सवार नहीं हुआ था, और उस समय की प्रथा के अनुसार वह भी अपनी स्त्री को अपनी सम्पत्ति, अपनी एक अनिवार्य आवश्यकता की एक साधारण साधन मात्र ही समझते आए थे। उनकी साधारण से साधारण इच्छाओं को या तो तुच्छ समझ कर, और या अपनी साधारण से साधारण असुविधा के खयाल से, वह ठुकराते आए थे, और उनके आंसुओं को उन्होंने बच्चों के आंसुओं से अधिक महत्व कभी भी नहीं दिया था। नौकरी करने पर जब से वह अपने स्त्री-बच्चों को अपने साथ रखने लगे थे तब से उन्हें एक बार भी उनके मैके उन्होंने नहीं जाने दिया था – कई बार उनके भाई उन्हें लिवाने के लिये आकर फिर-फिर गए थे। एक बार उनकी स्त्री ने तीन दिन तक खाना नहीं खाया—अपने भाई के साथ जाने की जिद में, पर पंडित जी पर कोई असर नहीं हुआ और गुस्से में आकर उन्होंने अपने साले को, जो उनकी स्त्री के बड़े भाई थे, पीट कर, उन्हें अपमानित करके, अपने घर से निकाल दिया।

पंडित जी को यह जानने का करीब-करीब मौका ही नहीं मिला कि जो उनके लिये अत्यन्त सुलभ है, जिसपर उनका सम्पूर्ण अधिकार है और जिसका अस्तित्व वह अपने लिये अत्यन्त स्वाभाविक समझते आए हैं, उसका अभाव कितना बड़ा सिद्ध हो सकता है। और न अपने सहज अहंकार में वह यही सोच सकते थे कि जिसे उसके पिता के घर जाने से रोकने में वे हमेशा सफल होते रहे, जिसे ले जाने के लिये आकर उसका बड़ा भाई तक उनके द्वारा पिट कर और अपमानित होकर लौट गया, उसे उनकी आँखों के सामने से एक और शक्ति ले जायगी और वे ताकते ही रह जायंगे, उसके आगे उनकी एक न चलेगी। मृत्यु से उनका वास्ता पहले भी पड़ चुका था—पहली बार तब जब उनके पिता का देहांत हुआ, और दो बार बाद को, जब उनके दो बच्चे, बहुत छोटे

ही छोटे, चल बसे। पर न उन्हें अपने पिता की कोई आवश्यकता थी, और न उन बच्चों के अस्तित्व तक का ध्यान था जो उनके बिना बुलाए-से उनके घर आ टपके थे। और इसलिये इन तीनों बार ही मृत्यु उनके शत्रु के रूप में, मैदान में खम ठोक कर, उनसे लड़ने के लिये नहीं आई थी।

पंडित भगवतीचरण कुछ समझ ही न पाए कि यह क्या हो गया। मामूली बुखार-सा आया था उनकी स्त्री को, और पंडित जी ने सदा की भाँति उसे कोई विशेष महत्व देने की जरूरत नहीं समझी थी। तीन दिन बाद वे दौरे पर से लौट कर आए, और उस समय तक उनकी स्त्री उनकी बातें समझने लायक भी नहीं रह गई थीं। निमूनिया हो चुका था, और वह बेहोश थीं। सिविल-सर्जन आ चुके थे, और अपनी निराशा प्रकट कर गए थे। यह सब तभी हो चुका था जब वह दौरे पर ही थे, और उनके बड़े बेटे राधेश्याम ने उन्हें डरते-डरते यह बतलाया। पर पंडित जी ने यह सुन कर राधेश्याम को भी 'गधा' बतलाया और सिविल-सर्जन को भी। अंग्रेजी डाक्टरों के लिये यही सम्बोधन और विशेषण उन्होंने सुरक्षित कर रखा था।

जिन वैद्य जी की प्रारंभिक चिकित्सा के बाद बुखार बढ़ कर निमूनिया हुआ था और राधेश्याम ने घबड़ा कर सिविल-सर्जन को बुलाया था, उन्हीं वैद्य जी को फिर से बुलाया गया। वैद्य जी भी तृप्त हुए और पंडित जी भी। रोगिणी की परीक्षा करके वैद्य जी ने सारा दोष सिविल-सर्जन के सिर मढ़ा और शीघ्र ही रोगिणी के स्वस्थ होने की आशा दिलाई।

रात-भर आधे-आधे घण्टे पर दवा देने की व्यवस्था कर दी गई, और पंडित जी निश्चिन्त होकर सोने चले गए। यह निश्चिन्तता वैद्य जी पर भरोसा होने के कारण नहीं, अपने स्वाभाविक अधिकार पर एकांत आस्था होने के कारण थी। अपनी स्त्री पर पंडित जी का अधिकार था; वह उनसे छिन भी जा सकती है, इसकी संभावना उनके मस्तिष्क में हो नहीं थी।

रात के दो बजे जब राधेश्याम ने डरते-डरते उन्हें जगाया और बतलाया कि उसकी मां के गले से इस बार दवा नहीं उतरी, तब भी पंडित जी को कोई विशेष भय नहीं हुआ। अपनी स्वाभाविक चाल से चल कर वह रोगिणी के कमरे में पहुँचे। पर इस बार वह अधिक गंभीर थे। कमरे में पहुँचते ही पहले तो उन्होंने रोगिणी के पास बैठी अपनी रोती हुई मां को डाट कर कमरे से बाहर निकाल दिया, और फिर राधेश्याम से भी बाहर ही रहने को कहा और ताकीद कर दी कि अन्दर कोई न आने पाए। और तब दरवाजा फेर कर वह अपनी स्त्री के सिरहाने उनकी खाट पर बैठ गए, और अपने गगनभेदी स्वर में पुकारा—"रानी!" यह उन भाग्यवान सुनहरे क्षणों का संबोधन था जो उनकी स्त्री के जीवन में इने-गिने बार ही आए थे। रानी की ज्योति-हीन-सी अपलक आंखों में क्षण भर के लिये रोशनी सी आई और उनके होंठ कुछ हिलते से दिखाई दिये; और थोड़ी देर में दोनों आंखों के कोनों में से एक-एक बूंद भर कर ढुलक गई।

"घबड़ाती क्यों है पगली," पंडित जी ने अपनी गोदी में उनका सिर रख कर और उनके बालों पर हाथ फेरते-फेरते अपने स्वाभाविक ही गले से कहा—"अब मैं आ गया, तू अच्छी हो जायगी। तू मर नहीं सकती।" एक अद्भुत दृढ़ता थी उनके अन्तिम वाक्य में।

"तू...मर...नहीं...सकती!"—पंडित जी का स्वर और भी दृढ़, और भी कठोर हो गया, और अपने दोनों हाथों के बीच उनका माथा पूरे जोर के साथ कस कर उन्होंने दबा लिया, और फिर छोड़ दिया; और फिर दबा लिया, और फिर छोड़ दिया; और, और भी कठोर स्वर में कहना जारी रखा—"तू...मर...नहीं...सकती।" उनकी तीक्ष्ण आंखों की दृष्टि एकटक रोगिणी की बुझती हुई आंखों पर थी।

पंडित जी की सांस का वेग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था; उनके सिकुड़े हुए ललाट पर पसीने की बूंदों का जाल-सा छा गया था; धीरे-धीरे बिलकुल अंगारे-सी जलने लग गई थीं उनकी आँखें।

पर पंडित जी की लाल-लाल आँखें उनकी स्त्री की आँखों की जाती हुई ज्योति को रोक न सकीं। मुंह से सहसा एक चीख निकली, सारे शरीर ने एक झटका दिया, और पंडित जी की गोदी से उछल कर उनका सिर तकिये पर आ रहा। "खबरदार, कहाँ चली तू!"—बिजली के झटके की फुरती से पंडित जी ने अपनी स्त्री की मृत देह को उठा कर अपनी गोद में ले लिया, और उनकी प्राणशून्य फटी हुई आंखों में अपनी ज्वालामयी आंखें गड़ा दीं—"तू···नहीं·····जा··· सकती!' असहाय क्रोध में वह अपने दाँत पीस रहे थे। और एक बार फिर उन्होंने आखिरी बार ललकारा—"रानी!" पर उनकी ललकार व्यर्थ गई, कहीं से कोई जवाब नहीं आया।

और तब उन्हें विश्वास हुआ कि मृत्यु उनकी रानी को छीन ले गई, उन्हींके हाथों से, उनकी मर्जी के बिलकुल खिलाफ। उन्हें ऐसा लगा मानो अंधेरे में पीछे से सहसा किसी ने लट्ठ जमा दिया हो उनके सिर पर।

पर गिर कर भी वह तुरंत ही उठ खड़े हुए, हार कर भी उन्होंने हार मानने से इनकार कर दिया। जब उन्होंने सिर ऊँचा किया तो देखा, उनकी माँ और बड़ा बेटा उसी कमरे में हैं, जब कान में सुनने की शक्ति लौटी तो सुनी उनके रोने की आवाज।

"खबरदार, जो कोई रोया," कड़क कर वे बोले, और उठ कर अपनी स्वाभाविक ही चाल से दृढ़तापूर्वक कदम रखते हुए अपने कमरे में लौट आए।

सबेरा होने में अधिक देर नहीं थी।

[२]

मृत्यु से करारी हार खाकर भी पंडित जी ने न स्वयं ही हार स्वीकार की और न दूसरों के सामने ही मृत्यु के आगे अपनी हेठी होने

दी। बल्कि दूसरों को उन्होंने यही दिखाने की कोशिश की कि उनकी जीत हुई है और मृत्यु की हार। शव की श्मशान-यात्रा में उन्होंने कोई भाग नहीं लिया, मित्रों के समझाने पर भी स्वयं श्मशान नहीं गए। इन समस्त लौकिक क्रियाओं का भार अपने बड़े बेटे पर डाल कर वह अपने नियमित नित्यकर्मों में लग गए। कचहरी से भी उन्होंने छुट्टी नहीं ली और ठीक समय पर भोजन की भी फरमाइश माँ से कर डाली।

"तू तो बना-बनाया कसाई है! कैसे रोटी जायगी तेरे पेट में? माया-ममता नहीं है, दुख-दद नहीं है, तो लोक-लाज तो होती। इस बेला घर में कौन चूल्हा चढ़ाएगा?" वह सुबकियाँ लेते-लेते कड़क कर बोलीं।

"मैं चढ़ाऊगा चूल्हा। मुझे लोकलाज नहीं है। मैं दुनिया से ऊपर हूँ।" पंडित जी ने कठोरता के साथ कहा, और सचमुच ही उन्होंने स्वयं चूल्हा जला कर अपने लिये खिचड़ी बनाई, और खाकर कचहरी चल दिये।

शाम को जब पंडित जी कचहरी से लौटे तब लौकिक प्रथा के अनुसार खास तौर का सादा मातमी खाना बना था। पंडित जी ने वह खाना खाने से भी इनकार कर दिया और अपने मंझले बेटे को पूड़ी-तरकारी बनाने का हुक्म दिया। (पंडित जी स्वयं पाक-विद्या में निपुण थे, और अपने सब बच्चों को उन्होंने यह विद्या स्वय सिखलाई थी।)

रोना-पीटना उस दिन पंडित जी के घर-रहते करीब-करीब बिलकुल ही नहीं हुआ था। रोई थीं थोड़ी-बहुत केवल उनकी माँ, पर वह भी अपने बेटे के डर से बहुत जल्द ही चुप हो गई थीं। और, बच्चों की तो यह हिम्मत ही नहीं हो सकती थी कि पंडित जी के घर-रहते रो सकते। उस समय पंडित जी के चार बच्चे थे—तीन लड़के और एक लड़की। बड़ा लड़का राधेश्याम बीस साल का था और समझदार हो चुका था, और फिर दाह-संस्कार, श्राद्ध-तर्पण, आदि का भार उसी पर

पड़ा था। इसलिये उससे दृढ़ और शांत रहने की आशा की जा सकती थी। मंझला लड़का रामगोपाल सत्रह साल का था और उसकी भी समझदारों में गिनती हो सकती थी। इसके अलावा वह कुछ रूखी प्रकृति का था और माँ के प्रति उसका कोई खास लगाव नहीं था। माँ के अभाव को सबसे ज्यादा महसूस किया सबसे छोटे दोनों बच्चों ने—बारह बरस के यशोवर्धन ने और नौ बरस की जमुना ने। यही दोनों उन दिनों माँ के सबसे ज्यादा लाड़ले थे, और अबोध भी। और यही दोनों अपनी दादी की गोद में बिलख-बिलख कर रोए थे और माँ के लिये पागल-से हो उठे थे। पर पिता के सामने उनकी भी आँखें सूख जाती थीं, उनकी भी हिचकियाँ भीतर ही भीतर घुट कर रुक जाती थीं।

रात को सोने से पहले कभी-कभी जब पंडित जी की इच्छा होती थी, सब बच्चे—बीस साल के राधेश्याम से लेकर नौ बरस की जमुना तक—उनके कमरे में उनके पलंग के पास फर्श पर अपने-अपने आसन बिछा कर एक कतार में बैठते थे और सब मिल कर तुलसीदास की रामायण का पाठ करते थे। आज भी पंडित जी ने सोने से पहले सब बच्चों को रामायण के लिये इकट्ठा किया, और काफी देर तक पाठ होता रहा। जैसे-जैसे छोटे बच्चों को नींद आती जाती थी, वैसे ही वैसे माँ की याद की रुँधी हुई उनकी वेदना फूट पड़ना चाहती थी, पर बड़ा जोर लगा कर वे अपनी आवाज को स्वाभाविक बनाए हुए थे।

जमुना भी रामायण पढ़ लेती थी और अपने भाइयों के साथ-साथ उनके 'कोरस' में उखड़ी-उखड़ी सी शामिल रहती थी। सबसे ज्यादा भूलें स्वभावतः वही करती थी, और कोरस के स्वर से तो उसका स्वर प्रायः ही अलग रहता था, और कभी-कभी वह पीछे भी पड़ जाती थी। ऐसे मौकों पर पंडित जी की डाट, और कभी-कभी मार भी, ज्यादातर उसीके लिये सुरक्षित रहती थी।

आज भी जमुना पर नियमानुसार डाट पड़ रही थी, पर फिर भी वह बहक-बहक जाती थी। एक बार पंडित जी का गुस्सा जरा ज्यादा

बढ़ गया और उन्होंने अपने मंझले बेटे रामगोपाल को जमुना के कान मल देने का हुक्म दिया। कायदा यह था कि पंडित जी की डाट, मार या कैसी भी सजा मिलने पर रो कोई भी नहीं सकता था, चुपचाप शान्त भाव से अपनी सजा को स्वीकार करता था। पर आज ज्यों ही जमुना के कान मले गए कि वह सब कायदे भूल धाड़ मार कर रो पड़ी।

जमुना पर पंडित जी की मार की प्रतीक्षा में रामायण का पाठ सहसा रुक गया। और जमुना पर ऐसी मार पड़ी कि उसका रोना ही जहाँ का तहाँ नहीं रुक गया, उसकी धोती भी खराब हो गई।

गाली देती हुई बच्चों की दादी आईं और जमुना को लेकर चली गईं। पिता के इशारे पर रामायण का पाठ बन्द करके तीनों लड़के भी सोने के लिये चले गए।

पडित जी भी नियमानुसार सोने के लिये पलंग पर लेट गए और रोशनी बुझा दी गई।

पर नींद उन्हें उस रोज सारी रात नहीं आई। घण्टों वे अपने मन को यह समझाने की कोशिश करते रहे कि उनकी हार नहीं हुई है उनका कुछ भी नहीं छीना गया है, उनकी इच्छा को कुचलने की शक्ति किसी में नहीं है। पर फिर भी उन्हें नींद नहीं आई और अन्त में लैम्प जला कर गीता की शरण जाने के लिये उन्हें विवश होना पड़ा।

और उनकी निरंकुशता, उनकी प्रचण्डता उस रोज से और भी बढ़ गई। माँ का जो-कुछ भी थोड़ा-बहुत लिहाज अब तक वह करते आए थे, अब वह भी चला गया। भौंहें अब उनकी हमेशा ही चढ़ी दिखाई देतीं, माथे की सिकुड़नें और भी गहरी हो गईं। बच्चों, नौकरों, मातहतों पर डाट की मात्रा और भी बढ़ गई, लात-घूंसे का उपयोग बिलकुल आम हो गया।

तेरही के दिन तो पंडित जी ने हद ही कर दी। न पिंडदान, आदि की ही क्रिया पूरे विधान से उन्होंने होने दी और न शय्यादान और भोजनादि में महाब्राह्मणों को पूरी तरह से तृप्त किया। मृतात्मा के प्रेत को

सद्गति देने के लिये महाब्राह्मण जो हांड़ी फोड़ता है उसे फोड़ने से जब उसने इनकार कर दिया क्योंकि उसे इच्छानुसार फीस नहीं मिली थी, तब उन्होने न पंडितों की एक सुनी और न अपनी डरी हुई मां की बात मानी, और उनकी जली-कटी सुनते हुए वे स्वयं वहाँ जा पहुँचे जहाँ पेड़ में हांड़ी बँधी हुई थी और महाब्राह्मण उसे फोड़ने के पहले अपनी पूरी फीस के लिये उनके बड़े बेटे से झगड़ रहा था। और पंडित जी ने स्वयं एक पत्थर से वह हांड़ी फोड़ दी। सबके सब स्तब्ध रह गए।

"यह तो शास्त्र-विहित नहीं हुआ पंडित जी, बहुत अशुभ कार्य हुआ," एक पंडित ने डरते-डरते कहा।

"शास्त्रों को ब्राह्मणों ने ही रचा है पंडित; मैं साधारण ब्राह्मण नहीं हूँ," उन्हें गर्वोद्धत उत्तर मिला।

उस रोज भी रात को रामायण का पाठ हुआ, पर पाठ समाप्त होने पर जब बच्चे सोने के लिये जाने को उठने लगे तो पंडित जी, मानों सपना-सा देख कर जगे हों, सहसा बोल उठे – "अम्मां की याद किसे-किसे आती है ?" एक अस्वाभाविक स्निग्ध स्वर था पंडित जी के गले का।

स्वयं पंडित जी द्वारा मां की इस तरह, कोमलतापूर्वक, याद दिलाए जाने पर बड़े बेटे की आंखों में आंसू भर आए, पर बोला वह कुछ नहीं। प्रश्न के साथ ही साथ, तुरन्त ही, जवाब मिला सबसे छोटे भाई-बहन यशोवर्द्धन और जमुना से—"मुझे", "मुझे !" और दोनों बच्चे पिता की ओर कातर दृष्टि से ताकने लगे।

पहले पंडित जी ने यशोवर्द्धन को अपने पास बुलाया और उसे सामने खड़ा करके कोमलता-मिश्रित कुछ कठोर स्वर में भर्त्सना की—"मर्द होकर औरत बनता है ? छि: !" और उसकी पीठ पर एक मृदुल आघात किया—जिसमें स्नेह भी था और शासन भी—और उसे सोने के लिये जाने का इशारा हो गया। पिता के इस अप्रत्याशित व्यवहार से घबड़ाया हुआ बालक, कुछ उनकी ओर खिंचा-सा, कुछ

चाहता-सा, धीरे-धीरे कमरे से बाहर चला गया। उस समय तक उसकी बहन की पिता के सामने पेशी हो चुकी थी।

"बहुत याद आती है तुझे अम्मां की? क्यों री!" छोटी सी जमुना से प्रश्न हुआ।

जमुना ने सिर हिला दिया; बोलने लायक शक्ति उसके रुंधे हुए गले में नहीं थी। वह यह समझ नहीं पा रही थी कि आंखों में उमड़-उमड़ आने के लिये तैयार आंसुओं को आने दे या नहीं।

"तेरी अम्मां तुझसे कुछ बहुत बड़ी थोड़े ही थी, जब उसका ब्याह हुआ था! अपनी मां को छोड़ कर तभी उसे सुसराल आना पड़ा था। तू क्यों नहीं समझ लेती कि तेरा ब्याह हो गया, तेरी माँ तुझसे छुट गई?"

जमुना बेचारी क्या जवाब देती।

"क्यों, तेरा भी ब्याह कर दूं अभी से? सुसराल जायगी?"

इस बार जमुना ने नकारात्मक सिर हिलाया। दादी की वह लाड़ली थी और बड़े भैया की दुलारी। उन दोनों को छोड़ कर वह कहीं भी नहीं जाना चाहती थी।

"तो फिर मैं तेरा ब्याह नहीं करूंगा। जब तेरा जी चाहे अपना पति आप ढूंढ़ लेना। सावित्री अपना पति आप खोज कर लाई थी। और पार्वती ने भी तपस्या करके शंकर को पाया था। तू क्या बनेगी—सावित्री या पार्वती?"

इस बार फिर बेचारी जमुना चुप रह गई।

"बोलती क्यों नहीं है—क्या बनेगी तू?" इस बार पिता का स्वर कुछ कठोर था।

"जो आप कहेंगे," काँपती हुई आवाज में जल्दी से जमुना बोल उठी।

पिता की भौंहें कुछ ढीली पड़ गईं, चेहरे पर तृप्ति का भाव थोड़ा-सा दिखाई दिया। "तू गौरी है, तुझे तपस्या करनी होगी, गौरी की तरह तपस्या से अपना वर पाना होगा। रोना-धोना नहीं।"

जमुना ने समझा कि उसे भी अब सोने की छुट्टी मिली, और वह चलने को हुई कि पिता ने दृढ़ स्वर में कहा—"कल से तू मेरे पास सोना, दादी के पास नहीं। वह तुझे ब्याह के सिवा किसी काम का नहीं रखेगी।"

जमुना को मानों बिजली मार गई। उसका सारा हृदय विद्रोह कर उठा। अपनी सारी शक्ति बटोर कर उसने प्रतिवाद करना चाहा, पर उसका मुँह नहीं खुला; जहाँ की तहाँ पत्थर की मूर्त्ति बनी वह खड़ी रह गई।

"जाओ, सोओ सब!" पिता का आदेश हुआ और अपनी-अपनी रामायण और अपने-अपने आसन लेकर धीरे-धीरे तीनों भाई-बहन चले गए।

और जमुना दादी के पास पहुँच कर उनकी गोदी में गिर पड़ी और सुबक-सुबक कर रोते-रोते उसने उनका लहंगा गीला कर दिया।

पर सदा की भाँति दादी की गालियाँ इस बार भी जमुना की रक्षा नहीं कर सकीं। दूसरे दिन से उसे पिता के ही पास सोने के लिये लाचार होना पड़ा। जब दादी के वाक्य-बाणों का उसके पिता पर कोई असर नहीं हुआ तब उसने अपनी भी हिकमत आजमा कर देखी और दूसरे दिन शाम को, अंधेरा होने से पहले ही, वह जाकर दादी की खाट पर सो गई; शायद सो जाने पर उसके पिता उसे वहीं छोड़ दें। उसे नींद फिर भी न आई, क्योंकि उसे यह डर बराबर बना हुआ था कि सोती हुई भी उसे उठवा मंगाया जायगा। जब उसके बड़े भैया पिता के हुक्म से उसे बुलाने आए तब वह आँखें बन्द करके मक्कड़ किये पड़ी रही, और दादी ने भी उसके साथ साजिश में शामिल होकर कह दिया—"जा-जा, सो गई है मेरे साथ। आज नहीं जायगी।" पर कुछ ही देर बाद पंडित जी की कठोर पदध्वनि सुनाई पड़ी, और अपनी माँ के बिछौने पर से, उनकी बांहों को ठेल कर, वह जमुना को उठा ले गए। जमुना ने न आँखें खोलीं और न रोई; डर के मारे सन्न-सी वह जैसी

पड़ी थी वैसी ही पिता की बांहों में रही, और वैसी ही उनके कमरे में जा पड़ी अपनी खाट पर। जब सोने के लिये रोशनी गुल हो गई तब डरते-डरते उसने आँखें खोलीं, पर अंधेरे में उसे कुछ भी नहीं दिखाई दिया। डर कर उसने आँखें फिर बन्द कर लीं, और बिना जरा भी आवाज किये चुपचाप आंसू बहाने लगी। जब से उसे होश था बराबर वह माँ या दादी के पास, उन्हीं के साथ, सोती आ रही थी, और अंधेरे में जब भी आंखें खुलती थीं और उसे डर मालूम होता था, उनकी गरम-गरम बांहों और स्नेह-कोमल छाती में लिपट कर निश्चिंत हो फिर सो जाती थी। पर आज न वह अपनी दादी की ही गोद में है और न माँ की ही। क्यों मर गई माँ? उसकी याद में उसका छोटा-सा दिल बुरी तरह से तड़प उठा, और वह यही ताज्जुब करने लगी कि उसकी मां उसे भी अपने साथ क्यों नहीं ले गई।

पर उसे मां की याद भुलाने के लिये पंडित जी ने अपनी ओर से, और अपने ही ढंग से, कोई कसर नहीं उठा रखी। अपनी सारी सेवा का भार उन्होंने जमुना के नन्हे से कन्धों पर डाल दिया। नित्य चार बजे सबेरे पंडित जी उठते थे, उसी समय वह जमुना को भी उठाने लगे। शंकर को पाने के लिये गौरी की तपस्या साधारण नहीं थी। जमुना को गौरी बनना है, वह सूरज निकलने तक बिछौने पर कैसे पड़ी रह सकती है? चार बजे सबेरे उठकर जमुना को भी पंडित जी के साथ ही साथ शौचादि से निवृत्त होना पड़ता, उन सरदी के दिनों में भी ठण्ढे पानी से उसी समय नहाना पड़ता, और पंडित जी के साथ ही साथ उसे भी व्यायाम करना पड़ता। पंडित जी ने उसे व्यायाम भी सिखाया, खाना बनाना भी, और सेवा-कार्य भी। पंडित जी के कमरे में झाड़ू लगाना, सब चीजों को झाड़-पोंछ कर यथास्थान रखना अब जमुना का ही काम था, और पंडित जी के सबेरे के नाश्ते के लिये हलुआ बनाना और बादाम पीसना भी। जब तक पंडित जी कचहरी नहीं जाते थे, पंडित जी की सेवा से उसे दम मारने को फुरसत नहीं मिलती थी,

और इसी तरह उनके कचहरी से आने पर भी। दौरों पर भी पंडित जी ने उसे अपने साथ ले जाना शुरू किया, और उसे लड़कों की पोशाक में रखने लगे। पंडित जी घुड़सवार अच्छे थे और कई घोड़े-घोड़ी और टट्टू उनके अस्तबल में थे। यों उनके सभी बच्चे घोड़े पर चढ़ना सीख चुके थे और जमुना भी टट्टू पर सवारी कर लेती थी, पर अब पंडित जी जब भी सैर के लिये घोड़े पर जाते जमुना को भी साथ ले जाते। और जब भी समय मिलता पंडित जी उसे स्वयं ही पढ़ाते-लिखाते भी थे। संक्षेप में, जमुना अब उनकी अनुचरी थी, शिष्या थी और प्राइवेट-सेक्रेटरी।

धीरे-धीरे जमुना अपनी मां को भूल चली। मां की याद अब उसे तभी आती थी जब उस पर पंडित जी की मार पड़ती थी।

जितनी मात्रा में जमुना अब पंडित जी के ध्यान की केन्द्र बन गई थी उतनी ही मात्रा में मार भी अब उस पर अधिक पड़ने लगी थी। पढ़ने-लिखने में गलती होने पर मार, खाना बनाने में गलती होने पर मार, झाड़ू लगाने के बाद कहीं जरा कूड़ा छूट जाने पर मार, और झाड़-पोंछ में कुछ टूट-फूट जाने पर मार। जमुना को पीटने के लिये कोई साधारण-सा बहाना भी काफी था। ऐसा लगता था मानों उसे पीटने में पंडित जी को कोई खास मजा आता हो, जैसे उसे पीटने के लिये उनके हाथ खुजाते रहते थे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अब औरों पर पहले की अपेक्षा कम मार पड़ने लगी थी। सबसे ज्यादा लापरवाह और अनाज्ञाकारी रामगोपाल ही पहले सब से अधिक पिटता था, पर अब प्रायः एक-एक सप्ताह बीत जाता था और वह पंडित जी के हाथ नहीं पड़ता था। उसकी ओर ध्यान देने की मानों पंडित जी को फुरसत ही नहीं रह गई थी। जिस तरह उनके अधिकांश समय पर जमुना का अधिकार हो गया था उसी तरह मानो उनके अधिकांश क्रोध पर भी।

और पंडित जी भी धीरे-धीरे जमुना की मां को भूलने लगे।

तीसरा परिच्छेद

[१]

पंडित जी ने दूसरा विवाह नहीं किया। उस समय की प्रथा के अनुसार उनका फिर विवाह कर लेना परम स्वाभाविक होता, भले ही वे चार बच्चों के पिता थे और उनमें से एक का विवाह भी हो चुका था। पर पंडित जी के लिये यह सर्व-स्वाभाविक ही अस्वाभाविक था। उनकी उम्र का तकाजा भले ही यह हो, पर अपने बड़े-बड़े बच्चों के सामने सिर पर मौर सजा कर, इतनी लम्बी दाढ़ी बढ़ाए, वर की वेष-भूषा में, घूघट निकाले किसी लड़की के साथ आग के चारों ओर भाँवरें डालते हुए चक्कर काटना वे घोर हास्यास्पद समझते थे। हास्यास्पद दूसरों की दृष्टि में उतना नहीं, जितना स्वयं अपनी ही दृष्टि में।

पर एक बार पंडित जी को काफी समय तक एक गहरे अन्तर्द्वन्द में पड़ना पड़ गया, इसी विवाह की समस्या को लेकर। कुछ महीनों की छुट्टियाँ लेकर उस साल वे गरमियां बिताने के लिये सपरिवार पहाड़ों पर जा रहे थे। सारा परिवार पहले ही उन्होंने आगे भेज दिया था, और वह स्वयं दो-चार दिन के लिये किसी काम से मेरठ चले गए। उन्हें क्या मालूम था कि वहाँ उनके खिलाफ कोई साजिश हो रही है। वहां अपने मित्र राजेश्वरदत्त के यहां वह ठहरे थे, जो उस षडयंत्र के सूत्र-धार थे। उन्होंने एक लड़की ढूंढ़ रखी थी पंडित जी को ललचाने के लिये, कि वह उससे ब्याह कर लें। लड़की का पिता गरीब था और पंडित जी का नाम और उनकी कीर्त्ति वह सुन चुका था। उसकी लड़की सुन्दरी थी और किसी गरीब के हाथ उसे सौंपने को वह तैयार नहीं था, और इसीलिये चौदह साल की हो जाने पर भी वह अभी तक

क्वांरी ही बाप के घर बैठी रह गई थी। उसका यह निश्चय था कि अपनी सुन्दर बेटी के सहारे अपना भाग्य चमकाएगा, और इसीलिये वह कोई धनी विधुर ढूंढ़ रहा था जिससे उसे ब्याह कर अगर तुरंत कोई खासी रकम न भी पाए तो कम-से-कम यह तो आशा की जाए कि उसीकी बेटी की सन्तान सारी सम्पत्ति की मालिक बनेगी। पंडित भगवतीचरण की सारी सम्पत्ति अपनी ही कमाई की थी और यह निश्चित था कि जो उन्हें खुश कर लेगा वही उनकी सम्पत्ति पर अधिकार पाएगा। अगर वह इस उम्र में फिर शादी करने को राजी किये जा सके तो उसकी भुवनमोहिनी कन्या का भाग्य खुल जाए; उन्हें अपने इशारे पर वह नचाएगी।

जब पंडित जी मेरठ आए तब उनके मित्र ने एक दिन एक बहाने से अपने घर एक दावत दी और अपने अनेक मित्रों को सपरिवार आमंत्रित किया। उस भुवनमोहिनी लड़की सरला के पिता पंडित सुखदेव भी सपरिवार पधारे।

और वहीं सरला पंडित जी के सामने बार-बार लाई गई, कितने ही बहानो, कितने ही छल-कौशल से। दावत खत्म हो जाने पर भी सरला और उसके पिता काफी देर तक रहे, और अवसर निकाल कर सरला से पडित जी के सामने रामायण-गान भी कराया गया।

पंडित जी विचलित हो गए। किशोरी सरला के रूप-लावण्य से उनकी आंखें चौंधिया गईं, उनका मन डिग गया। नैनीताल पहुँचने तक रास्ते भर वह उनकी आंखों के आगे नाचती रही।

पंडितजी के नैनीताल पहुँचने के साथ ही साथ उनके मित्र राजेश्वर-दत्त का पत्र भी पहुँच गया जिसमें सरला के पिता की ओर से पंडित जी से प्रार्थना थी सरला का 'उद्धार' करने के लिये। सरला को लेकर पंडित सुखदेव की लोक-हँसाई हो रही है, इतनी बड़ी क्वांरी लड़की को घर पर बिठा रखने के लिये। पंडित जी जैसे 'सुपात्र' को अपनी लड़की सौंपने का हौसला उनके लिये छोटे-मुंह बड़ी-बात जरूर है, पर पंडित

जी का उजड़ा घर वह बसा देगी, उन्हें हर प्रकार से वह संतुष्ट करेगी, ऐसी आशा पंडित सुखदेव को अपनी दी हुई शिक्षा के आधार पर अपनी कन्या से अवश्य है।

पंडित जी स्तब्ध रह गए यह पत्र पढ़ कर, अपने मित्र और साथ ही साथ उस पंडित सुखदेव के दुस्साहस पर। उन्होंने उस पत्र का कोई जवाब नहीं दिया।

पर वह लड़की सरला पंडित जी की आंखों से नहीं उतरी। नैनीताल के वातावरण ने तो और भी इसमें मदद की और एक दिन जब पंडित जी सन्ध्या समय दूर तक टहलने जाकर पहाड़ों और उनकी हरियाली का प्राकृतिक दृश्य और लौटते समय रास्ते में गौरांगी तरुण-तरुणियों का कल-कल्लोल और जल-विहार देखकर घर वापस आए तब वह सीधे अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में चले गए और उसी समय उन्होंने अपने मित्र राजेश्वर को एक पत्र लिख डाला। और-और इधर-उधर की बातों के बाद पंडित जी ने अन्त में लिखा—"पंडित सुखदेव बातचीत से भले आदमी मालूम हुए और उम्मीद की जानी चाहिये कि उनकी लड़की सुशील होगी। अगर तुम भी यह समझते हो कि लड़की मेरे घर के लायक है तो मैं तैयार हूँ।"

पर दो ही तीन दिन में पंडित जी का यह ज्वर उतर चला और वह अपनी करतूत पर पछताने लगे। उन्हें मन-ही-मन बड़ी शर्म मालूम हुई और अपने बच्चों के सामने अपना मुंह दिखाना उनके लिये मुश्किल हो गया। और इसलिये जब राजेश्वरदत्त के पत्र के साथ-साथ पंडित सुखदेव का कृतज्ञतापूर्ण पत्र और उसके साथ-साथ लड़की की जन्म-कुण्डली उन्हें मिली और उनसे उनकी जन्मकुण्डली मांगी गई, तब उन्होंने फिर चुप्पी साध ली। मेरठ से एक के बाद एक कई पत्र आए, पर पंडित जी की चुप्पी नहीं टूटी। और इसी तरह उनकी छुट्टियां पूरी हो गईं।

और जब पंडित जी काम पर वापस आ गए तब तो उन्हें अपने

उस कृत्य पर और भी आश्चर्य हुआ। छुट्टियों के अनन्त अवकाश में और नैनीताल के उस वातावरण में एक सांझ को जो-कुछ वह बड़ी सरलतापूर्वक कर बैठे थे, और बाद को उसके लिये पछता कर भी जिसका लोभ पूरी तरह से उनके दिल से नहीं निकला था यहाँ वह एकदम तिरोहित हो गया, और सरला के पिता को अधिक समय तक भ्रम में न रखने के लिये एक दिन वह राजेश्वरदत्त को पत्र लिखने बैठ गए। पर कलम हाथ में लिये वह बैठे ही रहे, लिखा उनसे कुछ नहीं गया। एक अजीब-सा मोह, एक लोभ-सा धीरे-धीरे उनके दिल और दिमाग को घेर-घेर कर मँड़राने लगा, और एक अजीब आवेश में आकर उन्होंने एक ड्रौअर खोली और उसमें से लाल कपड़े में लिपटा एक बस्ता निकाला। इसी बस्ते में घर भर की जन्मपत्रियां थीं। पंडित जी का ज्योतिष में कुछ अधिक विश्वास नहीं था, और पंडितों की उन कलाबाजियों में वे कभी बाधा नहीं देते थे जिनके अनुसार जिस-किसी की भी जन्मकुण्डली इच्छानुसार किसी भी दूसरे की जन्मकुण्डली के अनुकूल सिद्ध कर दी जाती थी। पर फिर भी पंडित जी ने अपनी जन्मकुण्डली निकाली और सरला की जन्मकुण्डली के साथ उसका मिलान करने लगे। पंडित जी को थोड़ी-बहुत ज्योतिष आती थी, और उन्होंने देखा कि उनकी कुण्डली का सरला की कुण्डली से मेल नहीं बैठता। वे एक अट्टहास कर उठे, और अपनी जन्मपत्री लपेट कर यथास्थान रख दी।

दूसरी जन्मपत्री पर उन्हें यशोवर्द्धन का नाम लिखा दिखाई दिया। एक कुतूहल के साथ उन्होंने वह जन्मपत्री भी उठा ली और उसके साथ सरला की कुण्डली का मेल देखने लगे। उनके लड़कों में इस समय वही क्वांरा था; मँझले लड़के रामगोपाल का भी विवाह इस बीच हो चुका था। कई बार उनके मन में यह बात आई थी कि जब सरला से वे स्वयं विवाह नहीं कर सकते तो वर्द्धन से ही क्यों न कर दें। सरला के पिता को दिया हुआ उनका वचन भी इससे पूरा हो जायगा और उस

दरिद्र की कन्या का उद्धार भी। और अगर सरला को वह अपनी ब्याहता नहीं बना सकते तो पुत्र-वधू तो बना सकते हैं—किसी दूसरे के घर न जाकर उन्हीं के घर की तो शोभा बढ़ाएगी! पर वर्द्धन से उसे ब्याहने का विचार दो-तीन कारणों से उन्हें छोड़ देना पड़ता था। एक तो वर्द्धन उस समय काफी छोटा था, सिर्फ पन्द्रह साल का; और दूसरे लड़की उसके हिसाब से काफी बड़ी थी। चौदह साल की सयानी लड़की को पन्द्रह बरस के नादान लड़के से ब्याहना वह अनुचित समझते थे, हालांकि स्वयं वह अपनी स्त्री से कुछ महीने छोटे ही थे। पर इन सबसे बढ़ कर कारण यह था कि वर्द्धन इधर दो साल से हमेशा ही बीमार-सा रहता आ रहा था। वैद्य जी की निरंतर चिकित्सा के बाद भी जब कोई विशेष लाभ नहीं हुआ और जब पंडित जी ने एक दिन यों ही सिविल सर्जन को उसे दिखाया तो उन्होंने क्षय रोग की संभावना बताई, और औषधोपचार से बढ़ कर उसके लिये कुछ समय पहाड़ पर रहना जरूरी बतलाया। सिविल-सर्जन का पंडित जी ने विश्वास नहीं किया, पर शायद अपनी स्त्री को गँवा कर उनका आत्म-विश्वास कुछ डिग चुका था, और इसलिये जब उन्होंने इस साल कुछ महीनों की छुट्टी लेकर पहाड़ों पर जाना तय किया, तब अप्रत्यक्ष रूप से वर्द्धन का ही खयाल उनके दिल में था।

और जिस लड़के का स्वास्थ्य ठीक नहीं था, जिसके लिये क्षय रोग की संभावना बताई गई थी—भले ही उस पर उन्हें विश्वास न हो—उसे इतनी थोड़ी उम्र में एक विषम अवस्था की लड़की से ब्याह दिया जाय, यह उनका दिल स्वीकार नहीं कर पाता था।

पर इस समय जो उन्हें वर्द्धन की कुण्डली से सरला की कुण्डली मिलाने का कुतूहल हुआ उसके पीछे अप्रत्यक्ष रूप से काम वही इच्छा कर रही थी। और पंडित जी को बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा, वर्द्धन और सरला की कुण्डलियों में जैसा अच्छा मेल बैठता है वैसा बहुत ही कम कुण्डलियों में बैठता है। यदि ज्योतिष के ये सिद्धान्त

ठीक हैं तो वर्द्धन और सरला का जोड़ा आदर्श होगा।

उस दिन पंडित जी राजेश्वरदत्त को विवाह की अस्वीकृति का पत्र नहीं लिख सके।

और ज्योतिष का वह निर्णय दिन-पर-दिन उनके दिमाग में अधिकाधिक जमकर बैठता गया। वर्द्धन से सरला का विवाह हो सकने के विरुद्ध जितने भी कारण थे उन्हें वह अपने बोझ से दबा कर चूर-चूर करने लगा। यों भी, पहाड़ों से लौटने पर वर्द्धन पहले की अपेक्षा काफी स्वस्थ हो गया था—गालों पर सुर्खी-सी आ गई थी, गरदन और छाती पर कुछ अधिक मांस आ चला था, खांसी की शिकायत बिलकुल जाती रही थी, और उसके नीरोग होते जाने में पंडित जी को कोई संदेह नहीं रह गया था। इसके अलावा जन्मकुण्डली में वर्द्धन की अकाल-मृत्यु की ओर कोई संकेत तक न था। क्यों न ज्योतिष का यह प्रयोग कर देखा जाय? और फिर, अगर वर्द्धन को सचमुच ही कोई बुरी बीमारी लग गई है तो संभव है कि विवाह से, खास तौर से सरला जैसी सुन्दर और सुशील लड़की से ब्याह होने पर, उसके जड़ से चले जाने में मदद ही मिले!

उन्होंने इस विवाह के सम्बन्ध में अभी तक केवल एक पत्र लिखा था, और जैसा कि उनका नियम था, उसकी नकल उनके पास थी। उस पत्र से यह स्पष्ट नहीं होता था कि वह अपनी शादी की स्वीकृति दे रहे हैं। इसलिये पंडित जी ने अब जो पत्र लड़की के पिता को लिखा उसमें इस तरह की वाक्य-रचना की मानों शुरू से ही वर्द्धन के साथ सरला का ब्याह लेकर बात छिड़ी थी; और वर्द्धन की जन्मकुण्डली उसके साथ भेज दी। कुण्डली भेजने में देर होने का कारण उन्होंने यह लिख दिया कि वे पहाड़ों से अभी लौटे हैं; और यह बात ठीक ही थी।

इसके बाद कई महीने उत्तर-प्रत्युत्तर में बीते। कन्या पक्ष की ओर से जब यह कहा गया कि वर्द्धन के साथ नहीं स्वयं पंडित जी के साथ

विवाह की चर्चा छेड़ी गई थी और पंडित जी के पास भेजे गए अपने पहले पत्र का हवाला दिया गया, तब पंडित जी ने उस समय का वह पत्र अग्नि की ज्वाला के हवाले करके लिख दिया कि वह पत्र अब नहीं है।

अन्त में सरला के पिता पंडित सुखदेव के सामने प्रश्न यह रह गया कि या तो वे पंडित जी की जगह पंडित जी के कनिष्ठ पुत्र से अपनी सरला को ब्याह कर उससे छुट्टी पाएँ और उसके ब्याह से समृद्ध होने की आशा को तिलांजलि देकर उसके और अपने भाग्य को सदा के लिये कोसें, और या इस सम्बन्ध को छोड़ कर इस अपयश के भागी हों कि एक जगह बात पक्की-सी होकर भी उनकी लड़की का सम्बन्ध टूट गया। अन्त में पंडित सुखदेव को पहला ही मार्ग ग्रहण करने के लिये विवश होना पड़ा, क्योंकि दूसरा मार्ग ग्रहण करने का मतलब था अनिश्चित काल तक सरला को क्वांरी घर में बिठाए रखना और बिरादरी में थू-थू कराना। डिप्टी-कलक्टर पंडित भगवतीचरण द्वारा तिरस्कृत कन्या को ब्याहने के लिये कोई दूसरा संभ्रान्त और सम्पन्न विधुर तैयार होगा, इसकी आशा पंडित सुखदेव को नहीं थी।

और अन्त में, अगले साल, एक शुभ तिथि को यशोवर्द्धन के साथ सरला का शुभ-विवाह सकुशल सम्पन्न हो गया।

[२]

पर वर्द्धन का स्वास्थ्य पहाड़ों पर से लौट कर एक बार जैसा चमका था फिर वैसा नहीं रहा, और विवाह के समय ही वह फिर खांसने लग गया था। पंडित जी फिर डरे, और विवाह के बाद तुरन्त ही उन्हें उस साल की गरमियों में भी उसे पहाड़ भेजना पड़ा। इस बार वे स्वयं छुट्टी नहीं ले सके, और वर्द्धन के साथ सिर्फ उसका बड़ा भाई राधे गया जिसकी कॉलेज की पढ़ाई उसी साल समाप्त हुई थी।

पर इस बार पहाड़ों पर भी वर्द्धन का स्वास्थ्य नहीं सुधरा और जब वर्षा होने पर राधे को वकालत की पढ़ाई शुरू करने के लिये वर्द्धन को लेकर लौटना पड़ा तब उसकी हालत देखकर पंडित जी डर गए। राधे ने पत्रों में कई बार वर्द्धन की हालत खराब होते जाने के बारे में लिखा था और नैनीताल के एक मशहूर बंगाली डॉक्टर को उसे दिखा कर उनकी यह राय भी लिखी थी कि क्षय के कीटाणु दोनों ओर के फेफड़ों में तेजी से फैल रहे हैं, पर पंडित जी राधे को भीरु और दुर्बल-हृदय समझते थे और इसलिये उसके इन पत्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया था। किन्तु अब जब उन्होंने अपनी आंखों वर्द्धन की बदली हुई हालत देखी, उनका दिल सहम गया। क्षय रोग के रोगी उन्होंने देखे थे; उनके एक मित्र की इसी रोग में मृत्यु भी हुई थी। अपने उसी आसन्न-मृत्यु रोगी मित्र की शक्ल उन्हें इस बार वर्द्धन को देखकर याद आ गई। मांसहीन उसकी देह अभी उतनी नहीं हुई थी, पर चेहरे का पीलापन वही था, और वही आंखों की चितवन। खांसी पहाड़ों से नीचे आते ही बेहद बढ़ गई थी और ज्वर भी कम होना नहीं चाहता था। पंडित जी के पुराने वैद्य जी ने अब भी क्षय रोग मानने से इनकार कर दिया, और ज्वर और खांसी की ही अलग-अलग चिकित्सा करना चाहा। पर पंडित जी को इस बार अपने वैद्य जी से सन्तोष नहीं हुआ, और वह स्वयं वर्द्धन को काशी ले गए और वहां के सबसे प्रसिद्ध कविराज को दिखाया। कविराज ने उसे क्षय की अंतिम अवस्था बताया और अपनी देखरेख में चिकित्सा शुरू करने की सलाह दी। उन दिनों पंडित जी बिजनौर में थे और इसलिये उनकी चिकित्सा करना कठिन था, और अन्त में इस बार पंडित जी ने बिजनौर के अंग्रेज सिविल-सर्जन के ही इलाज पर सन्तोष किया जिसने सबसे पहले वर्द्धन को क्षय बताया था।

एक साल तो किसी तरह वर्द्धन ने काट दिया और पंडित जी को भरोसा रहा कि वह अच्छा हो जायगा, पर दूसरी बरसात में उसने जो

खाट ली वह फिर नहीं छोड़ी और उस वक्त पंडित जी भी समझ गए कि वह उसे बचा नहीं सकते।

बीमार वर्द्धन की सेवा का प्रधान भार इस बीच जमुना पर था, और उसकी मदद बीच बीच में राधे की स्त्री करती थी। पर अब बीमार का काम इतना ज्यादा बढ़ गया था कि पंडित जी को कोई दूसरी व्यवस्था सोचनी पड़ी। बड़ा लड़का राधे वकालत पढ़ रहा था, और उसकी पढ़ाई उनकी नौकरी होने पर ही, देर से, शुरू होने के कारण वह काफी पीछे रह गया था। पढ़ने में वह बहुत तेज भी नहीं था और दो-तीन बार फेल भी हुआ था, और चौबीस-पच्चीस साल की उम्र में बी० ए० पास करके अब इलाहाबाद में वकालत पढ़ रहा था। यह उसका आखिरी साल था, जिसे पंडित जी खराब नहीं करना चाहते थे। और दूसरा लड़का रामगोपाल न तो सेवा-शुश्रूषा के योग्य ही था, और न अब वह उनके पास रहता था। दो बार फेल होने के बाद उन्नीस साल की उम्र में उसने किसी तरह एण्ट्रेंस पास किया था, पर एफ० ए० के पहले वर्ष को वह पार नहीं कर सका। उसका ब्याह हुआ एक अत्यन्त धनी परिवार की कन्या के साथ और ब्याह के कुछ ही महीने बाद वह पिता से झगड़ कर सुसराल भाग गया, और वहीं रहने लगा। पंडित जी ने भी उसके और उसकी स्त्री के लिये अपने घर का दरवाजा बंद कर दिया था।

इस समय पंडित जी के घर में उनके और रोगी वर्द्धन के अलावा जो थे उनमें उनकी बूढ़ी मां को आंखों से बहुत कम सूझने लगा था और इसलिये वे स्वयं दूसरों की सेवा की अधिकारिणी थीं। राधे की स्त्री पर घर के कामकाज का जरूरत से ज्यादा ही भारी बोझ था। जमुना की उम्र अब चौदह बरस की थी और उसका विवाह पंडित जी ने अभी तक नहीं किया था। पर रोगी की सेवा अब अकेले उसके बस की नहीं थी। वर्द्धन की बहू सरला ब्याह के बाद कुछ ही दिन रह कर चली गई थी क्योंकि उसका गौना नहीं हुआ था, और वर्द्धन

की उम्र को देखते गौना देर ही में करने का विचार था।

सिविल-सर्जन की इच्छा थी कि पंडित जी रोगी की सेवा के लिये अस्पताल की नर्स रखें; जैसी ठीक सेवा वह कर सकेगी, और कोई नहीं कर सकेगा। पर पंडित जी गोरी नर्स को अपने घर में बुलाने को तैयार नहीं थे।

एक दिन की बात है। पंडित जी कुछ विशेष रूप से चिंतित लौटे थे तीन दिन के अपने दौरे पर से। शाम का वक्त था, बरसात के दिन। पानी कई दिन से नहीं बरसा था और बेहद उमस थी, हवा एकदम बंद। पसीने से लथपथ पंडित जी अपने सोने वाले कमरे में आकर आरामकुर्सी पर पड़ गए थे, सफर के कपड़े उतारने के बाद सिर्फ एक धोती बदन से लपेटे। हाथ-मुंह धोकर और गीले तौलिये से सारा बदन पोंछ कर उन्होंने अभी-अभी दो गिलास ठण्ढई पी थी, पर उमस के कारण नई सुराही का भी पानी ठण्ढा नहीं था। प्यास और भी बढ़ गई थी, और वर्द्धन के 'टेम्परेचर चार्ट' ने उनकी गरमी और भी बढ़ा दी थी।

उनको लगा, जैसे सिर पर झूलने वाला पंखा पूरी तेजी से नहीं चल रहा है।

"घसीटे," पंडित जी गरज उठे।

एक झटके के साथ पंखा और भी जोर से खिंचा और छूटा, खिंचा और छूटा, और सागर की तरंगों में हिलने वाली नाव की तरह इधर से उधर और उधर से इधर सारे कमरे की चौड़ाई को तेजी से चीरने लगा। और फिर अचानक ही एक दूसरे झटके के साथ वह थिरकता, कांपता, हिलता हुआ बीच में आकर ठिठक कर रुक गया।

दीवाल के छेद में रगड़ खाती रहने वाली रस्सी इस अतिरिक्त खिंचाव को सहन न कर पा अचानक टूट गई थी।

पंडित जी की क्रोधाग्नि के पूरी तरह प्रज्वलित हो उठने के लिये इस घटना ने ईंधन में घी का काम किया। वे तेजी से उठे और कमरे

से निकल कर बाहर बरामदे में आए जहाँ तेरह-चौदह बरस की उम्र का पंखाकुली घसीटा रस्सी के टूटे हुए टुकड़े का टूटा हुआ छोर अपने हाथ में लिये भयभीत अवस्था में इसी पसोपेश में पड़ा हुआ था कि कमरे में घुस कर पंडित जी को रस्सी टूटने की खबर दे या नहीं।

कि पंडित जी ने अपने पांव की चमड़े की स्लिपर उतार कर उस नादान छोकरे के सिर पर तड़ातड़ तीन-चार जमा दीं—"बदमाश छोकरा,...रस्सी कब से घिस गई, हरामजादे ने खयाल ही नहीं किया। ...चमड़ी उधेड़ दूंगा, मारे हंटरों के, अगर फिर कभी ऐसी गफलत हुई।..."

और "नहीं हजूर, अब कभी ऐसी खता नहीं होगी,..... छोड़ दीजिये सरकार,...मर जाऊंगा मालिक..." चिल्लाते हुए घसीटे पर इस बार रहम करके, और सिर्फ स्लिपर का ही प्रसाद देकर, पंडित जी उतनी ही तेजी से वर्द्धन के कमरे में आ पहुँचे, जहाँ वह हलके जलते हुए लैम्प के प्रकाश में अपनी खाट पर दीवाल की ओर मुंह किये सोए रहने का स्वांग किये हुए था। घसीटे का आर्त्तनाद खतरे की एक घण्टी थी, और जिस तरह घर के सभी लोगों ने आत्मरक्षा का अपना-अपना अलग-अलग रास्ता अख्तियार किया था, उसी तरह वर्द्धन ने भी।

"जमुना कहां है?" वर्द्धन की नींद की उपेक्षा कर पंडित जी ने मानो उसीसे पूछा, और वर्द्धन के लिये सहसा जग उठने का स्वांग रचने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह गया। हड़बड़ा कर उसने अपना सिर तकिये पर से उठाया और डरते-डरते करवट बदल पंडित जी की ओर मुखातिब होते हुए सहमी आवाज में जवाब दिया—"जी, अभी तो यहीं थी।"

"जमना!.....ओ जमना की बच्ची!....." पंडित जी अंदर के दरवाजे पर खड़े होकर चीख उठे, और जमुना ने भी आत्मरक्षा का जो अपना रास्ता अख्तियार किया था उसे छोड़ कर—वह अन्दर के बगल वाले, अपनी बड़ी भाभी के, कमरे में दम-साधे चुप खड़ी थी—

जल्दी से दरवाजा खोल निकल आई और भय से कांपती हुई पंडित जी के सामने आ खड़ी हुई।

"कहाँ गई थी डयूटी छोड़ कर?" पंडित जी की लाल-लाल आंखें जमुना के चेहरे पर गड़ी हुई थीं।

"जी.....पेशाब करने गई थी...," जमुना ने अपने-जान अपना अमोघ अस्त्र छोड़ा, क्योंकि इस जवाब के बाद अक्सर वह छूटती आई थी।

"इधर आ!...देख, यह क्या है!" पंडित जी ने वर्द्धन के नीचे रखी तामचीनी की थूकदानी की ओर इशारा करते हुए कहा, और जमुना ने परम आज्ञाकारी की भांति जल्दी से आकर थूकदानी की परीक्षा की।

वह कुछ नहीं समझी, क्या बात है।

"क्या कहा था उस दिन?...दौरे पर जाते वक्त?"

"जी..?"

"जी की बच्ची!...राख भर कर रखने को कहा था कि नहीं?" एक हाथ से जमुना का एक कान जोरों से खींचते हुए, दूसरे से उसके गाल पर एक करारा तमाचा पंडित जी ने कसा।

जमुना का वह कान और वह गाल इस तरह जल उठा मानों कोई अंगारा रख दिया गया हो वहां, पर उसके मुंह से एक उफ तक नहीं निकली। बड़े संचित अभ्यास का प्रभाव था यह।

"बहुत दिनों से मार नहीं पड़ी है तुझ पर, चल मेरे कमरे में!" पंडित जी ने दूसरे तमाचे के लिये उठते हुए अपने हाथ को बीच ही में रोक कर कहा और जमुना की बांह पकड़ कर अपनी वज्र-मुष्टि में उसे कसे हुए वे लम्बे-लम्बे कदम रखते हुए, गिरती-पड़ती-लड़खड़ाती जमुना को खींचते अपने सोने के कमरे में ले आए। पंखे की रस्सी इस बीच ठीक हो चुकी थी, और कमरे में पंडित जी के घुसते ही छोटा-सा घसीटा प्राणपण से उस भारी पंखे को खींचने लग गया था।

बरामदे में खुलने वाला दरवाजा पंडित जी ने कमरे में घुसते ही

अन्दर से बन्द कर लिया, और अन्दर वाले एक दूसरे कमरे की ओर खुलने वाले दरवाजे में भी उन्होंने सिटकिनी लगा ली।

कमरे के बीच में खड़ी जमुना थर-थर कांप रही थी, कि बगल की दीवार पर टंगा चमड़े का चाबुक पंडित जी ने उतारा। और दूसरे ही क्षण एक 'सड़ाक' के साथ घोड़ा मारने वाले उस चाबुक ने—जो बच्चों के लिये कब से यमराज का प्रतीक बना हुआ था—जमुना की टांगों को लपेट लिया।

एक हलकी सी चीख जमुना के मुंह से निकली—बहुत ही हलकी, क्योंकि वह जानती थी कि जितना ज्यादा वह चीखेगी उतनी ही ज्यादा मार पड़ेगी और उसकी दादी भी उसे बचा नहीं सकेंगी।

"उतार कपड़े," चाबुक को दुबारा सिर तक ऊँचा उठाते हुए पंडित जी ने हुक्म दिया। चाबुक वे नंगे-बदन पर ही मारने के अभ्यस्त थे।

नंगा कराके चाबुक की मार आखिरी बार जमुना पर उसकी मां के जीवित रहते ही पड़ी थी, जब वह आठ-नौ साल की थी। इस बीच दो-एक बार जरूर यह नौबत आती दिखाई दी थी, पर कोई न कोई बाधा बीच में आ गई थी और जमुना अपने भाग्य को सराहती हुई उस भयंकर मार से बच निकली थी।

पर अब जमुना 'सयानी' समझी जाती थी। बारह-तेरह साल की उसकी उम्र थी और उसकी दादी ने उस पर बहुत सी ऐसी रोकें लगा दी थीं जो पहले नहीं लगी थीं। अब भी उसे नंगे होने के लिये कहा जायगा चाबुक की मार खाने के लिये, यह उसके दिमाग में ही नहीं आया था। चाबुक के पहले वार की चोट को भी भूल कर वह एकदम घबड़ाई-सी खड़ी रह गई।

"उतार!!!.....सुना नहीं क्या?" पंडित जी फिर गरज उठे। और जब जमुना फिर भी जैसी की तैसी खड़ी रह गई और इस हुक्म को सुनते ही एक-एक कर अपने सारे कपड़े उतार डालने के नियम का

उसकी ओर से कुछ भी पालन होता नहीं दिखाई दिया तब पंडित जी इस नई हिमाकत की कोई वजह नहीं समझ पाए। क्रोध से एकदम अंधे होकर उन्होंने जमुना की धोती का पल्ला पकड़ जोर से खींचा। पर नंगे होने का डर किशोरी जमुना में इतना अधिक पैदा हो चुका था कि किसी भी परिणाम का खयाल किये बिना वह धोती के बचे हुए हिस्से को जोर से पकड़े वहीं बैठ गई।

इस बाधा ने पंडित जी के क्रोध को और भी बड़ा निमंत्रण दिया। और इसके बाद जमुना को पकड़ कर खींचते-खांचते, लात और घूंसों से, चाबुक और चांटों से उसकी पूरी दुर्गति करते हुए उन्होंने जब सहसा यह आविष्कार किया कि जमुना अब बची नहीं रह गई, तब एक-बारगी ही उनके हाथ और पांव जहां के तहां रुक गए और उनका सारा मस्तिष्क जैसे सन्न होकर रह गया।

"जा,...चली जा यहां से, कम्बख्त।" कांपती-सी, सहमी-सी, कठोर पर साथ ही अजीब ढीली-ढीली आवाज में उन्होंने कहा, उस स्तब्धावस्था का अन्त होने पर, और जमुना की ओर से मुंह फेर कर वे नजदीक की एक कुरसी पर धम् से पड़ गए।

इस घटना के बाद पंडित जी के लिये, जमुना से सामना हो जाने पर, उसकी ओर आंख उठा कर देखना मुश्किल हो चला—एक अजीब झिझक-सी, एक अजीब-सी नफरत अपने अन्दर उन्हें दिखाई देती उसके लिये। और वर्द्धन की परिचर्या के सिलसिले में भी यह एक और नई मुसीबत खड़ी हो गई उनके सामने।

और एक हफ्ता बीतते न बीतते पंडित जी ने एक नया निश्चय कर डाला। सरला के पिता को उन्होंने लिखा कि वर्द्धन की बीमारी बहुत बढ़ गई है और उसकी सेवा के लिये सरला की जरूरत है, इस-लिये गौने की जो रस्म जरूरी समझें वर्द्धन की अनुपस्थिति में ही पूरी करके उसे पत्र के पाते ही पहुँचा जाएँ।

और इस तरह, बिना गौना हुए ही, एक दिन सरला पति की सेवा

के लिये आ पहुँची। पंडित सुखदेव खुश थे कि गौने के खर्चे से वे बिलकुल ही बच गए, और सरला भी खुश थी कि पति की बीमारी में उसे उनके पास रहने का मौका दिया गया। बुरा सिर्फ पंडित जी की माँ को लगा, जो गौने-बिना बहू का दुबारा घर आना परम्परा के विरुद्ध होने के कारण अशुभसूचक समझती थीं।

[३]

रोगी के कमरे में ले जाने के पहले सरला को जमुना पंडित जी के कमरे में ले गई। रात के कोई सात-आठ बजे का वक्त था, और मेज पर एक बड़ा सा लैम्प जल रहा था। सिविल-सर्जन को बिदा करके पंडित जी अभी-अभी लौटे थे और चिंतित मुद्रा में कमरे में, एक छोर से दूसरे छोर तक, चक्कर लगा रहे थे। रोगी की दशा उस दिन विशेष रूप से चिंताजनक थी, और सिविल-सर्जन कोई आशा देने को तैयार नहीं था।

दरवाजे का परदा धीरे से उठाकर जमुना ने, और उसके पीछे-पीछे लम्बे घूंघट में सारा मुंह और रेशमी साड़ी में सारी देह छिपाए, सिकुड़ी-सिकुड़ाई, लज्जा-संकोच की प्रतिमा-सी सरला ने, प्रवेश किया। पंडित जी ने उन्हें देखा और धीरे-धीरे आकर आरामकुरसी पर लेट गए। निकट के कालीन पर उन दोनों को बैठने के लिये उन्होंने हाथ से जमुना को इशारा किया।

दोनों बैठ गईं, और थोड़ी देर सन्नाटा रहा। बाहर मूसलाधार वृष्टि हो रही थी और तेज ठण्डी हवा खिड़कियों और दरवाजों के परदों को झकझोर रही थी। सरला सिर नीचा किये, और भी सिकुड़ती हुई बैठी अपने पैर के नाखून से कालीन के एक फूल के रोओं को छेड़ रही थी, और जमुना की त्रस्त आंखें पंडित जी की ओर थीं।

सहसा सामने की दीवाल पर से अपनी दृष्टि उतार कर, सरला पर

उसे स्थापित कर, बाहर गरजते हुए बादलों के स्वर में स्वर मिलाते हुए वह बोले—"सावित्री-सत्यवान की कथा पढ़ी है ?"

सरला बहू थी, ससुर के सामने कैसे कुछ बोलती ! जमुना उसके मुंह के पास अपना कान ले गई, पर कोई उत्तर नहीं था।

"क्यों,···क्या कहती है तेरी भाभी ?" पंडित जी ने और भी गंभीर स्वर में जमुना से पूछा।

इस बार जमुना को अस्फुट-सा उत्तर मिला—"पढ़ी है।" और जमुना ने अपने पिता से कहा—"जी, पढ़ी है।"

"तो तू सावित्री बनना चाहती है !··· यमराज के हाथों से बचा लेगी अपने पति को ?"

जमुना की आंखें छलछला आईं वर्द्धन के सम्बन्ध में यमराज की बात सुन कर, और उसका गला रुंध गया।

फिर थोड़ी देर सन्नाटा रहा।

"वर्द्धन को अब कोई सावित्री ही बचा सकती है," पंडित जी ने सन्नाटा भंग किया। "तुझमें सावित्री बनने का साहस हो तो जा, उसकी सेवा कर, उसे बचा ले। नहीं तो अपने बाप के साथ लौट जा।" और आवेश में पंडित जी उठ खड़े हुए।

जमुना भी डरी-सी, घबड़ाई-सी पंडित जी के साथ-साथ उठ खड़ी हुई, और उसके साथ-साथ सरला भी; पर रेशमी साड़ी के अनभ्यस्त घेरे में उसके पाँव अटक गए, और वह गिरते-गिरते बची।

"यह रेशमी साड़ी पहन कर बीमार पति की सेवा करने आई है ! चली जा यहाँ से !" पंडित जी गरज उठे।

"जी, मुझीसे गलती हुई,··· मैंने ही यह पहनने को कहा···भाभी तो योंही आ रही थीं···" डर से कांपती-सी जमुना ने सरला का बचाव किया, और जमुना के भयभीत, कांपते, स्वर से डरी हुई सरला पसीने-पसीने हो गई। पंडित जी के क्रोधी स्वभाव के बारे में वह काफी सुन चुकी थी और ब्याह के बाद कुछ दिन के लिये ही आकर बहुत-

कुछ देख गई थी, पर स्वयं पंडित जी के सम्पर्क में वह आज पहले-ही-पहल आई थी। उसके पिता का यह स्पष्ट आदेश था कि अपने पति से भी अधिक वह अपने ससुर की, पंडित जी की, प्रीतिभाजन बनने का प्रयत्न करे, पंडित जी की कृपा पाने के लिये कुछ भी उठा न रखे।

जल्दी से जमुना से उसने कहा—"चलो, यह साड़ी बदल दूँगी।" डर के मारे उसकी आवाज आवश्यकता से अधिक ऊँची हो गई थी और पंडित जी के कानों तक पहुँच गई थी।

"जा, सावित्री बन कर आना।" पंडित जी ने कुछ ठण्ढे स्वर में कहा और कमरे से चले जाने का इशारा किया।

मानव-प्रकृति के एक छोर पर एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्ति होते हैं। जैसे वे हमेशा रहते आए हैं वैसे ही हमेशा रहना चाहते हैं, परिस्थितियों के अनुसार वे अपने को बदल नहीं सकते, और एक ही ढर्रे पर चलते चले जाते हैं। कोई बड़ी से बड़ी घटना भी, बड़ी से बड़ी आवश्यकता भी, उनकी बनी-बनाई मर्यादा को भंग नहीं कर सकती। इस प्रकार के व्यक्ति अपने दुर्जेय हठ के कारण बाहरी बाधाओं से टकरा-टकरा कर क्षत-विक्षत होते रहते हैं, और दुःख ही दुःख उनके भाग्य में बदा होता है।

सरला यदि इसी प्रकृति की होती तो न वह अपने श्वसुर पंडित जी की आंखों में चढ़ पाती और न मृत्यु-शैया पर पड़े अपने पति की सेवा करके अपनी छाती ठंढी करने का मौका पा सकती। पर अगर वह साधारण मानव-प्रकृति भी लेकर विकसित हुई होती तब भी, बिना गौने के श्वसुर-गृह में बसने के लिये आकर जो लोक-लज्जा उसके पाले पड़ी थी उसीके भार में दब कर, अपने घूंघट में छिपी-छिपाई, बहू बना, वह घर के कोनों में लुकती-छिपती फिरती, रोगी पति की सेवा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व पाकर भी उससे लाभ न उठा सकती, और पति की चिंता में मन ही मन घुलती, आधे पेट खाकर उठ जाती और आधी-नींद सोती—पर न पति के ही किसी काम आती और न श्वसुर का ही

हाथ बंटा पाती, और पति की मृत्यु के बाद, चिर-वैधव्य का शाप वहन करती हुई इसी अनुशोचना, इसी पछतावे में जिन्दगी काट देती कि मौका मिलने पर भी उसने मृत्यु-शैया पर पड़े अपने पति की सेवा नहीं की, दिन-रात स्वामी के चरणों में बैठने की अनुमति पाकर भी उन्हें जी-भर कर नहीं देखा ;

बिना गौने के ही दूसरी बार ससुराल आकर सोलह वर्ष की उम्र में ही काफी से कहीं ज्यादा समझदार सरला स्थिति की असाधारणता तो पहले ही कुछ-कुछ समझ गई थी; अब अपने श्वसुर के सामने लाई जाने पर उनका अद्‌भुत व्यवहार देख कर वह बहुत-कुछ जान गई। सरला अपने व्यवहार-कुशल पिता के आंगन में पाली-पोसी गई थी, और अपने पिता पर उसकी कोई अश्रद्धा नहीं थी। पंडित जी के अधिक से अधिक और निकट से निकट सम्पर्क का लाभ उठा कर भी जमुना ने पंडित जी के जिस क्रोध को अकारण समझा, सरला ने उसके पीछे छिपी वेदना को भी समझ लिया, और यह भी समझ लिया कि उसके पति के बचने की आशा बहुत ही कम है। और साथ ही साथ उसे यह भी लगा कि जो पंडित जी सारे घर वालों के लिये एक पहेली बने हुए हैं और जिनकी इच्छा को समझना और उसके अनुसार चल कर उनका क्रोध झेलने से बचना लोग असंभव समझते हैं, उन पंडित जी को वह समझ भी लेगी और उनके अनुसार चल भी लेगी।

पूरी बांहों की एक सफेद सूती कमीज और एक मोटी-सी मरदानी सफेद धोती पहन कर (उन दिनों साड़ी की प्रथा आम नहीं हुई थी, और घरों में स्त्रियाँ भी मरदानी धोतियाँ ही पहनती थीं) सरला ने जल्दी-जल्दी अपने सारे गहने उतार डाले। सुहाग के चिह्न-स्वरूप दोनों हाथों में चार-चार चूड़ियां, नाक में नलकी (लौंग) और पांवों की उंगलियों में केवल दो-दो बिछुए ही गहनों के नाम पर उसके बदन पर रह गए। दोनों कानों में भी सिर्फ एक ही एक बाली झूल रही थी।

इस सरल वेष-भूषा में जब सरला जमुना के साथ-साथ पंडित जी

के कमरे में दाखिल हुई, तब कमरे को उसने खाली पाया; पंडित जी उस समय रोगी के कमरे में थे। वर्द्धन को बड़े जोर की खांसी आई थी और थोड़ा रक्त भी कफ के साथ-साथ निकल पड़ा था, जैसा कि दो-तीन महीने मे बीच-बीच में कभी-कभी होने लगा था। इधर एक हफ्ते से रक्त का जाना कुछ बढ़ गया था, और यही विशेष चिन्ता का कारण था।

रोगी के कमरे के दरवाजे तक आकर जमुना तो पिता को सरला के आने की खबर देने के लिये अन्दर दाखिल हो गई, और सरला परदे की ओट से ताकने लगी। खांसी का दौरा बन्द हो गया था, और वर्द्धन तकियो के बीच बेदम-सा होकर पड़ा था। पंडित जी उसके सिरहाने बिना-बांहों वाली एक बेंत की कुर्सी पर बैठे उसके माथे पर धीरे-धीरे हाथ फेर रहे थे, और वर्द्धन के पांवों के पास, खाट के किनारे, पंडित जी का सबसे पुराना नौकर रामदीन खड़ा था। पंडित जी के माथे की रेखाएँ बहुत ही गहरी हो रही थीं, भौंहें ऊपर को चढ़ी हुई थीं। रामदीन की आँखें डबडबाई हुई थीं, चेहरा बहुत ही उतरा हुआ था। दूर पर एक कोने में हरे 'शेड' का एक लैम्प कमरे भर में हलकी रोशनी फैला रहा था।

जमुना काफी देर घबड़ाई और डरी-सी भाई की खाट से कुछ दूर खड़ी रही। जब पंडित जी की आंखें वर्द्धन के चेहरे पर से हट कर ऊपर उठीं तब उन्हें वह दिखाई दी, और प्रश्नसूचक गंभीर दृष्टि से उन्होंने उसकी ओर ताका।

जमुना ने बताया कि उसकी छोटी भाभी कपड़े बदल कर आ गई है। पंडित जी उठ खड़े हुए, और आँखों के इशारे से वर्द्धन की बहू को अन्दर आने देने का इशारा करके, दूसरे दरवाजे से स्वयं बाहर निकल गए। रामदीन भी उनके पीछे-पीछे चला गया। पंडित जी वर्द्धन की चिन्ता में उस समय अन्यमनस्क-से हो रहे थे, सरला की वेषभूषा से उसके सावित्रीत्व की परीक्षा लेने की बात वे भूल गए थे;

नववधू और उसके रुग्ण पति के प्रथम साक्षात्कार के समय अपनी उपस्थिति के अनौचित्य का खयाल ही प्रधान रहा।

पर यह मर्यादा निभ नहीं सकती थी। यह संभव नहीं था कि वर्द्धन के पास जिस समय सरला हो उस समय पंडित जी वहां आएँ ही नहीं। यदि इस मर्यादा का पालन करना पंडित जी की दृष्टि में अनिवार्य होता तो वे सरला को वर्द्धन की सेवा का प्रधान भार कभी न देते; वर्द्धन की हालत इधर साफ तौर से खराब थी और पंडित जी का समय-असमय उसे देखने के लिये आते रहना रुक नहीं सकता था।

दूसरे ही दिन पंडित जी उस मर्यादा का उल्लंघन करके वर्द्धन के कमरे में, बिना कोई सूचना दिये, दाखिल हो गए। सवेरे के आठ-नौ बजे का वक्त था, और आधी से अधिक रात बिना नींद आए बिता कर वर्द्धन इस समय अर्द्ध-निद्रा अर्द्ध-तन्द्रा में पड़ा था। पंडित जी की व्यवस्था के अनुसार रात भर जमुना और सरला दोनों उसी कमरे में रही थीं— आधी रात तक सरला जगी थी, और जमुना दूर कोने में लैम्प के पास रखी आरामकुरसी पर पड़ी-पड़ी जितना-कुछ सो पाई थी सोई थी, और आधी रात के बाद से जमुना अपने भाई की खाट के पास बैठी थी और सरला, न चाहने पर भी, जमुना द्वारा पंडित जी का डर दिखाए जाने पर ही, उस आरामकुरसी पर जाकर बैठ गई थी। पर उसकी आंखों में उस रात नींद नहीं थी। कई घण्टे उसने उसी प्रकार बैठे-बैठे काट दिये, और सबेरा होने के पहले ही नहा-धोकर निवृत्त होने के लिये चली गई और कुछ अंधेरा रहते ही आकर जमुना को छुट्टी दे उसकी जगह ले ली। इस समय वह रोगी के कमरे की सफाई में लगी थी और जिस समय पंडित जी अन्दर दाखिल हुए, खाट के पास नीचे रखी तामचीनी की थूकदानी दोनों हाथों में उठा कर साफ करने के लिये बाहर ले जाने को वह खड़ी ही हुई थी। पंडित जी खाट की ओर बढ़ रहे थे, और सरला ने खाट से दरवाजे की ओर पहला कदम उठाया था। अचानक पंडित जी को सामने देख वह एकदम सकपका गई और घूंघट

खींचने के लिये उसने थूकदानी नीचे रख दी। पर घबड़ाहट में उसका हाथ इस तरह हिल गया कि थूकदानी के अन्दर की थोड़ी सी गन्दगी जमीन पर छिटक पड़ी। सरला और भी घबड़ा गई, जल्दी से वहीं, थूकदानी के पास बैठ कर उसने घूंघट खींचने की कोशिश की। पर सफाई करने के पहले अपनी धोती का आंचल फेंटे की तरह उसने कमर के चारो ओर कस कर लपेट लिया था, और इसलिये एक-चौथाई खुले सिर पर फालतू कपड़ा बिलकुल ही नहीं रह गया था कि उसे खींच-तान कर कम-से-कम अपनी आंखें तो वह ढक ले! पर फिर भी खींचतान उसने की, और जब सफल नहीं हुई तो धरती में सिर-गाड़े वह ज्यों की त्यो निश्चल बैठ रही।

पंडित जी ने उसकी यह कुल क्रिया देखी— आदि से अन्त तक। कमर में आंचल का फेंटा लपेटे, माथे और गालो पर दो-चार बिखरी हुई बालों की लटें लटकाए, सफेद धोती और सफेद ही कमीज में, निराभरणा सी वह, दोनो हाथों में थूकदानी लिये, साक्षात् पतिव्रता सावित्री की ही प्रतिच्छाया सी लगी थी पंडित जी को, जब वे दरवाजे का परदा हटा कर कमरे के अन्दर दाखिल हुए थे। और सहसा उन्हें देख कर जिस लज्जा-संकोच का परिचय उसने दिया था, और घबड़ा कर भी जो वह पूरी तरह से नहीं घबड़ाई थी और धरती में सिर-गाड़े जिस तरह बैठी थी—यह सब पंडित जी को बहुत ही भा रहा था।

"जा, ले जा बाहर।··· फिर यहाँ आकर साफ कर डालना।··· घूंघट खींचने की कोई जरूरत नहीं थी ऐसे वक्त," सरला के और भी निकट आकर पंडित जी ने मृदुल स्वर में धीरे-धीरे कहा। "वर्द्धन की बहू नहीं, नर्स है तू अभी, पर्दा करने से काम में हर्ज होगा।··· जा!"

कुछ ही देर पहले जमुना भी आकर पंडित जी के पीछे खड़ी हो गई थी! उसे आश्चर्य हुआ जब उसने देखा कि छोटी भाभी ने थूकदानी लुढ़का दी है और फिर भी उस पर डाट नहीं पड़ रही है, पंडित जी का स्वर फिर भी इतना नरम है। पर और भी अधिक आश्चर्य उसे

तब हुआ जब पंडित जी के कहने पर बिना घूंघट खींचे ही उसकी छोटी भाभी थूकदानी लेकर, मुंह खोले, उनके सामने से होकर निकल गई।

पंडित जी के सामने उस दिन जो सरला का परदा छूटा सो हमेशा के लिये छूटा ही रह गया, और धीरे-धीरे, आवश्यकता-वश, पंडित जी के प्रश्नों का उत्तर भी वह स्वयं ही देने लग गई, जमुना के 'दुभाषिया' बनने की जरूरत ही नहीं रह गई।

[४]

सरला तीन-चार महीने ही पति-सेवा कर सकी। जाड़ा शुरू होते-होते वर्द्धन का शरीर कंकाल-मात्र रह गया, और जाड़ा बीतने के पहले ही एक दिन सवेरे वह चल बसा।

इस मृत्यु के समय पंडित जी दौरे पर थे; कई दिन से वर्द्धन के प्राण छूटने-छूटने हो रहे थे, और पंडित जी का एक बहुत जरूरी दौरा कब से रुकता चला आ रहा था। मरने से एक दिन पहले वर्द्धन की हालत कुछ सुधरी दिखाई दी, और तार देकर इलाहाबाद से राधे भी बुला लिया गया था। और कुछ निश्चित होकर ही पंडित जी दौरे पर गए थे।

वर्द्धन की मृत्यु के दूसरे दिन, तार से खबर पाने के बाद जल्द से जल्द, पंडित जी तीसरे पहर घर लौटे, और आते ही उन्होंने, बिना कपड़े बदले ही, सबसे पहले सरला को अपने कमरे में बुलवाया।

सरला की आंखों के सामने ही वर्द्धन ने प्राण छोड़े थे। सारा घर उस वक्त उसी कमरे में इकट्ठा था। ददिया सास और जेठ के कारण सरला दूर एक कोने में बैठी घूंघट की ओट से अपने स्वामी की आंखों की बुझती ज्योति देख रही थी; और जब वह ज्योति बुझ गई और वर्द्धन की दादी और जमुना जोर से रो पड़े, तब वह स्तब्ध सी जैसी की तैसी बैठी रह गई थी। न उसकी आंखों से एक बूंद आंसू निकला था और न कण्ठ से कोई ध्वनि ही।

कुछ देर बाद ददिया सास के हुक्म से नौकरानी जब सरला को अन्दर लिवा ले गई, तब भी यंत्र-चालित की भाँति वह अन्दर चली गई और भीतर के बरामदे में जहाँ उसकी ददिया सास और बड़ी जिठानी धरती पर बैठी-बैठी फिर रोने लगी थीं वहीं जाकर बिठा दी गई। और फिर भी जब वह नहीं रोई तब उसकी ददिया सास की गालियों की बौछार उस पर पड़ने लगी।

जमुना की दादी शुरू से ही सरला के विरुद्ध हो गई थीं। बिना-गौने उसका रोगी पति की सेवा में दिन-रात लगे रहना, ससुर से परदा न करके मुंह-खोले खटाखट उनकी बातों का आप ही जवाब देते जाना, उन्हें एक आंख न भाता था। और जब उस बेपर्दा मेम साहब को उस 'पंडित' ने सावित्री बना दिया तब तो वह आग-बबूला ही हो गई थीं। उसी समय से उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके वर्द्धन को खाकर ही यह छोड़ेगी।

और वही हुआ भी। और अब रांड़ की आंखों में आंसू तक नहीं हैं। वह रोना भूल कर गरज उठीं—"खसम तो खा गई रांड़, अब आंसू की बूंद भी नहीं गिराएगी? और किसे खाएगी कुलच्छनी?"

पर सरला फिर भी नहीं रोई, और जब उसके पांवों के बिछुए निकाल लिये गए और हाथों की चूड़ियां फोड़ दी गईं और बिना किनारी की सफेद धोती पहना कर वह एक अँधेरी सी कोठरी में सबसे अलग बिठा दी गई और यह ताकीद कर दी गई कि तेरहीं तक वह वहाँ से न टले तब बिलकुल अकेले में, एकान्त में, जब एक बार उसकी आंसुओं की धारा बहनी शुरू हुई तो वह रुकी ही नहीं, घंटों बहती रही। उसे लगा, जैसे उसका सब कुछ बहता चला जा रहा है, वह कुछ भी बचाकर नहीं रख सकेगी।

"छोटी बहू को पंडित जी बुला रहे हैं," एक नौकर ने आकर जमुना की दादी को खबर दी, जो सरला की कोठरी के सामने वाले बरामदे में ही खाट पर बैठी थीं।

"अकल मारी गई है, पंडित की ?" दादी ने कड़क कर कहा।

नौकर बेचारा असमंजस में पड़ा खड़ा रहा। कुछ देर बाद बोला—"तो सरकार से क्या कह दूं दादी जी ?"

"यही कह दे जाके—कि अकल मारी गई है उसकी ?" दादी ने उसी स्वर में जवाब दिया।

पर नौकर फिर भी खड़ा रहा। दादी भी जानती थीं कि उनके बेटे के सामने जवाब देने की जब घर वालों की हिम्मत नहीं है तो नौकर होकर भला वह क्या कहेगा; और अगर वापस जाकर उसने कुछ नहीं कहा तब भी उसकी खैरियत नहीं। और इसलिये, "तू रहने दे, मैं ही कहे आती हूँ," कह कर वह खुद ही उठ खड़ी हुईं और अपनी लाठी सम्हाल कर धीरे-धीरे बाहर के कमरे की तरफ चल दीं।

पंडित जी अपनी बाहर की पोशाक पूरी तरह से उतारे बिना ही अपने कमरे की आरामकुरसी पर पड़े थे; उनकी आंखें बंद थीं।

मां की लाठी की ठुक-ठुक नजदीक सुनकर जो उन्होंने आंखें खोलीं तो देखा कि वह वहीं चली आ रही हैं।

पंडित जी की आंखें शायद गीली थीं। जल्दी से जेब में से रूमाल निकाल कर और आँखें पोंछ कर वह लेटे से बैठे हो गए और कुछ कहना ही चाहते थे कि उनकी मां कुछ दूर से ही गरज उठीं—"क्यों रे पंडित, छोटी बहू को बुलाया है तू ने ?"

पंडित जी की भवें तन गईं। रूखे स्वर में बोले—'हाँ।"

उनकी मां कबसे भरी बैठी थीं, यह जवाब सुनकर एकदम आग-बबूला ही हो गईं—"तो अब तू रांड़ को रांड़ की तरह भी नहीं रहने देगा, क्यों ? डिपटी क्या हुआ, तू धरम-करम से भी ऊपर हो गया ? अपने इन्हीं कुलच्छनों से अपने बाप को खा गया, लछमी जैसी घर की रानी बहू को खा गया, अब जवान बेटा चला गया तब भी तेरी मन नहीं फिरेगी ? मां अभागिन रांड़ बनी घर में बैठी है, एक और रांड़ हो गई तेरे घर में, तेरे करमों से। फिर भी धरम-करम पर तेरा मन

नहीं बैठेगा। कहां से यह रावण जना मेरी कोख ने, भगवान्?" और धरती पर वहीं बैठ कर वह फूट-फूट कर रोने लगीं।

मां की एक साथ इतनी लम्बी-चौड़ी फटकार पंडित जी ने बहुत दिन बाद आज सुनी थी। उनके भी क्रोध का पारा चढ़ता ही चला जा रहा था, कि मां के रोने ने उसे एकदम नीचा उतार दिया। नरम पड़ कर सिर्फ इतना ही बोले—"तू मुझे नहीं समझ सकेगी अम्मां, क्यों पड़ती है मेरे बीच में?"

"मैं क्यों समझ सकूंगी तुझे भगवतिया," अचानक रोना बन्द कर के उनकी मां फिर उबल पड़ीं—"दस महीने अपनी कोख में थोड़े ही रखा है मैंने तुझे—पत्थर से पैदा हुआ है तू तो....."

"ले, तुझे जो बकना है बक, मैं बाहर चला!" कह कर पंडित जी ने बीच ही में अपनी मा को रोक दिया। पर पंडित जी को कहीं नहीं जाना पड़ा, उनकी मां ही उन्हें कोसती हुई उठ गईं—"कर, जो तेरे जी में आए। मैं तो जीती ही मर गई तेरे लिये। खसम गँवा के भी रांड़ ने आंसू की एक बूंद नहीं गिराई; वह तो बैठी ही है फिर से सुहाग रचाने के लिये। जैसा मलेच्छ आप है वैसी ही मलेच्छ कुलच्छनी बहू ले आया न जाने कहां से। ...अब ठौर नहीं है मेरे लिये इस घर में....."

और सरला की एकान्त तपस्या का उसी दिन अंत हो गया।

रात को पंडित जी के कमरे में रामायण-पाठ हुआ, जिसमें दादी को छोड़ कर सारा परिवार शामिल हुआ—राधे, राधे की बहू, जमुना और सरला। घूँघट सिर्फ राधे की बहू ही खींचे थी; सरला को पंडित जी ने उसके जेठ के सामने भी उस दिन घूँघट नहीं खींचने दिया।

जमुना के द्वारा रामायण-पाठ के लिये आने का पंडित जी का आदेश पाकर सरला को अनिच्छा रहते भी अपने खुले हुए बाल कुछ सँवारने पड़े, अपनी अस्तव्यस्त और विरल वेशभूषा ठीक करनी पड़ी। उसका शरीर-मन इस तरह सन्न सा हो गया था कि किसी प्रकार की

भी गति, कैसी भी हरकत, उसे अच्छी नहीं लग रही थी। रोते-रोते इतने आंसू वह बहा चुकी थी कि उसकी आंखों के आगे अँधेरा ही अँधेरा सा था, और मन और शरीर के अस्तित्व तक को वह भूली सी पड़ी थी। और उसे लग रहा था कि उसकी जीवन-धारा बड़ी तेज गति से ढलती चली जा रही है, और इसी तरह बहते-बहते वह सारी की सारी ढल जायगी।

और बड़ा जोर लगा कर ही इस अवसाद का बोझ वह थोड़ा-बहुत हटा सकी।

पंडित जी के कमरे में जब वह जमुना के साथ दाखिल हुई, उस समय पंडित जी बड़ी तेजी से कमरे के एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर लगा रहे थे। उन्हें अन्दर आते देख वह सहसा जहाँ के तहाँ रुक गए। कई कारणों से सरला घूंघट निकाले हुए थी। कुछ तो इसलिये कि नर्स का उसका काम समाप्त हो चुका था और इस समय वह श्वसुर के सामने कोरी विधवा बहू के रूप में ही आ रही थी। कुछ इसलिये भी कि ददिया सास और श्वसुर के बीच जो तनातनी हो गई थी, जमुना द्वारा उसका कुछ आभास उसे मिल चुका था। और कुछ इसलिये भी कि बालों को सँवार कर ठीक करते वक्त शीशे में उसने अपने चेहरे की जो हालत देखी थी वह ससुर को नहीं दिखाना चाहती थी।

"छोटी बहू ने घूंघट क्यों मारा है आज जमना?" पंडित जी ने गंभीर स्वर में पूछा और कुछ देर तक कोई उत्तर न मिलने पर आदेश दिया, "हटा घूंघट, देखूँ तो तू रोई है या नहीं।"

धीरे-धीरे, डरते-डरते सरला ने घूंघट हटा दिया, और अपना सिर झुका लिया। सहसा पडित जी गरज पड़े—"रोई क्यों थी?"

सरला ने सिर और भी नीचे झुका लिया, बोली कुछ नहीं।

"और अम्मां कहती हैं कि इसकी आंख से आंसू ही नहीं निकले! रोते-रोते तो आँखें सुजा ली हैं," पंडित जी ने क्रोध भरे स्वर में कहा, और फिर सरला की ओर मुखातिब होकर उससे उसी स्वर में पूछा,

"अम्मां का कहा मान कर चलेगी तू, या मेरा ? या अपने बाप का ? बोल ?"

सरला फिर भी कुछ नहीं बोली, और उसकी आँखों के सूखे आंसू फिर हरे हो चले।

"बोलती क्यों नहीं ?" पंडित जी अधीर हो उठे, "किसके पास रहेगी तू—अपनी ददिया सास के पास या मेरे पास, या अपने बाप के पास ?"

"जी, आप जो कहेंगे ..." और सरला का गला बीच ही में रुँध गया।

"पूरा कर, क्या कहती है। मेरा कहा मानना है तो रोना-धोना बिलकुल बंद करना पड़ेगा।"

"जी, आपका कहा मानूंगी।" सरला ने कह डाला और मानों कृतज्ञतापूर्वक उसकी डबडबाई आंखें पंडित जी की आंखों से जा मिलीं। केवल क्षण भर के लिये। और उसी एक क्षण में सरला ने देख लिया कि सचमुच ही उसका स्थान पंडित जी के ही चरणों में है; पति को खोकर भी वह बिलकुल अनाथ नहीं हुई है।

रामायण-पाट शुरू होने के पहले जब राधेश्याम वहां आए तब सरला ने उनके कारण घूंघट खींचना चाहा। पर तुरंत ही पंडित जी ने रोक दिया—"तुझे किसी के आगे घूंघट खींचने की जरूरत नहीं है छोटी बहू। विधवाएँ घर की लक्ष्मी हैं, उनकी पूजा होनी चाहिये, सबको उनका आदर करना चाहिये, उन्हें परदा करने की क्या जरूरत? ... क्या कहता है राधे ? विधवा देवी है या दानवी ?"

राधे अब बड़ा हो गया था, पंडित जी की मार खाने की परिधि से बाहर; और डाट भी उस पर अब संयत भाव से ही पड़ती थी। और इसलिये, केवल मार या डाट से बचने के लिये ही पिता की हां में हां मिलाना उसका छूट चला था। वह चुप रहा; इस विषम प्रश्न का उत्तर देना उसने ठीक नहीं समझा।

"तू क्या कहती है जमना," पंडित जी ने बड़े बेटे से उत्तर न पाकर छोटी बेटी से प्रश्न किया। "विधवा देवी है या दानवी?"

जमुना असमंजस में पड़ गई। ऐसे समय क्या उत्तर देना चाहिये यह वह जानती थी, पर बड़े भैया ने, जिनकी वह लाड़ली थी और जो उसके आदर्श थे, उत्तर न देकर उसकी समस्या कुछ कठिन कर दी थी। पर पिता की भौंहें ज़रा चढ़ती देख उसका असमंजस टूट गया, वह जल्दी से बोल उठी—"जी, देवी।"

"ठीक है, विधवा देवी है, उसकी पूजा होनी चाहिये," गंभीर स्वर में पंडित जी बोले, "जिस घर में विधवा की पूजा नहीं होती वह घर नष्ट हो जाता है।"

[५]

जमुना की दादी के लिये अब इस घर का वातावरण बिलकुल असह्य हो उठा था। सबसे अधिक भय और चिन्ता उन्हें जमुना की थी, जो पन्द्रह बरस की हो चुकी थी और जिसकी सगाई तक अभी नहीं हुई थी। ऐसे भ्रष्ट घर की इतनी सयानी लड़की को कौन ब्याहेगा, और ब्याहेगा भी तो इस घर में पूरी मेम बनने के बाद वह किस ब्राह्मण घर की बहू बनने लायक रह जायगी! कोई क्या कहेगा, कि लड़की की मां मर गई थी तो दादी तो नहीं मरी थी, उसने भी लड़की को लड़की की तरह नहीं रहने दिया?..... और अब इस रांड़ छोटी बहू के पीछे तो सबके-सब भ्रष्ट होकर रहेंगे।

वर्द्धन की तेरहीं तक तो वह किसी तरह चुपचाप सब तमाशा देखती रहीं, पर तेरहीं हो जाने के बाद जब राधे अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी करने के लिये इलाहाबाद जाने को तैयार हुआ तब उसके आगे वह रो पड़ीं—"तेरे बाप की तो अकल मारी गई है बेटा, वह तो भ्रष्ट हो गया है। तू ही अब इस घर की लाज बचा राधे, अपनी बहन को उबार!"

पर बेचारा राधे क्या कर सकता था ? "मैं क्या कर सकता हूँ दादी, तुम्हीं बताओ ?" उसने अपनी असमर्थता प्रकट की।

"तो मुझसे तो अब यह सब नहीं देखा जाता, मुझे गांव ही पहुँचा-आ तू। बला से फिर चाहे जो करे तेरा बाप, मैं तो नहीं देखूँगी।" रोना बंद करके क्रुद्ध स्वर में उन्होंने कहा।

और वह उठ खड़ी हुईं और अपनी लाठी टेकते-टेकते पंडित जी के कमरे में जा पहुँचीं और चीख कर बोलीं—"तो तू जमनिया की सगाई कब करेगा पंडित, कि उसके हाथ पीले ही नहीं होंगे, सदा क्वांरी ही रहेगी ?"

पंडित जी मेज के सामने कुरसी पर बैठे कुछ लिख रहे थे। लिखना बंद करके, आंखों से चश्मा उतार कर, पास पड़ी दूसरी कुरसी पर उन्होंने मां से बैठने के लिये कहा। पर वह नहीं बैठीं।

"मेरी बात माने तो बैठूं तेरी कुरसी पर, नहीं तो खड़ी ही भली हूँ मैं," उन्होंने भी कुछ नरम पड़ कर कहा।

"तो मत बैठ, तेरी मर्जी," पंडित जी ने हँस कर कहा और फिर गंभीर होकर बोले, "जमना के ब्याह की अभी क्या जल्दी है ? उसका तो मैं स्वयंवर करूँगा, वह आप अपना पति खोजेगी।"

गुस्से के मारे कुछ देर तक तो उनकी मां के मुँह से आवाज नहीं निकली ; जब वह बोलीं तब वाणी के साथ-साथ उनका वृद्ध शरीर बुरी तरह से कांप रहा था। "तो फिर तू भी सुनले मेरी आखिरी बात। तेरे घर में एक बूँद पानी भी जो अब मैं पियूँ तो मर कर बड़े पंडित जी के पास न जाऊँ मैं। राधे के साथ गाँव जा रही हूँ, और अब जो कभी तेरा मुह देखूँ तो मेरी जीभ गल जाय।" उनके मुंह में झाग-से आ गए थे। और जल्दी-जल्दी लाठी टेकती हुई वह कमरे से बाहर निकल गईं।

और उसी रोज रात की गाड़ी से राधे के साथ वह अपनी सुसराल के गांव के लिये चल दीं, बेटे की नौकरी पर उसके साथ रहते हुए भी जहाँ वह साल दो साल में एक बार महीने दो महीने के लिये जरूर रह

आती थीं। पर आज वह सदा के लिये अपने बेटे का घर छोड़ कर वहां जा रही थीं, और सारे दिन उन्होंने न एक दाना अन्न मुंह में डाला था और न एक बूंद जल। सारे घर में उदासी छाई हुई थी, जमुना उनकी गोद में कई बार फूट-फूट कर रो चुकी थी, और उसके साथ-साथ वह खुद भी। सरला भी रोई थी, पर छिप कर ही; ददिया सास उससे कभी खुश नहीं रही थीं, पर उसने अपनी ओर से कभी उन्हें नाराज होने का मौका नहीं देना चाहा था। वह देख रही थी कि उसका इस घर में आना बहुत ही अशुभ मुहूर्त्त में हुआ था, और वह जानती थी कि उसकी ददिया सास और ससुर में झगड़ा बहुत-कुछ उसी को लेकर है।

सबसे आखिरी बिदा लेकर जमुना की दादी जाते-जाते अपने बेटे के कमरे के सामने दरवाजे पर रुकीं, और वहीं से चीख कर बोलीं—"तू मेरे हाड़ चबाए भगवतिया, जो कभी अपना मुंह भी मुझे दिखाए—न जीती को, न मरी को। ...अपनी बूढ़ी मां का जी दुखा के कभी सुख न पाएगा तू यह कहे जाती हूँ, यह रांड़ तुझे ले बीतेगी !..."

और उस दिन जो वह अपने बेटे का घर छोड़ कर गईं, सो सचमुच ही सदा के लिये चली गईं। उसी समय वह सत्तर पार हो चुकी थीं और उनकी देह में ताकत नहीं रह गई थी। गाँव पहुँचने के तीन-चार महीने बाद ही एक रोज वह एक मामूली सी ठोकर खाकर अपनी ससुराल के पुश्तैनी आंगन में गिर पड़ीं, और फिर उठ कर खड़ी नहीं हुईं। अट्ठारह दिन तक वह खाट पर पड़ी रहीं, और एक दिन सबेरे सोकर नहीं जगीं।

राधेश्याम अपनी पढ़ाई पूरी करके उसी समय बिजनौर लौटा था। मां की चोट की खबर पाकर पंडित जी ने उसे भेज दिया। दादी की मृत्यु के चार दिन पहले वह उनके पास पहुँचा, और वह खुशी-खुशी मरीं कि उनका क्रिया-कर्म, श्राद्ध-तर्पण, सब विधिवत् और बड़े पंडित जी की कीर्त्ति के अनुकूल होगा। उनकी राख प्रयाग में ले जाकर बहाने का उसने वादा किया था।

मरने से एक दिन पहले, दिन के तीसरे पहर, उन्होंने राधे को इशारा किया तकिये के नीचे से संदूक की चाभी निकालने का, और जब संदूक खुल चुका तब धीरे-धीरे बुझती-सी आवाज में बोलीं—"इसमें जो गहने हैं ··जमना के ब्याह के हैं।···मेरे आसिरबाद के साथ पहना देना ब्याह पर···"

कुछ देर सुस्ता कर फिर धीरे-धीरे वे बोलीं, बहुत ही शान्त मुद्रा में—"गंगा को छोरी तेरे बाप ने तो नहीं बुलाई बेटा···तू कमाएगा तो ले आएगा उसे ?···बोल, वादा करेगा मेरी देह छू कर ?" और गीली आंखों की कातर दृष्टि से वे राधे को ओर ताकने लगीं।

गंगा पंडित भगवतीचरण की पहली संतान थी, राधे की बड़ी बहन, जिसने राधे की मां की मृत्यु से कोई दो-तीन साल पहले अपनी ससुराल में अपनी पहली सन्तान को जन्म देकर प्रसव-ज्वर में प्राण त्यागे थे। गंगा की ससुराल काफी गरीब थी और राधे की दादी ने अपने बेटे से कितना अनुरोध किया था गंगा की उस बच्ची को ले आने के लिये। पर पंडित जी मां की बात इस कान सुन उस कान निकालते ही चले आए थे। और अन्त में वे इस सम्बन्ध में बिलकुल ही निराश हो चुकी थीं।

राधे ने आंखों में आंसू भर कर वादा किया— "तुम विश्वास करो दादी, तुम्हारी देह छूकर वादा करता हूँ, कान शुरू करते ही मैं उसे ले आऊँगा और अपनी बेटी बनाकर रखूँगा।"

दादी की दोनों आंखों के कोनों से आंसू की दो पतली धारें बह निकलीं। उन्होंने अपना दुर्बल, शीर्ण हाथ मुश्किल से ऊपर को उठाया, और राधे ने उनकी छाती पर अपना सिर रख दिया। बुढ़िया ने दोनों बांहों से उसका सिर अपनी छाती पर दबा लिया।

"तू सुखी रह बेटा···तेरे बाल-बच्चे हों, फलें-फूलें !···" और फिर एक लम्बी गहरी सांस खींच कर बहुत ही धीरे-धीरे, और इस तरह मानो वे अपने से ही या अपने भगवान् से कह रही हों, बोलीं—"जब

भगवतिया पेट में था···लोग कहते थे—पुच्छल तारा निकलने लगा है आकाश मे···बहुत ही अशुभ है···मै कहां जानती थी भगवान···मेरी कोख में ही घुस बैठेगा वह पुच्छल तारा···" और उनकी आवाज कांप उठी— "कोई बहुत बड़ा पाप किया था मैंने ··तभी तो जना इस भगवतिया को···बेटा-बेटी किसी को सुख नहीं दिया इसने···और धीरे-धीरे उनका स्वर बिल्कुल ही अस्फुट हो गया था।

मृत्यु के पहले के वे ही अंतिम शब्द थे उनके।

चौथा परिच्छेद

[१]

सरला पंडित जी के लिये जीवन के एक नए पाठ के समान थी—एक बिलकुल ही नए किस्म के पाठ के समान। आसपास का सब-कुछ भूल कर, परम कुतूहल के साथ, वे अपना यह पाठ लेकर बैठ गए।

वर्द्धन की मृत्यु उनके लिये बहुत बड़ी चोट साबित होती, अगर उनके सामने यह नया पाठ न आ गया होता। वर्द्धन उनका सबसे प्यारा बेटा था—अगर उनके दिल के किसी कोने में कहीं किसी के लिये कोई प्यार था।

मां का इस तरह खीझ कर, और सदा के लिये, चला जाना भी—वे सदा के लिये ही जा रही हैं और अब कभी लौट कर नहीं आएँगी यह और कोई समझा हो या न समझा हो उस वक्त, पंडित जी पूरी तरह से समझ चुके थे—पहले उन्हें बुरी तरह बेचैन कर देता और वे अन्त में उन्हें जाने से रोक ही लेते; गाड़ी पर उनके चढ़ जाने पर भी अगर उसी वक्त उन्हें नहीं उतार लेते तो उनके पीछे-पीछे स्टेशन तक जाते और रेलगाड़ी में उनके बैठने के पहले ही हाथ पकड़ कर उन्हें वापस खींच लाते। मां के लिये ही उनके दिल में कुछ दर्द था—अगर किसी के लिये भी उनके दिल में दर्द हो सकता था। पर जीवन-पोथी के अपने इस नितान्त ही नए पाठ के चकाचौंध में उन्होंने अपनी मां की भी पूरी उपेक्षा कर डाली, और अगर उनके दिल में उन्हें रोक लेने के लिये कुछ बेचैनी पैदा भी हुई तो उन्होंने उसे बलपूर्वक दबा दिया। वे जानते थे कि इस घर में उनकी उपस्थिति इस नए पाठ के लिये बाधक ही सिद्ध होगी।

सरला के इस घर में आने के बाद पंडित जी पूरी तरह से कभी भी यह नहीं मान पाते थे कि यह वर्द्धन की बहू है, उनकी अपनी पुत्र-वधू —जिस तरह कि राधे की बहू राधे की बहू ही थी, उनकी पुत्रवधू ही। नन्हा-सा बीमार वर्द्धन भी भला इस मोहिनी सरला का दुलहा हो सकता था? वर्द्धन की बहू से ज्यादा तो वह नर्स ही दिखाई देती थी पंडित जी को, भले ही रंग-रूप और वेशभूषा में नर्स-जातीय रमणियों के साथ उसका कोई मेल नहीं था।

पर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि पंडित जी की आंखों में सरला की जो पहली छवि बसी हुई थी वह किसी तरह भी निकल नहीं पाती थी—उसकी वह छवि जो उन्होंने पहलेपहल देखी थी उसके ब्याह के पहले, मेरठ में अपने दोस्त के घर। किशोरी सरला तब और ही थी; अब और ही है। पर पंडित जी ने उसे तब अपनी जिन आंखों से देखा था उन आंखों से अब उसे देखने की जहां कोई बात ही नहीं हो सकती थी, वहां असलियत यही थी कि उनकी उस दृष्टि का लोप हो ही नहीं पाता था, उनके चाहने पर भी। वे भूल ही नहीं पाते थे कि इस सरला में उसके पिता वर्द्धन का नहीं स्वयं पंडित जी का विवाह करना चाहते थे और इसी दृष्टि से उन्हें सरला दिखाई गई थी। वे भूल ही नहीं पाते थे कि उन्होंने भी उसे उसी दृष्टि से देखा था, और उसे देखने के बाद नैनीताल जाकर उस बार वे उसे अपनी ब्याहता बनाने के लिये बेचैन हो उठे थे।

फिर भी पंडित जी ने नई आंखों से सरला को देखने की कोशिश की, उसे वर्द्धन की बहू के रूप में, अपनी पुत्रवधू के रूप में ही देखना चाहा। पर अपने बीमार बेटे की नर्स के रूप में निमंत्रित करके उसे पूरी तरह बेपर्द बना डालने के बाद उन्होंने उसे अपने दिल में जमुना के समकक्ष अपनी बेटी का जो स्थान देना चाहा था वह सरला किसी तरह भी नहीं ले पा रही थी। करीब-करीब क्षण भर में ही सारी लज्जा, सारा संकोच छोड़ कर उनकी पुत्रवधू ने उनके आदेशों का अक्षरशः पालन

करना ही नहीं शुरू कर दिया था, जिसकी उन्होंने कभी स्वप्न में भी आशा नहीं की थी, बल्कि उनकी बुजुर्गी को वह जबर्दस्त चुनौती भी देने लग गई थी। वह पूरी तरह तैयार थी उनका नया पाठ सीखने और पढ़ने के लिये; पर क्या वे भी तैयार थे इस नए पाठ की नई भूमिका के लिये ?

पंडित जी देख रहे थे कि जिस किशोरी बालिका ने मेरठ के उस प्रथम दर्शन के समय उन्हें बलपूर्वक अपनी ओर खींचा था, वर्द्धन की बीमारी में नर्स बनकर आने पर वह बालिका अब बिलकुल ही नहीं रह गई थी और उनकी आंखों के सामने ही वह तेजी से अपना किशोरत्व छोड़ती चली गई थी। और वर्द्धन की मृत्यु होते-होते तो सरला का अंग-अंग खिल उठा था।

एक बार तो पंडित जी को बड़ा जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ा था अपने साथ। वर्द्धन की मृत्यु से कुछ ही दिन पहले की बात है। शाम का वक्त था। कचहरी से लौट कर पंडित जी सीधे वर्द्धन के कमरे में उसे देखने चले गए थे। पता नहीं उनके क्रोधावेश का वास्तविक कारण क्या था—कचहरी की ही कोई बात थी, या वर्द्धन की चिन्ता, अथवा और कुछ—पर वे जब अपने कमरे में पहुँचे तब तक उनका पारा सातवें आसमान पर था। जल्दी-जल्दी वह अपनी पोशाक बदलने लगे और जूतों के फीते खोलने को नीचे झुके हुए नौकर को यह गरज कर ठोकर मारी कि "कितनी देर कर रहा है गधे का बच्चा," जो ठीक उसके माथे पर लगी और वह पीछे को लुढ़क गया। उसका लुढ़कना था कि उसकी पीठ पर लगातार एक-दो-तीन-चार ठोकरें लग गईं और बिना चूं तक किये वह फिर उठ कर उनके पाँवों के जूते खोलने लग गया। पंडित जी उस समय आरामकुर्सी पर पड़ चुके थे, और जरा भी और देर होने का मतलब था अपनी और भी शामत बुलाना।

जनवरी का महीना था, कमरे में कुछ-कुछ अँधेरा हो चला था। पंडित जी घर की पोशाक पहन कर जो उठ कर खड़े हुए कि उनके

कमरे और अन्दर के कमरे के बीच के दरवाजे का परदा कुछ हिल उठा। पंडित जी फिर सहसा गरज उठे—"कौन है?" कोई जवाब नहीं मिला। पंडित जी ने तेजी से जाकर परदा उठा दिया। देखा, दरवाजे के पीछे कांपती हुई जमुना खड़ी है। पंडित जी को परदा उठाकर अन्दर के कमरे में घुसते देखते ही कांपती हुई भी जमुना जल्दी से अपनी सफाई देने लगी—"जी, बड़ी भाभी ने पुछवाया था···"

"बड़ी भाभी की बच्ची!" उसकी बांह पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचते हुए पंडित जी गरज उठे, और एक झटके के साथ उसे अपने कमरे में जो खींच कर लाए तो जमुना के पैर उखड़ गए और वह गिर पड़ी। उसका गिरना मानो पंडित जी की क्रोधाग्नि के लिये आह्वान था। कस कर एक ठोकर उन्होंने जमुना की पीठ पर मारी। जमुना चुपचाप जहाँ की तहाँ पड़ी रही, और पंडित जी, क्रोध की पूजा कुछ खर्च हो चुकने पर, अपनी आरामकुरसी पर जा लेटे।

कुछ क्षणों बाद आदेश हुआ—"चली जा!"

और जमुना चुपचाप उठ कर जल्दी से चली गई।

थोड़ी देर बाद पंडित जी वर्द्धन के कमरे में आए, अपनी अन्दरूनी बेचैनी से छटपटाते हुए से। रोगी के कमरे में घुसते ही उनकी नजर सरला पर पड़ी जो वर्द्धन की खाट के पास की कुरसी पर बैठी नीचे रखी हुई अंगीठी पर किसी हद तक झुकी हुई थी। वर्द्धन उसकी ओर पीठ किये हुए शायद नींद से सो रहा था या तन्द्रा में पड़ा था—कम्बल ओढ़े हुए। लैम्प की हलकी-हलकी रोशनी सरला के चेहरे और सारे बदन पर थी, और अंगीठी के लाल-लाल कोयलों की लाल-लाल आभा से सरला का चेहरा दमक रहा था। सरला की आंखें नीचे ही थीं, अंगीठी की ओर। सिर पर से धोती का पल्ला कब का खिसका गर्दन पर गिरा पड़ा था, पीठ पर दुशाला था, और पूरी बांहों की मोटी सूती कमीज के ऊपर उसका गोल दूधिया गला पूरा-का-पूरा दिखाई दे रहा था सामने से, लैम्प की रोशनी में। आग का जो गुलाबी

प्रतिबिम्ब सरला के चेहरे पर था, गरदन पर वह नहीं था; उसकी देह का उज्वल गोरा रंग इस वक्त उसके गले पर मानो केन्द्रीभूत हो गया था।

और पंडित जी ने मानो आज पहलेपहल देखा कि सरला पूर्ण नवयौवना है; कसी हुई कमीज पर लपेटे हुए धोती के फेंटे के नीचे सरला का उन्नत वक्षस्थल, इस समय, नीचे आग की ओर झुक कर बैठने की सरला की इस मुद्रा में, बहुत अधिक स्पष्ट था।

पंडित जी बिलकुल ही भूल गए कि सरला उनकी पुत्रवधू है, और दरवाजे पर खड़े ही खड़े कुछ क्षण तक वे इस चित्र को अपनी आंखों से पीते रहे। पता नहीं, पंडित जी की उन तेज आंखों ने सरला के बदन को छेद दिया या क्या हुआ, सरला ने उसी समय आंखें उठा कर दरवाजे की ओर देखा, और अपने ससुर को देखते ही, और उस तरह उन्हें अपनी ओर ताकते देख, कुछ घबड़ाई-सी, कुछ लजाई-सी, वह सहसा उठ खड़ी हुई।

उस रात पंडित जी को किसी तरह भी नींद नहीं आई। रात के एक बजे तक वृद्धन के पास जमुना की ड्यूटी थी और पंडित जी के बगल के कमरे में ही सरला सोई पड़ी थी —जमुना के बाद ड्यूटी करने के पहले की गहरी नींद में। और पंडित जी कई बार, करीब-करीब अनजाने ही, उसके दरवाजे को खोल बैठे, और तभी, होश आते ही, धीरे-धीरे दरवाजा बन्द कर वापस चले आने के लिये मजबूर हुए।

उनके अपने कमरे में लैम्प की तेज रोशनी जल रही थी। बिना उसे बुझाए, वे कमरे के अन्दर ही चक्कर काटने लगे। धीरे-धीरे बारह बज गया दीवाल की घड़ी में, और पंडित जी बेहद अधीर हो उठे। किसी तरह भी सरला को कुछ देर देखने-भर की, उसका सामीप्यमात्र अनुभव करने की, और हो सके तो किसी तरह उसका स्पर्श पाने की, कैसी प्रचण्ड व्याकुलता थी उनके रोम-रोम में।

अचानक उन्होंने सरला वाले कमरे का दरवाजा पूरा खोल डाला,

और उनके कमरे की रोशनी उस कमरे में भी धुंधली-धुंधली जा पड़ी। तेजी से पंडित जी सरला की खाट के पास गए। देखा, रजाई में सिर तक सारा बदन लपेटे वह बेहोश सोई पड़ी है। पंडित जी ने साहस-पूर्वक, नहीं अधिकारपूर्वक, रजाई का एक छोर तेजी के साथ सरला के बदन के नीचे से खींचा और पूरी की पूरी रजाई एक झटके में अलग कर दी।

सरला इतनी गहरी नींद में थी कि कुछ देर तक तो वह नींद में ही धीरे-धीरे सिकुड़ती चली गई, पर अन्त में नींद पर ठण्ढ की विजय हुई और धीरे-धीरे वह जाग भी पड़ी और उसने ठण्ढ भी महसूस की। और आंख खुलते ही उसने देखा कि खाट के पास कोई खड़ा है, और उसे समझते देर न लगी कि ये पंडित जी ही हैं।

वह तेजी से अपनी खाट पर उठ कर बैठ गई—खाट से उतरने के लिये।

"जी ?···क्या हुआ ?" हड़बड़ा कर भयभीत स्वर में वह बोल उठी

"कुछ नहीं, सो-जा," पंडित जी ने कड़कती हुई आवाज में कहा, "क्या-क्या बक रही थी···रजाई क्यों उतार कर फेंक दी ?"

"जी ?···" सरला ने विस्मय के साथ पंडित जी की ओर ताका। "मैं बड़बड़ा रही थी नींद में ?···मैंने रजाई फेंक दी ?···"

"तभी तो आया मैं," पंडित जी अब तक होश में आ चले थे। "तू भी बीमार पड़ेगी क्या ?"

"जी नहीं," सरला ने बैठे ही बैठे कहा, "मेरी ड्यूटी का वक्त होगा शायद।"

"नहीं, अभी देर है," पंडित जी ने खुश्क गले से कहा। और फिर सरला की रजाई नीचे से उठा कर उसे ओढ़ाते हुए, इस बार एक अजीब नरमी और स्निग्धता के साथ बोले, "थोड़ा और सो ले बेटी,··· सो जा," और हलका-हलका विरोध करती हुई उस तरुणी बालिका के दोनों कंधे पकड़ कर पंडित जी ने बलपूर्वक उसे लिटा दिया और पूरी

तरह उसे रजाई में लपेटते-लपेटते मानो अनायास जितना कुछ उसकी देह का स्पर्श किया जा सकता था करते हुए, आखिरी बार कुछ कठोर स्वर में उसे चेतावनी दी—"खबरदार, बीमार मत पड़ जाना तू भी।"

और फिर धीरे-धीरे उसका दरवाजा बन्द करके वे अपने कमरे में लौट आए।

और उसके बाद पंडित जी और भी यह नहीं भूल पाए कि इसी सरला के साथ उनका ब्याह हो जा सकता था।

[२]

भूली यह सरला भी नहीं थी।

मेरठ में जब सरला ने पंडित जी को देखा था तब वह कुछ नहीं जानती थी, सिवा इसके कि और-बहुतेरों की भांति आज भी कोई उसे 'देखने' आया है। उस वक्त उसे नहीं मालूम था कि उसे 'देखने' वाला वह दढ़ियल उसका भावी ससुर या जेठ या वैसा ही कोई नहीं है, और इसलिये पंडित जी के प्रति उसके दिल में कोई खास भाव नहीं पैदा हुआ था। पर बाद को जब उसे यह भनक मिली कि चालीस साल का वही दढ़ियल उसका भावी वर था तब चालीस साल की उसकी उम्र से कहीं ज्यादा उसकी लम्बी-चौड़ी दाढ़ी के खिलाफ ही उसका सारा मन विद्रोह कर उठा था, खास तौर से जब कि उसकी सहेलियों ने इसी पहलू को लेकर उसे चिढ़ाना शुरू कर दिया था।

पर कुछ ही समय बाद उसे इस दुःस्वप्न से छुटकारा मिल गया था और अपनी सहेलियों को वह गर्वपूर्वक जवाब देने लगी थी कि वह 'दढ़ियल' उसका दुलहा नहीं ससुर बनने वाला है। और तब वह व्यक्ति कोई 'दढ़ियल' नहीं, 'डिप्टी-साहब' या 'डिप्टी-कलक्टर' की एक ऐसी आतंकप्रद उपाधि से विभूषित हो उठा था सरला के छोटे से समाज में, कि सरला चकित और पुलकित होकर रह गई थी अपनी महिमा की उस

आकस्मिक उपलब्धि से। और तब से दिन पर दिन उसके लिये भारी हो चला था अपने पिता के उस गौरवहीन, अति-साधारण समाज में सीमाबद्ध होकर रहना। अवश्य उसे चिढ़ाने वाली सहेलियों को तब से एक नया ही उपकरण मिल गया था उसे तंग करने का—कि उसका ब्याह एक खिलौने से हो रहा है; उसके भावी वर की उम्र को और भी घटाने, उसे सरला से भी छोटा प्रमाणित करने की कितनी ही मजेदार चुटकियां ली जाने लगी थीं। पर सरला को जो गौरव एक बार मिल चुका था उसके सामने बाकी सारी बातें छोटी पड़ गई थीं उसके दिमाग में, और अपने ससुराल का जो भी चित्र उसके सामने आता था उसमें उसके दुलहा का प्रायः कोई स्थान नहीं होता था। अनन्त महिमा से मण्डित होकर एक बहुत ऊंचे आसन पर वहां यत्र-तत्र-सर्वत्र उसे बैठे दिखाई देते थे अपने डिप्टी-कलक्टर ससुर ही, जिनका वह दढ़ियल चेहरा अब उसके लिये परम गौरवपूर्ण हो उठा था।

ब्याह के बाद भी इस स्थिति में कोई खास फर्क नहीं हुआ था, क्योंकि अपने दुलहे के सम्पर्क में वह तब भी नहीं आई थी। और जब गौने के बाद वह दूसरी बार अपनी ससुराल आई तब अपने दुलहे को उसने नव-विवाहिता तरुणी की आंख से देखने का कोई अवसर नहीं पाया था। कंकालावशेष वर्द्धन के उस रूप के प्रति नवयौवना सरला का सिवा इसके क्या आकर्षण हो सकता था कि इसे सेवा करके अगर वह बचा नहीं सकी तो आजीवन वैधव्य की कठोर और घोर अपमान-जनक यातना ही उसके पल्ले पड़ेगी!

फिर, अनन्त यातनाओं की खान ससुराल का जो भयंकर चित्र बचपन से ही उसके मन में जम कर बैठ गया था उससे बहुत ही भिन्न थी उसकी अपनी ससुराल की यथार्थता। सास की विकरालता का उसे सामना करना ही नहीं पड़ा, और ददिया-सास यद्यपि कम कठोर नहीं थीं और न जिठानी की ही उस पर विशेष कृपादृष्टि थी, फिर भी ससुर की प्रभावशालिता के सामने इनका जोर बिलकुल हलका पड़ गया था,

और ससुर की कृपा उसने शुरू में ही पा ली थी। एक क्षण में ही सरला को अपनी ससुराल अगर प्रिय नहीं हो गई थी तो सुहा अवश्य गई थी। उसके प्रति आतंक का जो भाव उसके मन में तरह-तरह से लालित-पालित हो कर जमा हुआ था वह एक पल में उड़ गया था।

और सबसे ज्यादा ताज्जुब और मजे की बात तो यह थी कि इस घर में जिससे सब डरते थे—उसकी ददिया-सास भी —उसीसे डरने का कोई कारण उसे नहीं मिला था। जिस ओर से सबसे अधिक भय हो सकता था वहीं वह सबसे अधिक सुरक्षित थी।

पंडित जी की कृपा के वेष्टन में चारों ओर से घिरी हुई सरला अपने पिता के घर को करीब-करीब बिलकुल ही भूल गई थी। यों भी अपने पिता के घर में, कई छोटे-बड़े भाई बहनों के बीच पल कर, सरला ने कुछ विशेष नहीं पाया था अपने लिये। फिर, डिप्टी-कलक्टर ससुर की पुत्र-वधू के रूप में जब से उसका भविष्य निर्धारित हुआ था तब से बराबर अपने पिता की जो नसीहतें वह सुनती आई थी उनमें कहीं भी कुछ ऐसा नहीं था जिसके पीछे उसके पिता का स्वार्थपूर्ण लालच न हो। दुलहा से भी अधिक अपने ससुर की कृपापात्री बनने की चेष्टा करने का जो उपदेश उसके पिता उसे देते आए थे उसे उसने इसी रूप में लिया था और अपने पिता का घर उसके लिये और भी कम आकर्षक रह गया था।

और इसलिये अपने ससुर की जो कृपा सरला को इस घर में आने के साथ ही साथ अनायास मिलनी शुरू हो गई—यह नहीं कि इसमें उसका अपना श्रेय कुछ भी नहीं था—उसने पहले-पहल अपनी विशेषता की ओर उसे आकृष्ट किया, कि वह भी कुछ है, उसे भी कोई महत्व देता है। और जैसे जैसे वह यह आविष्कार करती गई कि पंडित जी को सन्तुष्ट करने में इस घर में एकमात्र वही सफल हो पा रही है और प्रायः सभी की ईर्षा या द्वेष की पात्री वह बनती चली जा रही है, वैसे-वैसे ही अपने प्रति उसके मन में सम्मान का भाव बढ़ने लगा। और ठीक

उसी अनुपात में उसके समुर उसके लिये और भी बड़े, और भी वजनी, और भी आकर्षक बन चले।

और बरबस उसके मन में यह बात आ जाती कि पहले उस बीमार बच्चे से नहीं इन्हीं सबल, तेजस्वी, प्रचण्ड पंडित जी के साथ उसका ब्याह होने की बात थी। और अनायास वह तुलना करने लग जाती मन ही मन— वर्द्धन और पंडित जी के बीच। और उसे लगता कि भला इन दोनों के बीच भी कोई तुलना हो सकती थी? अगर यह लम्बी-चौड़ी दाढ़ी न होती तो क्या था पंडित जी में, जो उसकी हर सहेली को लुभा न लेता? उम्र? मगर चालीस-बयालीस साल की उम्र क्या बहुत ज्यादा है? सरला के ब्याह से दो साल पहले ही तो उसकी एक सहेली चम्पा का ब्याह पचपन साल के रंडुए से हुआ था, और फिर भी वह किसी से कम सुखी नहीं थी! और पंडित जी अगर दाढ़ी कटा दें तो तीस-बत्तीस साल से ज्यादा के थोड़े ही दिखाई देंगे।

और अजीब बात तो यह थी कि पंडित जी की जिस लम्बी-चौड़ी दाढ़ी से उसे किसी वक्त नफरत थी, वह बुरी नहीं अच्छी ही लगती थी अब सरला को। यह काली-काली दाढ़ी-मूंछ, जिनके बीच पंडित जी के लाल-लाल से होंठ और सजे हुए सफेद-सफेद दाँत कितने भले मालूम होते थे, जब कभी वे अट्टहास कर उठते थे।

पर फिर भी पंडित जी सरला के समुर ही थे, और वर्द्धन ही उसका दुलहा था—वह नन्हा सा, बीमार वर्द्धन। और यद्यपि वह वर्द्धन एक बार भी सरला के मन के रंगीन तारों को नहीं छू सका, उसके मन में कोई मीठी तरंग नहीं पैदा कर पाया, फिर भी सरला को उसने आकृष्ट किया था और अपने प्रति उसके मन में प्यार पैदा किया था। उसे बचा लेने के लिये कुछ भी उठा नहीं रखा था सरला ने अपनी ओर से, और जितना ही वह देखती थी कि वह उस पर निर्भर करता जा रहा है अपनी छोटी से छोटी सुख-सुविधा के लिये, उतने ही ममत्व के साथ जकड़ती चली गई थी वह उसके बंधन में।

और उसकी रोगशैया के पास बैठे-बैठे कितनी बार उसने कल्पना की थी उस दिन की जब वर्द्धन बिलकुल रोग-मुक्त हो जायगा, उसका बदन भर जायगा, गाल भर जायंगे, आंखों के गड्ढे भर जायंगे। कैसी होगी तब उसकी यह हँसी और यह मुसकराहट, जो अब किसी खंडहर में से आती हुई सी दिखाई देती है? कितनी ताकत होगी तब इन हड्डी-ही-हड्डी रह गई बाँहों में, जब इनमें कस कर वह उसे लपेट लेगा एक दिन, और . . . ?

ये सब सपने देखे थे सरला ने भी, जो वैसी स्थिति में हर नव-विवाहिता देखती है। और जब एक दिन उसे जीवन भर के लिये अनाथ बना कर वह चला गया था तब वह सचमुच अनाथ हो गई थी, उसका सारा दिल बुरी तरह से रो उठा था अपने घोर दुर्भाग्य पर। उसके सारे सपने चूर-चूर हो गए थे, उसका सारा भविष्य अंधकारपूर्ण हो गया था।

और तब अचानक एक टिमटिमाते दिये की तरह उस अंधकार को भेदा था पंडित जी की ही कृपा-दृष्टि ने, जो धीरे-धीरे कब परिपूर्ण स्नेह-वृष्टि बन गई थी यह वह जान ही नहीं पाई थी। वह टिमटिमाता हुआ दिया धीरे-धीरे पंडित जी के कमरे के दो-बत्ती वाले दूधिया ग्लोबदार लैम्प की ही भांति एक दिन अपने परिपूर्ण प्रकाश से आलोकित कर बैठा था उसके मन के कोने-कोने को।

और धीरे-धीरे वह यह भी भूल ही सी चली थी कि वह विधवा है।

वर्द्धन की मृत्यु का समाचार पाकर पहले सरला का बड़ा भाई आया था उसकी ससुराल, और तेरहीं तक रुक गया था। सरला के पिता ज्वरग्रस्त थे उस समय, पर तेरहीं के एक दिन पहले वे भी किसी तरह आ पहुँचे थे काफी कमजोर होते हुए भी। और अगले दिन उन्होंने सरला को अपने साथ ले जाने की इजाजत मांगी पंडित जी से—"कुछ दिन के लिये, ताकि माँ और भाई-बहनों के बीच उसका मन कुछ बहला रहे।"

किन्तु ठीक उसी समय पंडित जी की मां सरला को ही लेकर उनसे झगड़ने, उन्हें खरी-खोटी सुनाने, अपनी लाठी टेकती हुई आती दिखाई दी थीं पंडित जी को, और अपनी भवें चढ़ा कर पंडित जी ने सरला के पिता को अपने पास से हटा दिया था। "आज नहीं, कल इस बारे में बात होगी पंडित," उन्होंने रुक्ष स्वर में कहा था, "अब तुम जाओ, मुझे अम्मां से बात करनी है।" (समधी होते हुए भी सुखदेव पंडित 'आप' कहलाने के अधिकारी नहीं बन सके थे; पंडित जी ने कभी किसी को 'आप' कह कर सम्बोधित नहीं किया था। अक्सरों से अंग्रेजी में बात करनी होती थी जिसमें 'आप' का बखेड़ा था ही नहीं, और अपनी बोली में बोलने का जिनके साथ वास्ता पड़ता था उनमें से किसी को पंडित जी ने कभी अपने से बड़ा नहीं माना। बचपन में अपने पिता को भी तो 'आप' कहना नहीं सीखा था उन्होंने।)

उसके बाद पंडित सुखदेव को तीन-चार दिन तक हिम्मत ही नहीं पड़ी पंडित जी के सामने वह प्रसंग छेड़ने की। उनकी बेटी के ही खिलाफ खुल्लमखुल्ला जिहाद छेड़ कर जिस तरह पंडित जी की मां राधेश्याम के साथ उस दिन चली गई थीं अपने बेटे का घर छोड़ कर, उसके कारण सारे घर में एक अजीब सा सन्नाटा छाया रहा था उन कुछ दिनों, एक अजीब सी उदासी। वृद्धजन की मृत्यु ने जो सन्नाटा, जो उदासी, पैदा की थी वह कई-गुना बढ़ गई थी उस घटना के बाद।

आखिर हिम्मत करके फिर एक दिन सुखदेव पंडित ने अपना निवेदन दुहराया पंडित जी के सामने। "तो क्या आज्ञा है मेरी बेटी के लिये?" सहमे हुए स्वर में सुखदेव पंडित ने पंडित जी के सामने अत्यन्त दीन मुद्रा में खड़े-खड़े कहा। "ले जाऊँ उसे?"

पंडित जी ने सामने खुली हुई 'फाइल' पर से आंखें उठा कर, अपनी ऐनक उतार कर अपने हाथ में लेते हुए, सुखदेव पंडित की ओर ताका। सुखदेव पंडित सिहर उठे; उस दृष्टि का सामना करना उनके लिये कठिन हो गया।

"तुम्हारी बेटी का मन यहां नहीं लगता ?" वज्र-गंभीर स्वर था पंडित जी का। "बुलाओ उसे।"

सुखदेव पंडित घबड़ा गए, पर सरला को भी बुलाना ही पड़ा उन्हें।

"क्या कहता है तेरा बाप," सुखदेव पंडित के प्रति उनके हृदय का क्रोध अब उनकी भाषा में और भी अधिक उतर आया था। "तेरा मन यहाँ नहीं लगता ?" पंडित जी ने अब सरला के घबड़ाए चेहरे पर अपनी कटोर दृष्टि स्थापित करते हुए कहा।

सुखदेव पंडित का चेहरा लाल हो गया अपने प्रति अपने समधी की नौकरों-जैसी भाषा के इस प्रयोग से, पर वे न केवल 'लड़की के पिता' थे बल्कि अपने समधी की और अपनी सामाजिक और आर्थिक हैसियत के भेद से भी पूरी तरह और प्रतिक्षण वाकिफ। इसके अलावा, पंडित जी को नाराज करके अपनी बेटी को अपने घर ले जाने का रंच मात्र भी आग्रह नहीं था उनके मन में। किस तरह अपने समुर की कृपापात्री बन कर अब वह इस नई परिस्थिति में अपना ही नहीं अपने पिता का भी भाग्य पलट सकती है— इसी की समुचित शिक्षा देने के लिये तो वह उसे कुछ समय के लिये ले जाना चाहते थे!

"बिटिया का अपना घर तो यहीं है पंडित जी, यहाँ मन नहीं लगेगा तो कहाँ लगेगा," सरला के पिता ने पंडित जी को सन्तुष्ट करने के लिये बात सभालने की कोशिश की, "मुझसे ही कहने में कुछ चूक हो गई होगी..." और दीनतापूर्वक अपने समधी की ओर उन्होंने आंखें उठा कर देखा।

सरला भी अपने समुर के व्यंग से बिलकुल ही घबड़ा उठी थी कुछ देर के लिये। पिता की इस बात ने उसकी घबड़ाहट हलकी कर दी, और पूरा साहस बटोर कर, जोर लगा कर अपने गले में से आवाज निकालते हुए, बिना पंडित जी के चेहरे की ओर आंख उठाए, नम्र पर दृढ़ स्वर में उसने कहा—"जी, मैं कहीं नहीं जाना चाहती यहाँ

से...'' और उसका गला रुंध-सा गया, पर साथ ही उसे लगा कि उसका सारा चेहरा शर्म से तमतमा उठा है। और उसकी गर्दन और भी नीचे तक झुक गई।

सुखदेव पंडित उसी दिन लौट गए, और सरला ने अपने ससुर की सेवा में मन लगा कर धीरे-धीरे एक नए ही अन्तरिक्ष का आविष्कार किया अपने जीवन में।

[३]

सरला उस कमाई हुई धातु की बनी थी जिसका एक छोर दूसरे छोर से जा मिलेगा पर जो टूटेगी नहीं, और दोनों छोर छोड़ देने पर जो फिर सीधी जा तनेगी। उसने मानो पंडित जी की, पंडित जी के हृदय की, कुंजी पा ली थी, जो और किसी को नहीं मिली थी।

पंडित जी की स्त्री ने, और बाद को जमुना ने भी, पंडित जी की सेवा में अपना तन-मन लगा दिया था, पर वे पंडित जी को सन्तुष्ट नहीं कर पाईं। पंडित जी की बातों का सही-सही मतलब तक समझना उनके लिये कठिन होता था, उनके मन की इच्छा को समझ लेना तो बहुत दूर की बात थी। पर सरला अक्सर तो इशारों से ही, और कभी-कभी मन के अन्दर की छिपी हुई इच्छा से ही, पंडित जी का मतलब समझ लेती थी, और स्वयं पंडित जी को आश्चर्य में डाल देती थी। पंडित जी की जिन आवश्यकताओं का सहज-ज्ञान उनकी पत्नी और जमुना को बरसों के अनुभव से भी नहीं हो सका था वह सरला को थोड़े ही अनुभव से हृदयंगम हो गया था।

एक दिन सबेरे पंडित जी उठे तो सरला को दो-एक बार उनकी छींकें सुनाई पड़ीं। जब वह उनके पास गई तब उसके हाथ में पंडित जी की हलकी ऊनी जाकेट थी, जो पंडित जी हलके जाड़े में पहन लिया करते थे। इस समय जाड़ा आने में काफी देर थी, सितम्बर का महीना

था। रात भर पानी पड़ता रहा था, और बरामदे में तेज ठण्ढी हवा के झोंकों का मजा पंडित जी रात भर लेते रहे थे। सवेरे उठे, तो थोड़ी-थोड़ी सरदी मालूम हो रही थी, और पंडित जी यह पूरी तरह से समझ भी नहीं पाए थे कि उन्हें अपनी हलकी ऊनी जाकेट सन्दूक में से निकलवाने की जरूरत है, कि जाकेट हाजिर हो गई। पंडित जी ने विस्मयविमुग्ध दृष्टि से सरला की ओर ताका।

और जाते-जाते सरला ने यह भी पूछ लिया कि नाश्ते के साथ क्या दूध में तुलसी की चाय भी मिला दूं? और पंडित जी को भी लगा कि तुलसी की चाय आज अच्छी ही रहेगी।

थी जरा-सी ही बात, पर जमुना या जमुना की मां से ऐसा कभी नहीं हुआ था। साहस करके उन्होंने कभी पंडित जी को कुछ सुझाया भी था, उन्हें कोई सलाह दी भी थी, बिना चाहे या बिना मांगे कुछ लाकर दिया या देना चाहा भी था, तो अपनी तत्कालीन आवश्यकता या इच्छा के प्रतिकूल ही वह पंडित जी को मालूम हुआ था।

सरला जो नाश्ता बनाती थी उसमें पंडित जी को शायद ही कभी कोई शिकायत का मौका मिलता हो। बादाम की चटनी पंडित जी की अपनी खास ईजाद थी—उसमें कई मेवे डाले जाते थे, और बड़ी बारीक पीसी जाती थी। पंडित जी के रोजाना नाश्ते का वह एक खास हिस्सा था। उसीका तैयार करना सबसे मुश्किल काम होता था। जमुना कुल बादामों की जरा-जरा सी नोक काट-काट कर उन्हें चख-चख कर कड़वे बादाम छांट देने की कितनी भी कोशिश करती थी, पर फिर भी कभी-कभी चटनी में कड़वापन रह ही जाता था, और उस पर डाट पड़ ही जाती थी। पर सरला जबसे चटनी बना रही है तबसे सिर्फ एक बार—और वह भी शुरू-शुरू में ही—चटनी में कड़वापन आया था। उसके बाद यह गलती फिर कभी नहीं हुई। सरला ने इसके लिये जो उपाय खोज निकाला था वह बहुत ही साधारण था, पर जमुना को कभी सूझा ही नहीं था। वह हर बादाम का करीब-करीब आधा हिस्सा चखने

में खर्च कर डालती थी ! जमुना को अपनी छोटी भाभी की इस तरकीब का बहुत दिनों बाद पता लगा, और जब एक दिन पंडित जी ने सरला के सामने ही उसे इसी बात को लेकर लज्जित करना चाहा तो उसने पंडित जी के सामने सरला की यह पोल खोल भी दी। पर पंडित जी ने सरला की ही पीठ ठोकी। बोले—"अगर थोड़ा-थोड़ा हिस्सा चखने से कड़वे और मीठे बादाम का फर्क ठीक-ठीक नहीं मालूम होता तो ज्यादा-ज्यादा हिस्सा तो चखना ही चाहिये !"

जमुना झेंपी की झेंपी ही रह गई।

जमुना पर अब पंडित जी की मार करीब-करीब बन्द हो चुकी थी, और अब कम ही मौके आते थे जब पंडित जी का हाथ उस पर उठता था। वर्द्धन की मृत्यु के बाद से इस स्थिति में थोड़ा-बहुत फर्क जरूर हुआ था और जमुना को पीटने से जो विरक्ति पंडित जी को किसी समय हो चली थी उसमें फिर कमी आने लगी थी। पर मार पड़े या न पड़े, पंडित जी की आवाज सुनते ही जमुना का दिल जोर-जोर से धड़कने लगता था।

और जमुना को घोर आश्चर्य होता था जब वह देखती थी कि पंडित जी की जिस मार से सभी डरते हैं, उसकी छोटी भाभी उसका भी स्वागत करने के लिये तैयार रहती है। जमुना के सामने ही एक दिन सरला ने पंडित जी से पूछा था—"जमना बीबी की तरह ही मुझे भी क्यों नहीं पीटते आप—मेरी गलती पर ?"

यह बात रात के वक्त की है, रामायण-पाठ के समय की। पंडित जी अलस भाव से पलंग पर लेटे थे, और उस रोज जल्दी नाराज न होने की मुद्रा में थे। "तू बहू जो है," उन्होंने कुछ हँस कर जवाब दिया—"बहुओं को तो मैं नहीं पीटता !"

"मैं तो आपकी बेटी हूँ—जमुना बीबी की ही तरह," सरला ने गंभीर स्वर में कहा।

"तो तू क्या पिटना चाहती है ?" पंडित जी ने कुछ आश्चर्य-भरे

स्वर में कहा, "जमुना तो चाहती नहीं पिटना !"

"जी···पिता की ताड़ना बच्चों के लाभ के लिये होती है—" एक आवेश-सा था सरला के स्वर में, और कुछ-और भी कहना चाहती थी वह, पर सहसा जमुना की ओर दृष्टि जाते ही वह रुक गई। जमुना आंखों के इशारे से उसे रोक रही थी—यह क्या कर रही हो तुम छोटी भाभी, ईश्वर के लिये और न उकसाओ पंडित जी को पीटने की दिशा में; यों ही क्या कम पिटाई होती है हमारी—उसकी आंखें कह रही थीं। सरला बीच में ही रुक गई।

"अच्छा, तो तू भी मार खा जायगी कभी !" पंडित जी हँसते हुए तृप्त भाव से बोले।

और उसके दो ही तीन दिन बाद जब एक रोज पंडित जी के एक क्रोधावेश के समय सरला सहसा उनके आगे आ पड़ी तब अपने सप्तम स्वर में पंडित जी उसी आवेश में गरज उठे—"क्यों, पिटना चाहती है तू ?"

सरला हटी नहीं; उलटे पंडित जी की ओर ही और भी बढ़ आई, और उनके बिलकुल निकट आकर उसने अपना सिर उनके सामने झुका दिया—"जी ··· मैं भी आपकी बेटी ही हूँ," वह धीरे से पर निर्भीक स्वर में बोली।

पंडित जी का हाथ सहसा सरला की ठोड़ी पर जा पहुँचा और एक झटके के साथ उसका सिर ऊपर को उठा कर उन्होंने सरला की आंखों में अपनी आंखें गाड़ दीं—भोलीभाली पर ढीठ आंखों में अपनी तेज कठोर आंखें। पर उन आंखों में मिल कर उनकी आंखें मानों बह गईं, पंडित जी का क्रोधावेश ढल गया। एक हाथ से उन्होंने सरला का एक कान पकड़ा, और दूसरे हाथ से उसके गाल पर एक हलकी चपत जमा दी। पर पंडित जी की हलकी भी चपत सरला के अनभ्यस्त गाल के लिये काफी कड़ी थी। उसका सिर चकरा-सा गया, और पंडित जी ने बनावटी कड़ाई के साथ कहा—"अब खुश है ? खा ली मार आज ?"

"आज बेटी बन गई आपकी," सरला ने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया। उसके चेहरे पर एक अजीब गंभीरता थी।

"जा, भाग जा यहां से अब," पंडित जी ने न-जाने किन-किन भावों के उतार-चढ़ाव को अन्दर ही अन्दर दबाते हुए इस बार सचमुच ही क्रोध के साथ कहा।

और सरला धीरे-धीरे चली गई।

[४]

वर्द्धन की मृत्यु के बाद जैसे-जैसे दिन बीतते गए, पंडित जी का क्रोध, उनका चिड़चिड़ापन और भी बढ़ने लगा। और धीरे-धीरे उनके इस क्रोध की, इस चिड़चिड़ेपन की केन्द्रबिन्दु अब जमुना की जगह बन चली उसकी छोटी भाभी सरला। जमुना को ताज्जुब भी हुआ और खुशी भी। बहुत बचती आई है छोटी भाभी अभी तक, अब पता लगेगा उसे भी!

पर डर सरला के भीतर जमुना को फिर भी नहीं दिखाई दिया, और यह कुछ कम हैरानी की बात नहीं थी उसके लिये।

एक दिन तो जमुना को लगा कि उसकी छोटी भाभी पर पूरा बुखार उतरेगा पंडित जी के गुस्से का।

कई दिन के दौरे पर से लौटे थे उस दिन पंडित जी। दोपहर का वक्त था और आते ही उन्होंने गरजना शुरू कर दिया था। और उसी तरह गरजते हुए वे नहा-धोकर और खा-पीकर कचहरी चले गए थे। शाम को जब लौटे तब एक तश्तरी में हलुआ लेकर सरला उनके सामने हाजिर हुई और एक गिलास पानी लेकर जमुना।

"किसने बनाया है हलुआ?" हलुए की भरी हुई पहली चम्मच ही मुँह में डाल कर उसे निगलते ही पंडित जी ने कठोर स्वर में पूछा, और जमुना की ओर कड़ी दृष्टि से ताका।

जमुना पसीने-पसीने हो गई, पर सरला ने बिना किसी घबड़ाहट के, अपने स्वाभाविक नम्र स्वर में, जवाब दिया—"जी, मैंने।"

"मैंने की बच्ची !" पंडित जी गरज उठे, और हलुआ की तश्तरी सामने की तिपाई पर पटक कर बोले, "मार खाना चाहती है ?"

सरला ने कोई जवाब नहीं दिया, पर जमुना ने देखा कि उसके चेहरे पर कहीं भी डर का कोई चिन्ह तक नहीं था।

जमुना के हाथ में पानी का भरा हुआ गिलास बुरी तरह से हिल रहा था।

"जी···क्या गलती हुई हलुआ बनाने में?" सरला ने इसी वक्त पूछा।

जमुना और भी घबड़ा उठी। कैसे वह वहाँ से भाग कर अपनी जान बचाए, यही इस वक्त उसकी एकमात्र चिन्ता थी।

"जा, खाकर देख," पंडित जी फिर गरजे, और हलुए की तश्तरी उठा कर सरला तेजी से कमरे से निकल गई।

और जमुना भी उसके पीछे-पीछे, पानी का गिलास ज्यों का त्यों लिये, अपने लड़खड़ाते हुए पांवों को किसी तरह सम्हाले, भाग खड़ी हुई।

दोनों ननँद-भावज ने हलुए को चख कर देखा था, पर किसी को कोई खास दोष नहीं मालूम पड़ा था। शायद घी कुछ कम हो, या चीनी कुछ ज्यादा हो, या फिर आटा कुछ कम भुना हो। पर साफ-साफ कुछ भी पता नहीं चला था।

सरला और जमुना दोनों ने मिल कर इस बार फिर से हलुआ बनाया, और जब सरला उसे लेकर पंडित जी के कमरे में घुसी तब उसके पीछे-पीछे पानी का गिलास लेकर जमुना दरवाजे के बाहर ही खड़ी रह गई।

फिर पंडित जी की गरज सुनाई दी उसे, और यह साफ हो गया कि हलुआ फिर भी नहीं खाया उन्होंने।

"तो आज पिटना ही चाहती है तू," कुछ ही क्षण बाद पंडित जी के

स्पष्ट शब्द सुनाई दिये, "जा, भाग जा यहाँ से···"

इसके बाद फिर कुछ क्षणों की चुप्पी; फिर सरला की हलकी, अस्फुट आवाज, जो जमुना की समझ में नहीं आई।

अचानक एक धमाका-सा; निश्चय ही सरला की पीठ पर पंडित जी का घूंसा पड़ा होगा!

जमुना भाग खड़ी हुई, और भागते-भागते ही उसने देखा कि उसके पिता सरला भाभी की बाँह पकड़े, उसे तेजी से अपने पीछे खींचते हुए अपने उस कमरे से निकल कर बरामदे में होते हुए अपने सोने वाले कमरे में चले गए, और अन्दर से दरवाजे के बन्द किये जाने की, और सिटकिनी लगने की, आवाज आई।

"पिटना ही चाहती है तो ले···पिट आज," दरवाजा बन्द होते-होते पंडित जी के गरजते हुए शब्द सुनाई दिये थे।

इसके बाद जमुना को कुछ नहीं मालूम हुआ। घटनास्थल से काफी दूर चली जा चुकी थी वह। और घोर कुतूहल से खिंची हुई जब कुछ देर बाद वह डरते-डरते और चुपके-चुपके उधर फिर आई थी तो पूरे कान लगाने पर भी उसे सरला भाभी के रोने-चीखने की कोई आवाज नहीं सुनाई दी थी।

और डेढ़-दो घंटे बाद जब सरला वापस आई थी तब भी उसके चेहरे पर न कोई डर दिखाई दिया था जमुना को और न कष्ट का ही कोई चिन्ह, हालांकि उसके चेहरे पर एक ऐसा नया भाव था कि जमुना उससे कुछ पूछ ही नहीं सकी थी। एक अजीब तरह की बेरुखी, कुछ दूर-दूर का सा भाव। मानों उसकी यह छोटी भाभी उससे बहुत दूर चली गई थी। और उस रोज रात को पंडित जी ने कुछ देर से ही खाना खाया था, और सरला भाभी उस वक्त भी अपने ही कमरे में पड़ी रही थी, और जब जमुना के साथ वह खाने बैठी थी तो एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकला था, और खाया भी बहुत कम था उसने।

जरूर बहुत कड़ी मार पड़ी है आज सरला भाभी पर भी, इसमें कोई शक नहीं रह गया था जमुना को, पर हण्टर से भी मार पड़ी है या सिर्फ लात-घूंसों से ही, यह जमुना कभी नहीं जान सकी। कई दिन बीत जाने पर भी इस सम्बन्ध में अपनी छोटी भाभी से कुछ पूछने का उसको साहस नहीं हुआ, पर उनके बदन के जो हिस्से उसे दिखाई देते रहे उन पर किसी प्रकार का भी कोई निशान कहीं नहीं था।

[५]

नौकरों से अपनी खास, घनिष्ट या अन्तरंग व्यक्तिगत सेवा लेना पंडित जी को कतई पसन्द नहीं था। जब उनकी स्त्री थीं तब इस तरह की उनकी सेवा वे ही करती थीं, और उनकी मृत्यु के बाद जमुना। रात को भी जमुना ही पंडित जी के कमरे में सोती थी। और जब राधे रहता था तब वह और राधे, और जब राधे नहीं रहता था तब वह और रामदीन पंडित जी के सोने से पहले रात को देर तक उनका बदन दबाते थे। और जब पंडित जी को नींद आ जाती थी तब जमुना अपने पिता के पलंग के पास ही बिछे अपने छोटे पलंग पर सो जाती थी और हलकी ही नींद सोती थी, कि पंडित जी को जरूरत पड़ने पर, उनकी एक ही आवाज में, वह अपना बिछौना छोड़ कर फुरती से उठ खड़ी हो और उनकी सेवा में हाजिर हो जाए।

पर वर्द्धन की बीमारी के सिलसिले में जमुना की खाट जो पंडित जी के कमरे से हटी सो फिर वापस नहीं आई। और तबसे पंडित जी रात को अकेले ही सोने लगे अपने कमरे या बरामदे में, या गर्मियों में छत पर। रामदीन के साथ-साथ जमुना भी अब पंडित जी का बदन दबा कर दूसरी जगह सोने के लिये चली जाने लगी थी, और वर्द्धन की मृत्यु के कुछ दिन बाद से रामदीन की जगह ले ली थी सरला ने। पंडित जी का एक पांव या उनकी एक बांह जब जमुना दबाती थी तब

दूसरा पांव या दूसरी बांह सरला दबाती थी, और जब पंडित जी को नींद आ जाती थी तब चुपके-चुपके दोनों ननँद-भावज अपनी-अपनी जगह सोने चली जाती थीं।

और रात को जब कभी पंडित जी को कोई जरूरत होती थी तो उन्हें जोर से आवाज देकर किसीको बुलाना पड़ता था, और अकसर रामदीन ही बुलाया जाता था।

पर यह व्यवस्था पंडित जी के लिये न सुविधाजनक ही थी और न सन्तोषजनक ही। और एक दिन उन्होंने इसे बदल ही डाला।

वर्द्धन की मृत्यु के कुछ महीने बाद, बरसात शुरू होते-होते, पंडित जी बीमार पड़ गए। सदा की भांति पंडित जी का पलंग, गरमियां शुरू होते ही, ऊपर की मंजिल पर चला गया था जहां लम्बी-चौड़ी छत के एक किनारे एक बरामदा था और सिर्फ एक कमरा। गरमी-बरसात में पंडित जी वहीं बरामदे में या खुली छत पर सोते थे, और वह कमरा उनके प्रातःकालीन अध्ययन का स्थान बन जाता था।

बीमारी साधारण ही थी—मलेरिया बुखार, पर काफी जोर का बुखार कई रोज उतर-उतर कर आया। दिन में तो सरला पर ही उनकी सेवा की सारी जिम्मेदारी थी, पर रात को पंडित जी किसे अपने पास बुलाएँ—यह संघर्ष दिन भर उनके मन में चलता रहा। और अन्त में जमुना को ही बुलाने का उन्होंने निश्चय किया।

पर दूसरी रात से ही यह निश्चय बदल देना पड़ा।

रात भर जमुना से छोटी-बड़ी गलतियां होती ही रहीं और पंडित जी की डाट नीचे आंगन तक पहुँचती रही थी। सबेरा होने पर जब सरला और जमुना पथ्य लेकर आईं तब पंडित जी साबूदाने की एक चम्मच मुंह में डाल कर गले से उतारने के बाद, अपने नीचे के ओठ से कुछ सनी हुई मूंछों को चूस कर, सहसा बोल उठे—"आज रात कौन सोएगा यहां?" वह सरला से यह पूछ रहे हैं या जमुना से, यह उनकी दृष्टि से नहीं जाना जा सकता था, पर वह दृष्टि थी घोर अस-

न्तोष और क्रोध से भरी हुई, और बारी-बारी से दोनों के चेहरों पर स्थापित।

दोनों में से किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

दो-चार चम्मच पथ्य और मुंह में डाल कर, उसी तरह सनी हुई मूंछों को चूस कर, पंडित जी फिर बोले—"इससे काम नहीं चल सकता—इस गधी से," पंडित जी ने जमुना की ओर इशारा किया जो नीचे तक सिर झुकाए खड़ी थी। पंडित जी की भँवें अधिक से अधिक तनी हुई थीं।

सरला भी नतमस्तक खड़ी थी।

सात-आठ चम्मच पथ्य और पंडित जी के मुंह में गया, और फिर उगालदानी लिये खड़ी सरला की ओर इशारा करके उन्होंने गिलास से मुंह में थोड़ा पानी भरा। फिर तीन-चार बार कुल्ला करके तौलिये से अपने मुंह को और अपनी काली-काली मूंछों और दाढ़ी को पोछा और उसके बाद तकिये के बल आधे लेट कर गंभीर स्वर में बोले—"आज सरला सोएगी; यही सजा है तेरी!" और पंडित जी ने जमुना की ओर इस तरह ताका मानो इससे बड़ी सजा जमुना के लिये दूसरी नहीं है।

बात थी भी बहुत-कुछ ऐसी ही। छोटी भाभी की एक-एक जीत जमुना के दिल के आर-पार हो जाती थी।

और उस रात सरला की खाट जो ऊपर पंडित जी के पलंग के पास बिछी सो फिर नहीं उतरी। उतरी तभी जब फिर जाड़े आने पर पंडित जी की भी खाट उतरी। और तब तक पंडित जी के कमरे से मिला हुआ जमुना वाला कमरा सरला को मिल चुका था, और जमुना और भी अन्दर धकेल दी गई थी—अपनी दादी वाले खाली कमरे में।

पांचवां परिच्छेद

[१]

जमुना जब छोटी थी तब न तो कुछ समझती ही थी, और न उसके कुछ हौसले ही थे। दादी या मां की गोद, बड़े भैया का दुलार, मँझले भैया की दुतकार, मार या परिहास और छोटे भैया वर्द्धन के साथ खेल-कूद में ही उसकी छोटी सी दुनिया सीमित थी। और थे उसके पिता, जिनकी डाट के आगे वह खड़ी ही खड़ी पेशाब कर रहती थी। उनका अस्तित्व मानो उसके सुनहरे-रुपहले संसार को जब चाहे तभी मिट्टी कर देने के लिये ही था। उनके जूते की चर्र-मर्र या खड़ाऊँ की खटपट सुनाई दी, कि जमुना दबे-पांवों खिसकी।

पर जब अचानक एक रोज एक तूफान सा आकर उसकी मां को उससे छीन ले गया और साथ ही उसकी दादी की गोद भी उसे नहीं मिलने पाई और वह अपने उन्हीं पिता के पैरों-तले डाल दी गई कि वह चाहे उसे रौंदें, चाहे सहलाएँ, तब उसका वह सुनहरा-रुपहला संसार नष्ट हो गया और उसको लगा कि वह एक अंधेरे कुएँ में धकेल दी गई है जहाँ उसका कोई नहीं है, जहाँ वह भूखी-प्यासी ही मर जायगी।

किन्तु सच पूछो तो बड़ी होने पर जमुना ने जब कभी अपने अतीत की याद की, मां की और वर्द्धन की मृत्यु के बीच के उन पांच-छः साल के ही चित्रों से अपना स्मृति-पट भरा पाया—उन चित्रों के गहरे रंगों के आगे पहले और बाद के करीब-करीब सभी चित्रों के रंग धुंधले-से पड़ जाते थे। पहले, मानो उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान ही नहीं था। पर तब से अपना अस्तित्व ही नहीं, उसके चारो ओर खड़ी हुई ऊँची-ऊँची दीवालों का घेरा भी उसके सामने स्पष्ट हो चला।

उसने देखा, उसके अस्तित्व का एक क्षण भी उसके अपने लिये नहीं है, उस पर केवल उसके पिता का अधिकार है। पिता के कचहरी चले जाने पर वर्द्धन भी स्कूल चला जाता था, और खेलने-कूदने के लिये कुछ समय मिल कर भी उसे कोई साथी नहीं मिलता था। शाम को जब खेल-कूद के लिये साथ मिलता था तब उस खेल-कूद के सूत्रधार होते थे पंडित जी ही। कभी कबड्डी, कभी घुड़दौड़ और कभी गाड़ी पर सैर होती थी, पर पण्डित जी के साथ। खेल खेल नहीं रह जाता था, सैर सैर नहीं रह जाती थी।

दौरे पर अकसर वह पण्डित जी के साथ जाती थी। किसी गांव में नदी या तालाब के किनारे या किसी बाग में पण्डित जी का खीमा लग जाता था—जमुना का हृदय बांसों उछलने लगता। पर उसे चाहे-जहां उछलने-कूदने की आजादी नहीं थी, और न उसके साथ यह मजा लेने के लिये वर्द्धन ही। वह घर पर है, और जमुना बाहर दौरे पर। जमुना के नन्हें से हृदय में एक ज्वार सा उठता और उठते-उठते रह जाता।

और वे ही तो दिन थे जब पहलेपहल उसने दुनिया देखी थी, पण्डित जी का रोब देखा था, अपना छोटापन देखा था और दुनिया का बड़ापन। तभी तो पहलेपहल उसके भी नन्हें से दिल में हौसलों और अरमानों की बस्ती बसनी शुरू हुई थी हालांकि बसने वह कभी नहीं दी गई, पूरी-पूरी बसने से पहले ही हमेशा उजाड़ दी जाती थी। पर थे तो वह बड़े-बड़े हौसले, बड़े-बड़े अरमान, खूबसूरत बस्तियां! यही क्या कम था?

एक दिन—तब कोई दस-ग्यारह बरस की ही थी वह—जब वह अपने पिता के साथ दौरे पर गई हुई थी, एक तहसीली गांव के बाहर एक छोटी-सी नदी के किनारे उनका खीमा गड़ा था। कोई फरवरी का महीना होगा, नदी में पानी थोड़ा होते हुए भी बहुत ही साफ और चमकीला था। उनके खीमे के दूसरी ओर खेत ही खेत थे—हरे-हरे, पीले-

पीले खेत, सरसों और गेहूँ, गेहूँ और सरसों, और हरा-हरा चना और हरी-हरी मटर। दोपहरी ढल चुकी थी, और जमुना खीमे से बाहर अकेली एक खाट पर बैठी थी। उसके पिता बाहर गए हुए थे, वहां रह गया था सिर्फ एक नौकर। खूब ठण्ढी-ठण्ढी हवा बह रही थी, और जमुना धूप में भी ऊनी चादर लपेटे हुए थी।

जमुना खेतों की ही ओर दूर ताक रही थी, जहां से कुछ बच्चों की हाहा-हूहू उस तक हलकी होकर पहुँच रही थी। कुछ देर बाद उसने देखा, आठ-दस बच्चों का एक गिरोह उधर ही आ रहा है। दो-तीन लड़कियां थीं, बाकी लड़के। कुछ ही देर में वे उसके काफी पास आकर उसकी ओर कुछ-कुतूहल कुछ-भय मिश्रित दृष्टि से ताकते हुए नदी के किनारे की ओर निकल गए और कुछ दूर जाकर मानों उसीको लेकर हँसने लगे और फिर खेलने में लग गए। जमुना की भी दृष्टि उन्हींके साथ-साथ घूमती चली गई और फिर सहसा कब उठ कर वह धीरे-धीरे उनके काफी निकट पहुँच गई यह उसे स्वयं पता नहीं। वह घबड़ाई तब जब उसे अपने इतने निकट देख कर बच्चों का खेल छूट गया, और उनमें से एक बोला—"चलो, और कहीं चल कर खेलें; नहीं, मार पड़ेगी।"

"मार क्यों पड़ेगी?" एक दूसरा लड़का बोला।

"डिपटी सा'ब का चपरासी मारेगा। मारेगा नहीं?"

इसी समय उनमें से एक लड़का, जो सबका नेता मालूम होता था और जिसकी उम्र कोई बारह-तेरह बरस की थी, सहसा जमुना की ओर देख कर बोल उठा—"डिपटी सा'ब कौन हैं तेरे?"

जमुना एकदम घबड़ा गई। वह वहां और खड़ी रहे या नहीं यही सोचने लगी, कि वह लड़का जमुना के और भी पास आकर बोला—"उनकी बेटी है न तू? तू भी डरती है उनसे?"

कैसा बेधड़क, ढीठ लड़का था, और कैसी प्यारी-प्यारी आंखें थीं उसकी। जमुना, बस देखती ही रह गई उसकी ओर।

"अरे भाग-आ रमिया, डिपटी सा'ब से कह देगी तो तेरे घर से ही बंधवा मंगाएंगे तुझे," एक लड़के ने डरे हुए स्वर में अपने गिरोह में से पुकारा।

"मैं भी छत्री का लड़का हूँ, देखूँ तो कौन बंधवा मंगवाता है मुझे?" एक दर्पपूर्ण स्वर में रमिया उर्फ रामसिंह ने कहा, और उसका गोरा चेहरा लाल-सा हो उठा।

छोटा-सा चित्र है, पर जमुना के दिल पर गहरे रंगो में उभड़ा हुआ है। जमुना बोली कुछ भी नहीं थी उस रमिया से, और डिप्टी साहब के बड़े चपरासी को उधर ही आते देख कर बच्चों का वह गिरोह, और उनके बाद धीरे-धीरे वह रमिया भी, उससे दूर चले गए थे, पर जमुना वहीं खड़ी-खड़ी उनको जाते देखती रही थी। उसी रात को नहीं, बाद को भी कितनी ही बार उसने उस रमिया के साथ खेल खेले, रातों के ही सपनों में नहीं दिन में भी, जगे ही जगे। कुछ बड़ी होने पर उसने उसी रमिया से ब्याह भी कर डाला था, कई बार, कई रूपों में। और ब्याह के बाद भी उसके साथ वह उस नदी के किनारे वही खेल खेल चुकी थी।

और बड़ी हो जाने पर मां बन जाने के बाद भी, कभी-कभी जमुना सोच बैठती थी कि क्या सचमुच ही उस रमिया के साथ उसका ब्याह नहीं हो जा सकता था?

पर इन सबसे भी अधिक उन दिनों जमुना के लिये था उसके पिता का शासन, जो कठोर होकर भी विशिष्ट था; उनका नियंत्रण, जो निर्मम होकर भी उसके लिये उनके परम ममत्व से परिपूर्ण था। यही उसकी रोज की खूराक थी। इसी पर वह जीती थी उन दिनों, उन पांच-छः साल, जो मानों बड़ी जल्दी-जल्दी बीत गए थे। अपने अस्तित्व को जान कर भी, धीरे-धीरे वह उसकी स्वतंत्रता को भूल चली थी, पण्डित जी की, पण्डित जी के इशारों की, पण्डित जी के हुक्म की, पण्डित जी की मर्जी की वह एक उपकरण मात्र रह गई थी।

और फिर इस एक-सदृश, गतिहीन और नीरस अस्तित्व में भी धीरे-धीरे एक रस आ चला था, एक अर्थ पैदा हो गया था—पण्डित जी का एक प्रशंसा-वाक्य, उनकी एक स्निग्ध दृष्टि ! हफ्तों महीनों में कभी-कभी वह भी दिन आ जाता था जब पण्डित जी अपनी बुजुर्गी थोड़ी-बहुत छोड़ देते थे और बच्चों के साथ बच्चों-से ही बन जाते थे। यह सुनहरे दिन जमुना की उन दिनों की दुनिया में रंगबिरंगी होली-सी खेल जाते थे। उस रोज पण्डित जी के लिये जमुना जमनी हो जाती थी और उसके सात नहीं, सौ खून पण्डित जी के आगे माफ थे। पण्डित जी की उस दिन, या कहो, उस क्षण की एक दृष्टि के आगे जमुना अपना सारा जीवन निछावर कर दे सकती थी। उस दिन, यदि वह क्षण प्रातःकाल से ही आरंभ हो जाता तो, जमुना का तैयार किया हुआ नाश्ता पण्डित जी को इतना पसन्द आता था कि अपनी तश्तरी में से निकाल कर उसका एक खासा बड़ा हिस्सा वह उसी समय जमुना को भी एक अलग तश्तरी में दे डालते थे और जमुना अगर आतंक-वश उस तश्तरी को उठा कर उसी समय उसमें हाथ नहीं डाल देती थी तो मीठी फटकार पड़ती थी—"अरी, खाती क्यों नहीं है पगली, देख तो आज तूने कितना अच्छा बनाया है हलुआ !" और जमुना मनाती कि हे शंकर भगवान, पण्डित जी जैसे इस वक्त हैं वैसे हमेशा के लिये हो जायं।

पर हमेशा के लिये अगर पंडित जी वैसे नहीं बन सकते थे तो कभी-ही-कभी क्या कम था ! जमुना मानों ऐसे ही मुहूर्तों के लिये जीती थी, और जब वह मुहूर्त आता था तब पहले का उसका सारा क्षोभ, उसका सारा दुख-दर्द पंडित जी की एक चितवन में, उनके एक बोल में बह जाता था। जमुना ही नहीं सारे घर के लिये वह दिन, वह मुहूर्त, होली-दीवाली का उत्सव था; होली-दीवाली पंडित जी के घर में उत्सव नहीं, बोझ थे।

और जब वर्द्धन की मृत्यु के बाद जमुना ने देखा कि सहसा वह

अपनी पुरानी दुनिया से निकाल फेंकी गई है तब उसका सारा अस्तित्व बस अभाव ही अभाव बन कर रह गया, एक वृहद शून्य-सा। उसकी समझ में ही नहीं आया कि सबेरे से लेकर रात तक के पहाड़-से अपने एक-एक दिन को लेकर वह क्या करे। न काम न काज, न ज्यादा डाट न फटकार, बस लम्बी-चौड़ी फुरसत ही फुरसत। और लम्बी तपस्या के बाद जो वे सुनहरे क्षण उन दिनों उसके जीवन में आया करते थे, उनकी स्मृति-मात्र रह गई उसके सूने दिनों और सूने हृदय को न भरने देने के लिये। उसे आश्चर्य हुआ यह देख कर कि पण्डित जी की रुद्र, उग्र मूर्त्ति उसके हृदय पर उतनी गहरी रेखाएं नहीं बना सकी है जितनी उनकी वह स्नेह-मृदुल मूर्त्ति, जिसके चेहरे से हँसी ही हँसी बरस रही है, माधुर्य हा माधुर्य छिटका पड़ रहा है।

और जमुना के जीवन के इन सूने दिनों की इतनी-सारी खाली पड़ी जगह में अब खूब फैल-पसर कर आ बैठी उसकी सरला भाभी, जिसने उसका सब-कुछ छीन कर उसके अपने ही घर से उसे निकाल बाहर किया था! ईर्ष्या ही इन दिनों जमुना की रोज की खूराक बन गई।

[२]

जमुना के स्वभाव का यह परिवर्तन सबसे अधिक लक्ष्य किया उसके बड़े भैया ने। वकालत पास करके वह पिता के ही पास थे—वह कहां वकालत करने के लिये जायंगे, साल सवा-साल बीत जाने पर भी अभी तक तय नहीं हो सका था। घर पर बेकार पड़े-पड़े और पिता के ताबेदार बने-बने वह भी ऊब रहे थे, और साथ ही इधर कुछ ही महीनों में बदली हुई पिता की गृहस्थी देख कर क्षुब्ध हो रहे थे। घर के आंगन में मां नहीं रहीं, दादी नहीं रहीं, रह गई उनकी स्त्री और जमुना, और घर और बाहर दोनों की कुंजी चली गई छोटी विधवा बहू के हाथ में। जहां पहले बूढ़ा रामदीन और मां मिल कर गृहस्थी चलाती थीं, और बाद

को, मां के मर जाने पर, उनकी जगह ले ली थी दादी की ओट में उनकी ही स्त्री ने, वहां न अब बूढ़े रामदीन की ही चलती है, न उनकी स्त्री की ही। पंडित जी तक रामदीन की पहुँच होने पर भी छोटी बहू की व्यवस्था के विरुद्ध वह कुछ भी नहीं कह सकता। और उनकी स्त्री की तो वहां तक पहुँच ही अब, दादी के न रहने पर, नहीं रही। बड़े दरबार में अब बड़ी बहू की भी फरियाद छोटी बहू के ही मारफत जाती है, और छोटी बहू की मध्यस्थता से बड़ी बहू को संतोष नहीं।

और राधेश्याम जमुना को देखते थे, जो उनके लिये एक और भी बड़ी समस्या बन चली थी। पिता से वह अब दूर ही दूर रहना चाहती है, छोटी भाभी पर उसका क्षोभ ही क्षोभ है, बड़ी भाभी की अब वह कोई बात नहीं सुनती। खोई-खोई सी, अपने ही आवरण में बन्द सी, वह इधर-उधर, आंगन से बरामदे में, बरामदे से आंगन में, बेमतलब चक्कर काटती फिरती है, और या फिर कहीं पड़ जाती है तो घण्टों पड़ी ही रह जाती है, कई बार बुलाने पर मुश्किल से उठती है। खाने-पीने में उसकी रुचि नहीं है, सारा घर जब घोड़ों-गाड़ियों पर सवार होकर सैर को जायगा तब भी जमुना जाना नहीं चाहेगी, उसे बार-बार मनाना पड़ेगा, तरह तरह से खुशामदें करनी पड़ेंगी। इतनी सयानी लड़की को घर में सिर्फ नौकरों के ही भरोसे छोड़ कर तो जाया नहीं जा सकता! कई बार उसकी जिद के पीछे उसकी बड़ी भाभी को भी उसके साथ घर ही रह जाना पड़ता। एक रोज राधेश्याम ने जमुना को डाट दिया। कैसी अजीब लड़की बनती जा रही है, न किसी का लिहाज न किसी से कोई मतलब। जब देखो पड़ी रहती है, न कोई काम न काज। चेहरा पीला पड़ता जा रहा है, हड्डियां निकलती आ रही हैं। बात क्या है, बता न? किसी से सीधे-मुँह बात ही नहीं करती!

जमुना पड़ी ही रही, कुछ नहीं बोली; बल्कि जिस करवट पड़ी थी उसी करवट और भी सिकुड़ कर पड़ गई और उसका जितना चेहरा

दिखाई भी दे रहा था वह भी उसकी बांहों और तकिये में छिप गया।

शाम हो चली थी और गरमी के दिन होते हुए भी जमुना कमरे के अन्दर ही पड़ी थी, जहां दिन की रोशनी बहुत धुंधली रह गई थी। राधेश्याम को जमुना की आकृति अच्छी तरह से दीख भी नहीं रही थी। और बक-झक कर झल्लाए हुए वह कमरे से बाहर निकल गए।

थोड़ी देर बाद रोशनी लेकर जो जमुना की बड़ी भाभी वहां आईं तो उन्होंने उसे उस तरह पड़े देखा। जमुना पर उनका भी कम स्नेह नहीं था; जमुना बहुत छोटी थी, कोई पांच-छः साल की, जब वह बहू होकर पहलेपहल इस घर में आई थीं, और जब गौने के बाद उन्होंने इस घर को अपना घर बना लिया था तब भी जमुना आठ-नौ साल से ज्यादा की नहीं थी। मां की, दादी की, बड़े भैया की, सभी की दुलारी थी वह, और अपनी मीठी-मीठी बातों, बड़ी-बड़ी रसीली आंखों और गोरे-चिट्टे रंग के कारण उनकी भी स्नेहपात्री वह तभी से बन गई थी। इधर उसके स्वभाव के परिवर्तन से और अपने प्रति भी उसकी विरक्ति के कारण वह भी उससे विरक्त सी हो उठी थीं, पर आज इतनी गरमी में भी अंधेरे कमरे में उसे इस तरह पड़ी देख उनका जी न जाने कैसा हो उठा। उनके अपना कोई बच्चा नहीं हुआ था; इस घर में सबसे छोटी जमुना ही उनके वात्सल्य स्नेह की एकमात्र अधिकारिणी थी। वह जानती थीं कि जमुना जिस तरह पड़ी हुई है उसका क्या मतलब है; उसके बड़े भैया की डाट भी उन्होंने दूर से ही अस्पष्ट रूप में कुछ-कुछ सुनी थी।

"जमना !" उन्होंने स्नेह-मृदुल कण्ठ से उसके पास जाकर धीरे से पुकारा।

"जमना बीबी ! रानी बीबी !" कुछ देर खड़ी रह कर वह फिर बोलीं। पर फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला; सिर्फ जमुना का सिर उसके तकिये पर उसकी बांहों की कुंडली के भीतर और भी जा गड़ा।

अनुभवी बड़ी भाभी समझ गईं कि इस मान का स्रोत कहां है, और यह कैसे टूटेगा।

राधेश्याम को यह सूझा ही नहीं था कि वह जमुना को रोती छोड़ आए हैं। जैसे ही सुना, दौड़े आए। वह जानते थे कि उनकी बहन जब रूठती है तब कैसी रूठती है। फिर इस वक्त तो वही दोषी भी थे; उन्होंने बहुत बुरी तरह से डाट दिया था आज उसे, शायद बरसों बाद। उनका जी भर आया। एक ही तो बहन थी उनकी, वह भी बिना मां की। एक दादी थीं जो उसे गोद में लेकर उसके आंसू पोंछती थीं, आज वह भी नहीं हैं। जो कुछ हैं जमुना के अब वही तो रह गए हैं!

कमरे में घुसते ही उन्होंने हँसते हुए स्वर में पुकारा—"अरी, मेरी डाट का बुरा मान गई?—पगली।" और उसके पास पहुँच कर उसके चेहरे को अपने घेर में छिपाने वाली बांहों को ढीला करने लगे। जमुना और भी अकड़ गई, उसकी बांहें और भी कस गईं, और अपना चेहरा उसने और भी भीतर को घुसा लिया।

पर जब उसके बड़े भैया ने बांहों की कुण्डली समेत उसके सिर को बलपूर्वक तकिये से अलग करके उसे अपनी बांहों में भर कर अपनी ओर को खींचा और उनके हाथ उसने अपने गीले चेहरे से छू कर गीले होते देखे, वह और न रह सकी, उनकी गोदी में मुँह गाड़ कर जोर से रो पड़ी।

राधेश्याम भी सन्न-से रह गए। जमुना का चेहरा ही नहीं, उसकी बांहें, उसकी धोती का अंचल, उसका तकिया, आंसुओं से तरबतर थे। वह जब से उसे डाट कर गए थे तब से इतनी ही देर में इतने आंसू कौन बहा सकता है! जरूर वह पहले से ही पड़ी रो रही थी। तो क्या उन्होंने कब-से रोती हुई उस बिचारी को ही डाटा था? उनकी भी आंखों में आंसू भर आए।

कुछ देर तक वह कुछ भी नहीं बोल सके, जोर-जोर से हिचकियां लेती हुई अपनी बहन के सिर को अपनी गोद में दबाए, उसके बालों पर हाथ फेरते, बैठे रहे। जब उसकी हिचकियां कुछ हलकी पड़ीं, बहुत ही मीठे स्वर में आजिजी के साथ बोले—"बता क्या बात थी? क्यों

पड़ी रो रही थी तू ?"

जमुना कुछ भी नहीं बोली, न उसकी सिसकियां ही रुकीं।

"मैंने तो यों ही डाट दिया था तुझे पगली! मैं क्या जानता था, तू रो रही है। ... बता क्या बात थी? मुझे भी नहीं बताएगी?"

धीरे-धीरे हिचकियां भी बन्द हुईं, जमुना ने अपना सिर भी उठाया, और बड़े भैया की आंखों से आंखें मिल जाने पर हँस भी पड़ी। पर अपने रोने के जो कारण उसने बतलाए उनसे राधेश्याम को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने और जोर दिया, उसके मन की बात समझने की और कोशिश की, पर और कुछ वह नहीं जान सके। ज्यादा पूछने पर अन्त में जमुना ने भर्राए हुए गले से सिर्फ इतना कहा कि "मन नहीं लगता," और फिर रो पड़ी, और उनकी गोद में गिर गई।

"मन नहीं लगता?—क्यों?—" कुछ अविश्वास के, कुछ आश्चर्य के, स्वर में राधेश्याम बोले। उन्हें तकलीफ-सी हुई कि जमुना शायद अब उनसे भी कुछ छिपाने लगी है।

"मन कैसे लगे?" जमुना की बड़ी भाभी ने राधेश्याम से सारा क़िस्सा सुनने पर रात को कहा। "आखिर लड़की ही है, लड़का तो है नहीं। सत्रहवीं शुरू हो गई, पर ब्याह का कोई नाम तक नहीं लेता। न बाप को परवाह है न भैया को। —ब्याह हो गया होता, चन्दा सा गुड्डा गोद में होता, अपना घर होता, अपनो गिरस्ती होती।—कहीं बाप के घर में मन लगता है सयानी लड़की का?"

बात राधेश्याम के दिल में बैठ गई। उसी आवेश में उसी समय पिता को चिट्ठी लिखने बैठ गए। पिता के सामने कोई कठिन प्रसंग छेड़ने का साहस अब भी उनमें नहीं आया था; ऐसे मौकों पर वह चिट्ठी से काम लेने लगे थे।

[३]

पर जमुना को इसका कुछ भी पता नहीं था, जब कि दूसरे दिन सबेरे

पंडित जी ने उसे अपने अध्ययन के कमरे में बुलाया। घोड़े पर सवारी करके पंडित जी तभी लौटे थे, और कपड़े बदल कर कमरे में चक्कर लगा रहे थे।

दरवाजे का परदा हटा कर जमुना धीरे-से, कुछ घबड़ाई-सी, अन्दर दाखिल हुई। पंडित जी आहट पाते ही जहां के तहां रुक गए और तनी हुई भौंहों के नीचे सिकुड़ी हुई अपनी कठोर आंखों की दृष्टि उस पर गड़ा दी। जमुना के होश उड़ चले।

"क्यों, ब्याह करेगी?" खड़े ही खड़े पंडित जी कड़क उठे। न वे स्वयं बैठे और न जमुना ही दरवाजे से कुछ अधिक उनके निकट आई।

जमुना कुछ भी नहीं समझ सकी कि क्या बात है।

"जा, अपने वकील को भी बुला ला, तू नहीं बोल सकती तो।" पंडित जी ने विद्रूप के स्वर में कहा।

इस स्वर से जमुना और भी घबड़ा गई। उसके चुपचाप खड़े रहने से पंडित जी का क्रोध और भी बढ़ेगा यह वह जानती थी, और इसलिये लड़खड़ाए स्वर में वह जल्दी से बोल उठी—"जी, मैं समझी नहीं···"

"तू कैसे समझेगी?" पंडित जी सहसा अट्टहास कर उठे। "पगली कहीं की; तू तो घबड़ा ही गई। —जा राधे को बुला ला, वह समझा देगा।"

जब राधेश्याम को लेकर जमुना फिर पंडित जी के कमरे में वापस आई तब पंडित जी गंभीर मुद्रा में आरामकुर्सी पर लेटे हुए थे। दोनों को अपने पास पड़ी हुई चटाई पर बैठने का इशारा करके पंडित जी ने अपनी जेब से राधे की चिट्ठी निकाली और उसे अपने हाथ में लिये ही लिये जमुना से बोले—"यह चिट्ठी लिख कर तेरे भैया ने कल रात मेरे पास भेजी थी। यह कहता है कि अब तेरा ब्याह हो जाना चाहिये।"

जमुना का सिर नीचे तक झुक गया, और राधे भी अपनी आंखें नीची किये बैठा रहा।

कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोला, और पंडित जी भी किसी

विचार में मग्न-से चुपचाप लेटे रहे।

"जब तेरी मां मरी थी," सहसा पंडित जी ने बहुत ही गंभीर स्वर में कहना शुरू किया, "तब तू नौ साल की थी। तेरी दादी के हिसाब से तभी तेरा ब्याह हो जा सकता था। तुझे याद है मैंने तुझसे पूछा था कि ब्याह करना चाहे तो तेरा ब्याह कर दूँ ?"

जमुना ने सिर झुकाए ही झुकाए बहुत धीरे से कहा—"जी।"

"फिर क्या जवाब दिया था तूने ?"

"जी, यह याद नहीं रहा।" क्षण भर के लिये जमुना का सिर जरा ऊंचा उठ गया।

"मुझे याद है। तू ब्याह नहीं करना चाहती थी। तू गौरी की तरह शंकर को पाने की तपस्या करने को तैयार हो गई थी और मैंने कह दिया था कि तेरा स्वयंवर होगा, अपना वर तू आप खोजेगी।"

जमुना का सिर फिर नीचे तक झुक गया और उसके हाथों की उंगलियां उसके पैरों की उंगलियों से उलझ उठीं।

"अपना वर खोज लिया तूने ?" कुछ देर बाद पण्डित जी फिर बोले। जमुना ने नकारात्मक सिर हिला दिया।

"तब ?" पण्डित जी का स्वर फिर कुछ कठोर हो गया। "मैं जो कह चुका हूं उसे नहीं बदल सकता। तेरे ब्याह का जिम्मा मैं नहीं लूंगा। चाहे अपना वर तू आप खोज-ला, चाहे राधे से खुजवा।...वद्धू न का ब्याह करके मैं देख चुका, ज्योतिष बिलकुल झूठ निकल गई।...तू भी विधवा हो गई तो ?" पण्डित जी का स्वर एक साथ ही कठोर और स्निग्ध हो उठा था। और अन्तिम वाक्य कहते-कहते वे कुर्सी पर लेटे से बैठे हो गए थे।

और उसके बाद थोड़ी देर के लिये फिर कमरे में सन्नाटा छा गया।

सहसा पण्डित जी कुर्सी छोड़ कर उठ खड़े हुए और उन्होंने कमरे में तेज गति से टहलना शुरू कर दिया। स्पष्ट ही वह भारी आवेश में थे। राधेश्याम और जमुना भी हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए, पर पण्डित जी का

इशारा पाए बिना वे जा भी नहीं सकते थे। कमरे के एक किनारे दीवाल से लग कर वे खड़े हो गए। दोनों के ही चेहरों का रंग उड़ा हुआ था।

"तेरा ब्याह करके तुझे भी विधवा नहीं बनाना चाहता मैं," चक्कर काटते-काटते एक बार उन दोनों के सामने रुक कर पण्डित जी गरज से उठे। "दो-दो विधवाएं अपने घर में नहीं बिठाऊंगा।...राधे लेगा तेरी जिम्मेदारी, तू विधवा हो गई तो ?" और जमुना की ओर से हटा कर पंडित जी ने अपनी कठोर दृष्टि राधेश्याम के चेहरे पर गाड़ दी।

राधेश्याम को पंडित जी की ओर ताकने के लिये विवश हो जाना पड़ा, और किसी तरह साहस करके उन्होंने कह ही डाला—"जी।"

"जी कह देना आसान है," पडित जी उबल पड़े। "ला, मुझे लिख कर दे कि जमुना के ब्याह की और उसके बाद की भी सारी जिम्मेदारी तू लेता है। अपनी बहू के भी दस्तखत करा, वह विधवा हो गई तो तुम दोनों उसे अपने घर की लक्ष्मी समझोगे, देवी की तरह रक्खोगे।"

और आवेश में भरे हुए पंडित जी अपनी आरामकुर्सी पर जा पड़े। "जाओ," तीव्र कठोर स्वर में वहीं से वह चिल्ला कर बोले, "लाओ, अभी लिख कर।"

और सचमुच ही राधेश्याम और उनकी स्त्री को संयुक्त हस्ताक्षर से उसी दिन एक प्रतिज्ञापत्र लिखना पड़ा, जिसकी शब्दावली पंडित जी को सन्तुष्ट करने के लिये इतनी बार बदली गई कि अन्त में एक तरह से वह पंडित जी की ही रचना बन गई।

और जमुना उस दिन शर्म के मारे ऐसी गड़ी-सी रही कि सारे दिन वह अपनी दोनों भाभियों और भैया से मुंह चुराती फिरी।

[४]

उस दिन से राधेश्याम ने जमुना के विवाह की जिम्मेदारी सचमुच ही अपने ऊपर समझ ली और वह उसके लिए योग्य वर की खोज में

लग गए। पर उनके आश्चर्य और दुःख की थाह नहीं रही जब कुछ ही महीनों की कोशिश के बाद उन्होंने देखा कि सुपात्र की तो बात दूर रही, कोई कुपात्र ब्राह्मण भी आसानी से सोलह-सत्रह वर्ष की जमुना से ब्याह करने को राजी नहीं है। एक तो इतनी ज्यादा उम्र, और फिर डिप्टी-कलक्टर पंडित भगवतीचरण की लड़की! पंडित जी के घर अपनी लड़की देने में बहुत कम को आपत्ति थी, पर उनकी लड़की अपने घर लेने से सभी हिचकते थे। उन लोगों की राय में सोलह-सत्रह बरस की उम्र तक जो लड़की बाप के घर में रही थी, वह कन्या नहीं मेम थी, और पिता के साथ दौरे पर जाने, घुड़सवारी करने, नदी में तैरने की जमुना की 'कीर्त्ति' सारी बिरादरी में खूब रंगबिरंगी होकर फैल चुकी थी। ईसवी बीसवीं शताब्दी की बिलकुल शुरूआत थी; हिन्दू समाज, खास तौर से ब्राह्मण समाज उस समय भी बीसवीं शताब्दी की अपेक्षा सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के कहीं अधिक निकट था।

जब राधेश्याम करीब करीब निराश से होने लगे थे और उनकी कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि जमुना के विवाह की समस्या को वह कैसे सुलझाएंगे, एक बार एक काम से उन्हें काशी जाना पड़ा। वहां वे सदा की भांति इस बार भी पंडित गौरीदत्त के यहां ठहरे।

पंडित गौरीदत्त के पिता पंडित चन्द्रदत्त, और पंडित भगवतीचरण के पिता पंडित श्रीधर, अपने विद्यार्थी-काल में साथ ही साथ विद्योपार्जन के लिये काशी गए थे। सुदूर बुलन्दशहर जिले के एक ही गांव से आकर एक ही जाति-उपजाति के उन दोनों विद्यार्थियों में काशी के कई वर्षों के निरन्तर सहवास से प्रगाढ़ मित्रता हो गई और जब पंडित श्रीधर अपने गांव वापस चले आए और पंडित चन्द्रदत्त काशी में ही अपने प्रखर पांडित्य के बल से बस गए तब भी उनकी उस मित्रता में अन्तर नहीं आया।

पंडित श्रीधर के हृदय में, उम्र में छोटे पंडित चन्द्रदत्त के लिये, इतना स्नेह था कि जब उनकी पत्नी एकमात्र पुत्र गौरीदत्त को छोड़ कर

मरीं तो पंडित श्रीधर ने ही नहीं, उनकी स्त्री ने भी गौरीदत्त को अपने पुत्र के समान ही माना और जब पंडित श्रीधर भी इस संसार से चले गए और पंडित चन्द्रदत्त भी, तब भी पंडित श्रीधर की विधवा स्त्री भगवतीचरण के अलावा गौरीदत्त को भी अपना पुत्र ही समझती रहीं, और अपने बेटे भगवतीचरण की आर्थिक समृद्धि के समय में उनसे जहाँ तक बन पड़ा, कभी अपने बेटे के जान में और कभी अनजान में, उन्होंने गौरीदत्त की धन से सहायता की। मां के आग्रह पर एक बार तो पंडित भगवतीचरण ने एक-मुश्त एक हजार रुपये पंडित गौरीदत्त की कन्या के विवाह के लिये दिये थे। उनका बेटा चन्द्रशेखर तो बहुत-कुछ पंडित भगवतीचरण के ही धन से पढ़ाया गया था।

पंडित भगवतीचरण से उम्र में पंडित गौरीदत्त बड़े थे, और आत्म-सम्मान की मात्रा उनमें भी कम नहीं थी। जो कुछ धन उन्होंने पंडित भगवतीचरण या उनकी मां से पाया था, उसका पूरा हिसाब रखा था और अपने बेटे चन्द्रशेखर को समय-समय पर कठोर स्वर में याद दिलाते रहते थे कि सूद-समेत यह सब धन उसे भगवतीचरण को या उसके वारिसों को वापस करना होगा।

इसका कारण था।

पंडित भगवतीचरण और पंडित गौरीदत्त में कुछ वर्षों से मनो-मालिन्य शुरू हो गया था। पंडित गौरीदत्त के लड़के चन्द्रशेखर की पढ़ाई पर पंडित भगवतीचरण का जो धन खर्च हुआ था और हो रहा था उसके कारण पंडित जी चन्द्रशेखर के भविष्य पर भी उसी तरह अपना अधिकार समझते थे जिस तरह राधेश्याम के भविष्य पर। लड़का तेज और होशियार था और चरित्रवान। उम्र में जमुना से वह सात साल बड़ा था और जब जमुना दस-ग्यारह साल की ही थी तभी पंडित जी ने, मन ही मन, उसे अपना भावी जमाई बना डाला। और इसी-लिये जब पंडित गौरीदत्त ने, चन्द्रशेखर की उम्र अठारह साल की हो जाने पर, उसका विवाह करने का निश्चय करके पंडित जी को इसकी

सूचना दी और उनकी निगाह में उसके लायक कोई लड़की हो तो बताने के लिये कहा, तब पंडित भगवतीचरण ने एक प्रकार से आदेशात्मक शब्दों में लिख दिया कि उसका विवाह तो जमुना से होना चाहिये। पंडित गौरीदत्त को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी, बल्कि उनके ऋण से जिस तरह वह अपने को ऋणी समझते थे, उससे मुक्त होने का उनके लिये यह अच्छा अवसर था। और बहुत-कुछ यही आशा उन्हें थी भी जब पंडित भगवतीचरण को उन्होंने चन्द्रशेखर के ब्याह की बात लिखी थी।

पर झगड़ा शुरू हुआ विवाह के समय को लेकर। पंडित जी जमुना का विवाह इतनी जल्दी करने को तैयार नहीं थे, और कब करना चाहते थे यह भी साफ-साफ नहीं बता रहे थे। दूसरी ओर पंडित गौरीदत्त भी चन्द्रशेखर का ब्याह ज्यादा देर तक नहीं रोक सकते थे; कॉलेज में पढ़ने वाले लड़के के चरित्र को सुरक्षित रखने के लिये विवाह को वे आवश्यक समझते थे। राधेश्याम का दृष्टान्त भी उन्होंने दिया, जिसका ब्याह अठारह साल की उम्र में पंडित जी ने कर दिया था। ज्यादा से ज्यादा पंडित गौरीदत्त एक साल और ठहरने को तैयार थे जब कि जमुना बारह साल की हो जाती; पर सगाई उस अवस्था में भी वे तुरंत कर देना चाहते थे। किन्तु पंडित भगवतीचरण अलग सगाई की जरूरत ही नहीं समझते थे; सगाई और ब्याह उनकी राय में एक ही समय होने चाहिये थे।

नतीजा यह हुआ कि पंडित गौरीदत्त ने अगले ही साल चन्द्रशेखर की शादी दूसरी जगह कर दी। और गुस्से के मारे पंडित भगवतीचरण न तो खुद ही शादी में शामिल हुए और न किसी लड़के को ही शामिल होने दिया। केवल उनकी बूढ़ी मां रामदीन को साथ लेकर गई थीं, और उन्हें भी भीतरी बात का पता नहीं था। पंडित भगवतीचरण और पंडित गौरीदत्त दोनों ने ही यह बात गुप्त रक्खी—किसी भी तीसरे व्यक्ति तक यह नहीं पहुँची।

और तभी, चन्द्रशेखर के ब्याह के समय, पहली बार पंडित गौरीदत्त ने पंडित भगवतीचरण और उनकी मां से मिले धन का कुल हिसाब

लगा कर अपने बेटे के आगे रख दिया, और उससे प्रतिज्ञा ली कि वह "कमा-कमा कर यह सारा धन सूद-समेत भगवती पंडित या उसके वारिसों को लौटाएगा।" और जब इसके एक ही साल बाद पंडित भगवतीचरण अपने सोलह साल के ही वर्द्धन को ब्याह लाए तबसे तो पंडित गौरीदत्त की जबान पर उनके सम्बन्ध में हमेशा के लिये यह प्रसंग व्यंग बन गया।

पर चन्द्रशेखर के भविष्य पर पंडित भगवतीचरण ने अपना अधिकार फिर भी नहीं छोड़ा। मां जब तक जीवित रहीं, चन्द्रशेखर की पढ़ाई के लिये थोड़ा-बहुत खर्च वह बराबर भेजती रहीं, न पंडित भगवतीचरण ही इस मद में मां को रुपया देने से इनकार कर सके और न पंडित गौरीदत्त ही मां के आग्रह को टाल सके, खास तौर से जब कि वह देखते थे कि उस सहायता के बिना चन्द्रशेखर का ऊंची शिक्षा पाते जाना असंभव था। और इस सहायता के कारण पंडित भगवतीचरण अब भी चन्द्रशेखर पर अपना काफी अधिकार समझते थे।

जिस साल वर्द्धन का और पंडित जी की मां का देहान्त हुआ, उसी साल चन्द्रशेखर ने बी० ए० पास किया। पंडित गौरीदत्त का निश्चय था उसे संस्कृत में एम० ए० कराके प्रोफेसर बनाने का। इस म्लेच्छ-युग में भी जो थोड़ा-बहुत ब्राह्मणत्व बनाए रखा जा सके वह बनाए रखना चाहते थे, और अध्यापन-कार्य में ही अपने बेटे को लगाना चाहते थे। उनके पिता काशी के प्रसिद्ध पंडित थे; वे स्वयं भी उसी लीक पर चल रहे थे। अपने बेटे को भी वह उसी लीक पर चलाना चाहते थे, केवल इतने परिवर्त्तन के साथ कि वह अंग्रेजी कॉलेज में संस्कृत विद्या पढ़ाएगा, और अधिक समृद्ध जीवन बिताएगा।

पर पंडित भगवतीचरण ने, चन्द्रशेखर के बी० ए० होने पर, उसे कुछ दिनों के लिये गरमी की छुट्टियों में अपने पास रहने के लिये आने को लिख दिया और यह भी संकेत कर दिया कि उसकी आगे की पढ़ाई पर इस बीच विचार कर लिया जायगा। पंडित गौरीदत्त ने भी अपने बेटे

को वहां जाने से नहीं रोका। वे जानते थे कि बाप-बाप का झगड़ा अभी बेटों तक नहीं पहुँचा था, और इलाहाबाद में एक ही कॉलेज में पढ़ने वाले राधे और शेखर भाई-भाई की ही तरह एक-दूसरे को स्नेह करते थे।

पर जब पन्द्रह-बीस दिन पंडित जी के पास बिजनौर रह कर शेखर काशी अपने पिता के पास लौटा तब पंडित जी का यह प्रस्ताव लेकर लौटा कि अगर वह इंजीनियरी पढ़ने के लिये रुड़की जायगा तो पंडित जी उसका पूरा खर्चा उठाने को तैयार हैं। शेखर को खुद भी यह प्रस्ताव काफी आकर्षक लगा था।

पर पंडित गौरीदत्त अपने निश्चय पर दृढ़ रहे, और शेखर को संस्कृत लेकर एम० ए०में भरती होना पड़ा। धनी बंधु का क्रोध स्वीकार करके भी उन्होंने शेखर को एम० ए० पढ़ाने का निश्चय कर लिया, भले ही पैसा-पैसा बचा कर जमा की हुई उनकी कुल पूंजी खर्च हो जाय और घर के सारे आभूषण बिक जाएँ!

[५]

जिस समय राधेश्याम काशी गए, शेखर की स्त्री का देहान्त हो चुका था और अब वह विधुर था। उसकी स्त्री कोई बच्चा भी छोड़ कर नहीं मरी थी, और राधेश्याम के मन में बिजनौर छोड़ने से पहले ही एक बार यह बात आई थी कि क्यों न जमुना का शेखर से ब्याह हो जाय। पिता-पिता के बीच शेखर-जमुना के विवाह को लेकर पहले क्या झगड़ा हो चुका है यह वह नहीं जानते थे, और किसी विधुर के साथ अपनी एकमात्र बहन को ब्याह देने का विचार अप्रिय होते हुए भी शेखर के संबध में इतना अप्रिय नहीं मालूम हुआ। उस समय भी उसकी उम्र तेईस ही साल की थी, जहां जमुना सत्रहवें में पड़ चुकी थी, और इलाहाबाद में एक ही कॉलेज में, एक ही होस्टल में, कई साल भाई-भाई की तरह एक-साथ रह कर दोनों में गहरा बंधुत्व स्थापित हो गया था। इसके अलावा,

इन कई महीनों की कोशिश के बाद राधेश्याम के सामने जमुना के ब्याह की समस्या जितनी विकट हो गई थी, वर का पाना जितना कठिन हो गया था, उससे शेखर के विचार ने उन्हें भारी निवृत्ति दी थी। किन्तु शेखर की बहू को मरे अभी तीन-चार महीने ही हुए थे, और इतनी जल्द इस प्रसंग का छेड़ना उन्हें अनुचित-सा लग रहा था।

और इसलिये उनको बेहद खुशी हुई जब उनके काशी पहुंचने पर शेखर के पिता पंडित गौरीदत्त ने स्वयं ही यह प्रसंग छेड़ दिया।

"क्यों बेटा, तो तेरा बाप जमुना को जन्म भर क्वांरी ही रक्खेगा," राधेश्याम जिस दिन काशी पहुंचे उसी रोज रात को भोजन के बाद ऊपर के बरामदे में बिछी अपनी खाट पर लेटते हुए पंडित गौरीदत्त ने पूछा।

राधेश्याम की भी खाट उन्हींकी बगल में बिछी थी, और उन्हींकी ओर मुंह-किये, नीचे को पांव लटकाए, राधेश्याम बैठे थे। क्या जवाब दें, कुछ देर तक यह उनकी समझ में नहीं आया।

"अरे बेटा, इतनी बड़ी लड़की से फिर कौन ब्याह करेगा?...दोगे तो ब्राह्मण संतान को ही, किसी मुसलमान-ईसाई से तो ब्याह नहीं दोगे बिटिया को!" पण्डित जी फिर बोले।

"क्या बताऊं ताऊ जी," राधेश्याम ने आखिर साहस संचित किया। "पंडित जी तो अब किसी तरह राजी हो गए हैं उसका ब्याह कर देने को, और मेरे ऊपर सारी जिम्मेदारी भी..."

"तेरे ऊपर जिम्मेदारी दे दी है?...इसका क्या मतलब?" पण्डित गौरीदत्त ने बीच ही में बात काटी।

और राधेश्याम ने जितना कुछ बताया जा सकता था बताया कि किस तरह उनके पिता जमुना का ब्याह करना ही नहीं चाहते थे और किस तरह राधेश्याम को जमुना के विवाह की जिम्मेदारी दी गई थी।

"दिमाग फिरता ही जा रहा है तेरे बाप का तो," पंडित गौरीदत्त ने दांत पीसते हुए कहा, "ऐसा कोई नहीं देखा जो अपने बच्चों के भी

भविष्य का ख्याल न करे...'' और उस प्रतिज्ञापत्र की बात पर तो वे अट्टहास ही कर उठे, "वाह भई, वाह, खूब जिम्मेदारी दी गई !" पर लालटेन की तेज रोशनी में, जो ठीक राधेश्याम के ही चेहरे पर पड़ रही थी, उनका झेंपा और उतरा हुआ मुंह देख कर सहसा वे बीच ही में रुक गए और सहानुभूति और करुणा से उनका हृदय भर-सा आया।

पंडित गौरीदत्त स्वाभिमान में भले ही पंडित भगवतीचरण से कम न रहे हों पर कृतघ्न वे नहीं थे। उनका हृदय पंडित भगवतीचरण की मां के ममत्वपूर्ण अहसानों से दबा हुआ था। पंडित भगवतीचरण से भले ही उनका मनोमालिन्य हो गया हो, पर उनके बच्चों को वे अपने ही परिवार के तुल्य समझते थे। और इसीलिये जब राधेश्याम से उन्होंने उसके प्रयत्नों और उसकी निराशा का किस्सा सुना तो सहसा एक बार फिर जमुना को अपने बेटे की बहू बना लेने की उनकी इच्छा जाग्रत हो गई। इतनी बड़ी लड़की को बहू बना कर अपने घर लाने के विरुद्ध उनका जो विचार था वह शेखर के विधुर होने के कारण इस बार काफी कम हो गया; बारह-तेरह बरस से अधिक उम्र की लड़की अपनी बिरादरी में उन्हें अपने विधुर पुत्र के लिये भी नहीं मिल सकती थी, और उतनी छोटी उम्र की लड़की को लेकर एक युवक विधुर पर जो बीतती है उसका उन्हें पता था; वह स्वयं भी तैंतीस साल की अवस्था में विपत्नीक हो गए थे और बारह साल की एक कन्या से उनका दूसरा विवाह हुआ था। इसके अलावा, अपनी मातृ-तुल्या, पंडित भगवतीचरण की मां की एकमात्र पौत्री को उबारने का एकमात्र उपाय जब उन्हींके पास था तब वह उससे विमुख नहीं हो सकते थे। काशी के वह प्रसिद्ध पंडित थे; इतनी बड़ी कन्या को अपनी बहू बनाने-जैसा अनाचार करके भी सिर ऊँचा किये समाज में खड़े रहने की क्षमता उनमें थी। फिर, काशी में उनका अपना समाज था भी नहीं। गौड़ ब्राह्मण पश्चिम में ही अधिक थे, और बुलन्दशहर जिले के गौड़ ब्राह्मण समाज पर काशी के पंडित गौरीदत्त की ही धाक थी, उन्हीं का प्रमाण वहां सर्वमान्य था।

और राधेश्याम के आगे उस दिन पहलेपहल उन्होंने पिता-पिता के बीच हुए उस मनोमालिन्य का रहस्य खोला—"जमुना का ब्याह तो शेखर से ही होने वाला था। ...तेरे पिता का ही यह प्रस्ताव हुआ था। ...पर मैं शेखर के ब्याह की जल्दी में था, और तेरे पिता जमुना को कब तक क्वांरी बिठाए रक्खेंगे यह कुछ बताते ही नहीं थे। इसी पर तो हम लोगों में पहलेपहल झगड़ा हुआ और शेखर का दूसरी जगह ब्याह हो गया। ...तुम्हें जमुना के लिये कोई लड़का न मिले और रंडुए शेखर से उसे ब्याहने में कोई आपत्ति न हो तो मुझे आपत्ति नहीं।"

राधेश्याम को खुशी के मारे उस रात नींद नहीं आई; जमुना के विवाह की समस्या सुलझने और शेखर को अपने बहनोई के रूप में पाने के उल्लास ने उनकी आंखें सारी रात नहीं झपने दीं।

और जब काशी से लौटते समय वह शेखर से मिलने के लिये इलाहाबाद होते गए जहां वह अब एम० ए० के अन्तिम वर्ष में था, तब शेखर के आगे भी उन्होंने इस रहस्य का उद्घाटन करके जानना चाहा कि उसे भी उससे इतना ही आनन्द होगा या नहीं।

शेखर को सचमुच आनन्द हुआ। साल, सवा साल पहले की स्मृतियां उसके आगे नाच उठीं जब वह पन्द्रह-बीस दिन के लिये राधेश्याम के घर बिजनौर रहा था। पन्द्रह बरस की किशोरी जमुना का रंग उन चित्रों में सबसे ज्यादा गहरा था।

राधेश्याम बिजनौर लौटे, और पिता के आगे उन्होंने यह प्रस्ताव रख दिया। पिता ने कोई आपत्ति नहीं की, और दोनों ओर से लिखा-पढ़ी होकर अगली गरमियों में शेखर-जमुना के ब्याह की बात पक्की हो गई। तब तक शेखर की पहली स्त्री को मरे एक साल बीत चुका रहेगा।

और जमुना के आगे भी साल, सवा साल पहले की वह स्मृतियां नाच उठीं जब शेखर पन्द्रह-बीस दिन के लिये उनके घर आकर रहा था। उसके कुछ ही महीने पहले जमुना अपने एक भाई को खो चुकी थी और उसके बाद ही अपनी प्यारी दादी को, और उन दोनों को इतनी जल्दी-

जल्दी खोकर अपने एकमात्र अवलंब अपने पिता को भी सहसा उसने अपने से बहुत दूर पाया था। अनन्त आश्वासन के रूप में उसके बड़े भैया अपनी वकालत पास करके उसी समय आए थे, पर जमुना के सुन्न-से पड़-गए हृदय में उनका प्रत्याशित और स्वाभाविक आगमन कोई विशेष हलचल नहीं पैदा कर पाया था। एक हलकी सी हलचल पैदा की थी तब उन भेंपू-से शेखर भैया ने ही, जिन्हें बचपन बीतने पर बरसों बाद पहलेपहल उसने तभी देखा था, और ऐसे समय देखा था जब कि उसकी आँखों में एक नई दृष्टि आई थी।

अधिकतर कुतूहल-भरी दृष्टि से, अलस भाव से, उन दिनों देखे गए शेखर के कुछ चित्र जमुना की स्मृति में अब भी थे, जब कि उस काल के और कोई चित्र उसकी स्मृति में थे ही नहीं। जमुना को शेखर भैया अच्छे लगे थे, और जाते समय उन्होंने जब उसे भी हाथ जोड़कर राम-राम की थी, तब जमुना की आंखों में आंसू भर आए थे, जिन्हें उसने बड़ी जल्दी चुपके से पोंछ डाला था, कि कोई देख न ले।

और इसलिये शेखर से ब्याह होने की बात सुन कर सबसे ज्यादा आनन्द जमुना को ही हुआ। अनन्त यातनाओं की खान, रहस्यमय ससुराल का जो अंधकारपूर्ण और विकराल चित्र उसके सामने था, वह एकदम गायब हो गया। उन्हीं जाने-पहचाने भेंपू शेखर से उसका ब्याह होगा, जिनके हँसते वक्त दोनों गालों में गोल-गोल गड्ढे पड़ जाते थे, और जिनकी मुसकराहट देख कर जमुना का दिल खिल-सा उठता था!

पर यह विवाह फिर नहीं हो सका।

छठा परिच्छेद

[१]

कई बरस से पंडित जी ने कोई लम्बी छुट्टी नहीं ली थी, और वद्धन की मृत्यु के बाद ही वह कुछ महीनों की छुट्टी लेकर कहीं जाना चाहते थे। पर किसी न किसी कारण वश उनकी छुट्टी टलती आई, और अब जाकर उन्हें छः महीने की छुट्टी मिल सकी।

इस बार पंडित जी ने इलाहाबाद में अपनी छुट्टियां बिताना तय किया। अपने पुश्तैनी जिले से पंडित जी को जो नफरत-सी थी उससे यह साफ था कि नौकरी से 'रिटायर' होने के बाद वे अपने बुढ़ापे के दिन वहां किसी तरह से नहीं काट सकेंगे। बरसों से उनके सामने एक नया स्थान चुनने की समस्या थी, जहाँ वह नए सिरे से बस जा सकें। अब तक प्रयाग उन्हें सबसे अधिक आकर्षक मालूम हो रहा था, जहां गंगा-यमुना के संगम ने पंडित जी को मोह लिया था। यह छुट्टियां पंडित जी ने वहीं बिताने का निश्चय किया; सदा के लिये बसने से पहले वहां रहने का प्रयोग हो जायगा।

और एक छोटा सा खूबसूरत सा बंगला लेकर पंडित जी इन छुट्टियो में इलाहाबाद जा बसे—मय अपने घोड़े-घोड़ियों, गाय-भैंसों, और गाड़ी-साईसों के। गंगा जी का तट उस स्थान से कोई दो मील दूर था, जहां छुट्टी भर के लिये एक नाव उन्होंने किराए लेकर बंधवा रखी थी। प्रायः रोज सबेरे घोड़ो और गाड़ियों पर सवारी की जाती और तैरने का अभ्यास, और शाम को नाव पर संगम की यात्रा। राधे और जमुना तैरने में निपुण थे; सरला को अब पडित जी ने सिखाना शुरू कर दिया।

यह सिलसिला बैठ जाने के बाद भी कई दिन बीत गए और पंडित

जी के सपरिवार इलाहाबाद आए तो दो हफ्ते से ऊपर, पर शेखर उनके घर नहीं आया। केवल राधे जाकर होस्टल में उससे मिल आता था। पंडित जी ने कई बार उसे बुलवाया भी, पर वह अब शर्माने लगा था, कोई न कोई बहाना करके टाल जाता।

एक दिन पंडित जी स्वय उसके होस्टल में जा पहुँचे, बिना उसे सूचना दिये। शाम का वक्त था, सारा घर होस्टल के बाहर गाड़ी पर सवार था। पंडित जी घोड़े पर थे।

कोई आधे घंटे शेखर की तलाश हुई तब जाकर वह एक दोस्त के कमरे में मिला। राधे उसे खींच-खाँच कर बाहर लाया। और पंडित जी ने उसकी भर्त्सना करके उसे भी साथ आने का हुक्म दिया। शेखर भारी असमंजस में पड़ गया। पर उसकी एक न चली, और उस एक ही गाड़ी में, जिसमें सरला भी थी और जमुना भी, और राधे भी और राधे की बहू भी, उसे भी ठूंस-ठांस कर बिठा दिया गया, और लज्जा से लाल होकर सिर नीचा किये हुए वह सारे रास्ते गुमसुम बैठा रहा। और उसकी लज्जा की लाली जमुना के गालों तक फैल गई, और वह भी उस दिन अन्त तक सिर नीचा किये चुप ही बैठी रही।

तब से कई बार ऐसा हुआ। पंडित जी का आग्रह था कि शाम के वक्त उसे छुट्टी मनानी चाहिये और उस मण्डली का साथ देना चाहिये। शेखर तरह तरह के बहानों से अक्सर टाल जाता था, पर कभी कभी उसे फँस जाना पड़ता था—कुछ अनिच्छा के साथ, कुछ इच्छापूर्वक।

अपनी व्यक्तिगत सुविधा-असुविधा का जहाँ कोई सवाल नहीं रहता था वहाँ पंडित जी के व्यवहार में अपने-पराए का भेद कम ही दिखाई देता था; खास तौर से अपने और दूसरों के बच्चों के प्रति तो उनका व्यवहार बहुत-कुछ एक-जैसा ही होता था, तटस्थता के साथ-साथ अपने अधिकार का दावा लिये हुए—रूखा और कठोर होते हुए भी एक विशिष्ट अपनेपन का भाव। फिर, शेखर की पढ़ाई पर तो पंडित जी ने अपना पैसा भी खर्च किया था, और अब तो वह उनका भावी जमाई ही था।

एक बात और भी थी। डिप्टी-कलक्टरी की उम्मीदवारी से पहले इंजीनियरी पास करने की ओर उनका विशेष आकर्षण था। पर कई कारणों से मन की वह इच्छा पूरी नहीं हो पाई थी। फिर उन्होंने अपने बेटों में सबसे ज्यादा तेज और अपने आकर्षण के केन्द्र वद्धन के लिये यह इच्छा संजो कर रखी थी—उसे वे इंजीनियरी पढ़ाएँगे। और उसके मरने के बाद उन्होंने एक शेखर को ही पाया था जिसे अपनी इस विरासत के लायक समझ सकें। शेखर के पिता गौरीदत्त नहीं जानते थे कि उनकी इतनी बड़ी कामना को चूर-चूर करके उन्होंने पंडित जी को किस हद तक आहत किया था।

इस बार जब विधुर शेखर को फिर उन्होंने अपने भावी जमाई के रूप में पाया तब उनका यह क्षोभ प्रकाश पाए बिना न रहा, और सांध्य-विहार की इन यात्राओं पर, खास तौर से नौका-यात्राओं पर, जब कभी शेखर की उपस्थिति में उस क्षोभ-प्रकाश का कोई अवसर आ जाता तो पंडित जी उससे कभी न चूकते और शेखर के पिता पर कटाक्षपूर्ण व्यंग किये बिना और उनका मजाक उड़ाए बिना न रहते।

शेखर को स्वभावतः इससे बुरा लगता, खास तौर से अपने पिता के लिये पंडित जी का सदा की भाँति गौरी-गौरी ही कहना। शेखर के पिता पंडित जी से उम्र में भी बड़े थे, और अब नए संबन्ध की दृष्टि से वे पंडित जी के समधी भी थे, उनके भावी जमाई के पिता। शेखर को अपने पिता का यह असम्मान अब और भी खलने लगा था।

पर एक दिन बात इतनी बढ़ गई कि शेखर के लिये अधिक सहन करना असंभव हो गया।

बात यों हुई। सरला ने एक दिन पंडित जी से अपनी जिठानी के बारे में कोई बात कही जो शिकायत के रूप में न कही जाकर भी शिकायत बन गई। पंडित जी ने राधे को फटकारा, और राधे ने अपनी बहू को। राधे की बहू रोई और अपने भाग्य को ऐसे शब्दों में कोसने लगी जिनका प्रत्यक्ष तो नहीं पर अप्रत्यक्ष रूप से यह मतलब था कि निखट्टू खसम

की औरत को सबकी जूतियाँ खानी पड़ती हैं—ससुर की ही नहीं, विधवा देवरानी की भी। इस पर राधे को गुस्सा आ गया और उसने अपनी बहू के गाल पर एक तमाचा कस दिया।

दो दिन तक पति-पत्नी की बोलचाल बन्द रही, और उसके बाद राधे को गहरी आत्मग्लानि हुई, जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। उसने एक ही रात में निश्चय कर डाला कि वह पिता से अलग जाकर वकालत शुरू करके ही रहेगा, और अगर वकालत जमने के लिये पिता ने मदद न दी तो किसी स्कूल की मास्टरी करके पेट भरेगा, पर अपनी बहू पर विधवा देवरानी का यह अत्याचार नहीं होने देगा।

और दूसरे दिन सबेरे ही, जितने दृढ़तापूर्ण स्वर में और जितने स्पष्ट शब्दों में संभव था, उसने पंडित जी के आगे अपना यह इरादा प्रकट कर दिया।

पर राधेश्याम को आश्चर्य हुआ जब उसका यह निश्चय सुन कर तुरंत ही उस पर पंडित जी के क्रोध का पहाड़ नहीं टूट पड़ा और उसके निश्चय को पंडित जी ने इस तरह आसानी से स्वीकार कर लिया मानो यह उन्हींका निश्चय था।

"कहाँ शुरू करना चाहता है वकालत?" शान्त, गंभीर स्वर में पंडित जी ने उसका निश्चय सुन कर पूछा।

"जी, यह अभी ठीक-ठीक तय नहीं कर पाया हूँ। दो-एक दिन में तय..."

"दो-एक दिन में क्या तय करना है?" पंडित जी ने हँस कर कहा, "तू तो इलाहाबाद के ही लिये कह रहा था न, कब से? अब क्या हो गया?"

राधेश्याम की पहले जरूर इच्छा थी कि वह इलाहाबाद में वकालत शुरू करे। कॉलेज-जीवन के कई बरस इस शहर में बिता कर उसे इसके साथ वह लगाव हो गया था जो और किसी शहर से नहीं था; साथ ही हाईकोर्ट होने के कारण ज्यादा से ज्यादा बढ़ने की गुंजाइश भी वहीं

थी। पर जबसे उसे पंडित जी की 'रिटायर' होने के बाद वहीं बसने की इच्छा मालूम हुई थी तब से उसका सारा उत्साह फीका पड़ गया था।

वह पसोपेश में पड़ा चुप खड़ा रहा।

"सोचना और क्या है? कुछ महीने हम सभी यहाँ हैं, अभी से शुरू कर दे वकालत। इस बीच यह भी मालूम हो जायगा कि यहाँ वकालत कैसी जमती है और हमारे जाने के बाद कितनी आमदनी हो जायगी।"

राधे अभी सोच ही रहा था कि वह क्या करे और क्या कहे कि पंडित जी फिर बोले—"और जमना के ब्याह में क्या खर्च करना है इसका हिसाब करके बता। ...दहेज-वहेज मैं कुछ भी नहीं दूँगा। गौरी को अपने बेटे के लिये अगर दहेज चाहिये तो मेरी लड़की उसे नहीं मिलेगी। ...पहले से पूछ कर ठीक कर, कि वह क्या चाहता है।"

यह एक नई समस्या थी। राधे ने यह सोचा भी नहीं था कि शेखर के साथ ब्याह होने पर यह प्रश्न भी उठ सकता है। पर जब यह प्रश्न एक बार उसके सामने रखा गया तब वह स्वयं घबड़ा गया—सचमुच कहीं ताऊजी दहेज माँगे तो? पुरानी प्रथाओं के प्रति शेखर के पिता का जो आकर्षण था वह उसे मालूम था।

"यह सब बिलकुल साफ कर लेना चाहिये ... पहले से ही," पंडित जी ने उसे विचार में पड़े देख, गंभीर कठोर स्वर में कहा, "अगर दहेज कुछ दिया जाना है तो मैं एक पैसा नहीं दूँगा; तुझे देना है तो वकालत करके कमा और दे।" पंडित जी अब जाकर गरम हुए।

राधे जब पंडित जी के कमरे से लौटा तब एक नई ही समस्या लेकर; अपने बारे में जो तय करने वह गया था वह भूल-सा गया।

यह प्रश्न सचमुच राधे के लिये विकट था। शेखर के पिता को अपनी ओर से वह दहेज की बात लिखे यह उसे उचित भी नहीं लगता था और संकोच भी होता था।

पर पंडित जी ने एक बार जब यह प्रश्न उठाया था तब बीच में ही

इसे छोड़ने वाले वह नहीं थे। दो-तीन दिन बाद उन्होंने राधे से पूछा—"गौरी को लिखा, दहेज के बारे में? और ब्याह का तखमीना बनाया?"

"जी, आपका ही लिखना ज्यादा..." राधे ने हिम्मत करके कहा।

"खूब! मैं लिखूँ?" पंडित जी ने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा, "ब्याह की जिम्मेदारी तू लेगा, ब्याह तू ठीक करेगा, और यह सब मैं पूछूँगा? फिर तू क्या करेगा?"

"तो शेखर से ही पूछ," आखिर पंडित जी ने ही दूसरा उपाय सुझाया।

"जी अच्छा।" राधे ने टालने के लिये कहा।

पर बात टली नहीं। एक रोज शाम के वक्त नाव पर पंडित जी ने शेखर और जमुना सबके सामने यह प्रश्न उठा दिया।

"क्यों, शेखर से पूछा दहेज के बारे में?" पंडित जी ने राधे की ओर ताकते हुए कहा।

"जी, अभी नहीं पूछा," राधे ने घबड़ा कर कहा। जमुना और शेखर की उपस्थिति में इस तरह पंडित जी यह बात छेड़ देंगे, यह उसने नहीं सोचा था।

पर जब बात छिड़ गई तब अन्त तक जाकर ही रुकी। "गौरी पंडित क्या दहेज चाहता है तेरे ब्याह में?" इस बार शेखर से पूछा गया।

और शेखर का चेहरा लज्जा, क्षोभ और क्रोध से रंग गया।

"मुझे नहीं मालूम," जीवन में पहली बार उसने रुखाई के साथ पंडित जी को जवाब दे डाला। 'जी' का सम्बोधन भी, जो पंडित जी को अपने लिये हर वाक्य के शुरू में पसन्द था, इस बार गायब था।

"तो पूछ कर बता।" पंडित जी ने भी गरम होकर कहा।

"जी, मैं ये बातें नहीं पूछ सकता।" शेखर ने भी दृढ़तापूर्वक, कुछ गरम होकर कहा।

पर शेखर इतना उत्तेजित हो गया था कि उसी रोज होस्टल लौट

कर उसने अपने पिता को उस दिन की घटना लिख दी।

कुछ ही दिन बाद पंडित जी को पंडित गौरीदत्त की चिट्ठी मिली, जबसे उनमें मनोमालिन्य हुआ था उसके बाद की पहली चिट्ठी। "मुझे नहीं मालूम था कि तेरा दर्प इतना बढ़ गया है," उन्होंने लिखा था। "दहेज को मैं बुरा नहीं समझता, पर तुझसे मैं दहेज लूंगा, ऐसा नीच भी मैं नहीं हूँ। मुझे दहेज लेना होता तो पहले यह प्रश्न मैं स्वयं उठाता। तुझे लज्जा नहीं आई यह प्रश्न बाल-बच्चों के सामने उठाते? तेरे काले मन में यह प्रश्न उठा ही था तो स्वयं मुझे लिखा होता! राधे, जमुना, शेखर, सबके सामने ऐसी बातें करते, और मुझे अपशब्द कहते तेरी जीभ जड़ नहीं हो गई?

"तेरा बहुत धन मैंने लिया है। पाप किया है। नहीं जानता था कि तू इतना नीच है, नहीं तो एक पैसा भी तेरा न छूता। करुणामयी मां ने मेरे लिये जो कुछ किया वह भूल नहीं सकता, पर तेरी ही कमाई का धन उसने मुझे दिया था। उसका कुल हिसाब मैंने रखा है, और उसका दस्तावेज इस चिट्ठी के साथ भेज रहा हूँ। मेरा बेटा कमा कर सूद-समेत यह धन तुझे या तेरे वारिसों को चुकाने के पहले ही अगर इस संसार से चला गया और मेरा ऋण चुकाने वाला कोई पौत्र मुझे न मिला तो न मुझे परलोक में सद्गति मिले, न मेरे बाल-बच्चों को।

"जमुना मेरी ही बेटी के तुल्य है। शरीर पर लज्जा ढँकने के लिये अनिवार्य वस्त्रों को पहने ही यदि वह मेरी पुत्रवधू बन कर मेरे घर आएगी तभी मैं शेखर का उससे ब्याह करूँगा। यह मेरा अन्तिम निश्चय है।"

पंडित जी के लिये इस कठोर पत्र की एक-एक पंक्ति, एक-एक शब्द को पचाना विष पचाने की भाँति था। वे इसे हजम नहीं कर सके। और उन्होंने इससे भी कठोर पत्र में अपना भी 'अन्तिम निश्चय' लिख दिया कि शेखर के साथ जमुना का विवाह असंभव है।

और पीछे राधे को भी पछताना पड़ा कि अपनी बहू पर नाराज

होकर किस अशुभ मुहूर्त में वह पंडित जी के पास अपना अलग घर बसाने का इरादा लेकर गया था; और शेखर को भी, कि क्यों क्षणिक उत्तेजना-वश उसने झक्की पंडित जी की अनापशनाप बातों को अपने पिता तक पहुँचाया। दोनों का यह पछतावा जन्म भर रहा—जमुना के परवर्त्ती जीवन के कारण।

पर इस घटना ने जमुना के विवाह के लिये पंडित जी के मन में एक आग्रह पैदा कर दिया; जहाँ पहले वह उसकी ओर से उदासीन थे, वहाँ अब व्यग्र हो उठे।

पंडित जी की प्रकृति की एक विशेषता यह थी कि कर्त्तव्य की भावना उनके कार्यों को बहुत कम अंश में निर्धारित कर पाती थी; मुख्यतः अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं के वशीभूत होकर ही वह कोई कार्य करने का उत्साह पाते थे। और उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं में एक थी उनके अधिकार-क्षेत्र, उनकी शासन-परिधि, का उत्तरोत्तर विस्तार। वे अपने परिवार, अपने नौकर-चाकरों, अपने मातहतों, और हो सके तो अपने अनुयायियों, की संख्या में निरन्तर वृद्धि चाहते थे। यही कारण था कि बेटों को ब्याह कर घर में बहुओं की संख्या बढ़ाना जितना उन्हें प्रिय था उतना बेटी को ब्याह कर किसी दूसरे के घर की श्री-वृद्धि करना नहीं। फिर, जमुना पर तो उन्होंने विशेष रूप से शासन किया था, विशेष रूप से उसे अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं के अनुकूल चलाया और झुकाया था, विशेष रूप से उसे अपनी जीवन-यात्रा का एक अंग बनाया था।

जब सरला ने आकर जमुना को उसके स्थान से पदच्युत कर दिया तब अवश्य कुछ समय तक पंडित जी जमुना के निरंतर निकट रहते भी उसके अस्तित्व को, उसके ब्याह की समस्या को, भूल ही से गए थे। पर अब उनके अहंकार पर आघात हुआ था, उनके दर्प को चुनौती दी गई थी। जमुना को ब्याहे बिना अब उन्हें चैन नहीं मिल सकता था। गौरी पंडित को दिखा देना होगा कि जमुना उसकी भिक्षा पर अवलम्बित

नहीं है, पंडित भगवतीचरण उसकी कृपा के भूखे नहीं हैं।

राधेश्याम ने जमुना के ब्याह की जिम्मेदारी लेने पर वर की खोज में जो निराशा पाई थी, उस पर तब पंडित जी को विश्वास नहीं हुआ था। पंडित भगवतीचरण की कन्या से विवाह करने के लिये कोई प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल तैयार नहीं है, यह वह स्वीकार ही नहीं कर सकते थे। पर अब जब स्वयं उन्होंने कोशिश की तब उन्हें इसकी सचाई पर विश्वास हुआ। जितने मित्रों-परिचितों को उन्होंने पत्र लिखे उनमें से किसी ने भी कोई विशेष आशाजनक उत्तर उन्हें नहीं दिया।

पंडित जी क्षुब्ध हो उठे। कई रात उन्हें अच्छी नींद नहीं आई। और एक दिन उन्होंने निश्चय कर डाला कि वे किसी अनाथालय के लड़के से जमुना का विवाह कर देंगे—और उस लड़के को रुड़की भेज कर इंजीनियर बनाएंगे। 'प्रतिष्ठित' ब्राह्मणों को पंडित जी ने प्रतिष्ठित मानने से इनकार कर दिया, और उनकी अवहेलना करना अपना धर्म माना।

पर इसकी नौबत नहीं आई। किसी अनाथालय के लड़के से नहीं, एक 'प्रतिष्ठित' ब्राह्मण-कुल के लड़के से ही जमुना का विवाह हुआ।

[२]

ज्वालादत्त के पूर्वज मेरठ जिले के प्रतिष्ठित और समृद्ध ब्राह्मण थे। उनके पांडित्य की धाक दूर-दूर तक थी। ज्वालादत्त के पिता ने भी अपनी वंश-परंपरा को काफी दूर तक कायम रखा। पर बेचारे ज्वालादत्त को न अपने पिता-माता का स्नेह ही याद था, और न अपने घर की प्रतिष्ठा और समृद्धि ही। वह पांच-छः साल का ही था जबकि उसके तथा आसपास के गांवों में भयंकर प्लेग फैला था, और गांव के गांव उसमें स्वाहा हो गए थे। ज्वालादत्त के गांव में महामारी का प्रकोप प्रबलतम था, और पन्द्रह दिन के भीतर ही उसे छोड़ उसके घर में एक

भी प्राणी नहीं बचा। पाँच-छः साल की उम्र में ही वह अनाथ हो गया।

जब प्लेग चला गया तब गांव में बहुत थोड़े आदमी बच रहे थे, और उनमें से एक ऐसा भी था जिस पर ज्वालादत्त के पिता-पितामह के काफी अहसान थे। पर उसकी जीविका का सहारा थी पुरोहिती, और उस गांव क्या, दूर-दूर तक के गांवों में उसके यजमानों की संख्या बहुत ही कम हो गई थी। ज्वालादत्त को उसने पाल तो लिया, पर उसके कुल के अनुकूल शिक्षा-दीक्षा वह उसे नहीं दे सकता था।

किन्तु बालक प्रतिभाशाली था, और उस प्लेग में अनाथ-हुए बच्चों को शिक्षा देने के लिये कई धनियों ने उन दिनों जो वजीफे दे रखे थे, उनमें से एक ज्वालादत्त को भी मिल गया और धीरे-धीरे उसने मिडिल पास कर लिया। पर मिडिल पास करने के बाद उसके गांव के उस संरक्षक को भी कई कारणों से उसे अपने घर में स्थान न देने के लिये विवश हो जाना पड़ा, और चौदह साल की उम्र में वह बिलकुल अनाथ, असहाय, अकेला पचास मील के करीब पैदल चल कर दिल्ली जा पहुँचा।

उन दिनों दिल्ली में लाला रामसुखलाल अग्रवाल एक उदार कहे जाने वाले व्यापारी थे, जो गरीब लड़कों को बराबर सहायता देते रहते थे। वस्तुतः वे दो-चार ऐसे ट्रस्टों के ट्रस्टी भी थे जो गरीब लड़कों को पढ़ने-लिखने के लिये वजीफा देते थे। ज्वालादत्त ने उनका नाम सुना और सीधा उनके पास चला गया।

लाला रामसुखलाल ने अपने छोटे-छोटे बच्चों को पढ़वा कर ज्वालादत्त की परीक्षा ली, और उसे प्रतिभावान भी पाया और काम का भी। तबसे ज्वालादत्त की अंग्रेजी शिक्षा और उसके भरण-पोषण का भार लाला जी, या दूसरे शब्दों में, उनके अधीन किसी ट्रस्ट के धन ने ले लिया, और उनके बच्चों को पढ़ाने-लिखाने का भार ज्वालादत्त ने। लाला जी की विशाल कोठी के अहाते में एक किनारे बने नौकरों के 'क्वार्टरों' में एक कोठरी उसके सुपुर्द कर दी गई, जहाँ वह स्वयं अपना भोजन

बनाता था, दिन-भर स्कूल में पढ़ता था, और सबेरे-शाम दो-दो घंटे लाला जी के बच्चों के साथ मगज मारता था।

फिर भी अठारह साल की उम्र में उसने एण्ट्रेंस पास कर लिया, और कॉलेज में उसका दाखिला करा दिया गया।

जैसे-जैसे ज्वालादत्त की ज्ञान-वृद्धि होती गई, वैसे ही वैसे लाला जी के घर में उसकी सम्मान-वृद्धि। एण्ट्रेंस पास करके कॉलेज में उसके भरती होते ही नौकरों के 'क्वार्टर' वाली उसकी कोठरी पीछे छूट गई, और वह कोठी की ही इमारत के पिछले हिस्से के एक अपेक्षाकृत छोटे और पुराने कमरे में रहने लगा, जिसके सामने वाले बरामदे के दूसरी ओर एक वैसा ही कमरा और था, जिसमें बड़े मुनीम जी का साला रहता था, जो स्कूल के नवें दरजे में पढ़ता था। खाना भी अब उसे स्वयं नहीं पकाना पड़ता था; लाला जी के ही घर के वृहद रसोईघर में उसका भी खाना बनता था, और रसोईघर से लगे जिस दालान में लाला जी के तीसरी श्रेणी के आश्रित भोजन करते थे, वहीं बैठ कर भोजन करने का सम्मान उसे भी मिल गया। कभी-कभी लाला जी के लड़कों के साथ बैठ कर पकवान खाने का सुयोग भी उसे मिलने लगा।

पर यह सब सम्मान ज्वालादत्त के लिये अपर्याप्त-सा रह जाता था। इससे तो उसे और भी तकलीफ होती थी और इसके आगे नौकरों के 'क्वार्टर' वाली वही एकान्त कोठरी और अपने हाथ से खाना पकाना उसे ज्यादा मंजूर था। एक बार लाला जी पर कृतज्ञता-ज्ञापन के साथ-साथ उसने किसी तरह यह प्रकट भी किया, अपने इस सम्मान को अस्वीकार करना चाहा, पर लाला जी ने हँस कर उड़ा दिया। बोले—"तुझे मैंने अपने बेटे की तरह रखा है, पढ़ाया-लिखाया है, तुझे भला वह कोठरी सोहती है? और खुद खाना पकाने का वक्त अब तुझे कहाँ मिल सकता है? अब तू कॉलेज में पढ़ रहा है, मेहनत करनी पड़ती है।" और ज्वालादत्त सचमुच लाला जी के एहसानों से इस तरह दबा हुआ था कि और कुछ कहने का उसका साहस नहीं पड़ा।

कॉलेज में आते-आते ज्वालादत्त जितना स्वाभिमानी बन चला था उतनी ही उसकी महत्वाकांक्षाएँ भी बढ़ चली थीं। लाला जी के घर का वातावरण जिस तरह उसके स्वाभिमान पर निरन्तर चोट करता रहता था, उसी तरह लाला जी द्वारा उसके भविष्य का सीमा-बन्धन। लाला जी ने यह तय किया था कि एफ० ए० कर लेने पर ज्वालादत्त को वह अपने व्यवसाय में ले लेंगे और धीरे-धीरे उसे मैनेजर की जगह तक मेहनत करके बढ़ना होगा। "क्यों बाहर के मैनेजर को इतनी तनखाह भी दूँ, और उसकी बेईमानी के डर से परेशान भी रहूँ, जबकि घर का ही लड़का पढ़-लिख कर होशियार हो जाय और वह काम सँभाल सके।' इस पर भी ज्वालादत्त चुप रह गया था; सचमुच ही वह लाला जी का इतना अहसानमन्द था कि उन्हें निराश करने की बात जबान पर नहीं ला सकता था।

पर सच पूछो तो अहसान-फरामोश कहला कर भी लाला जी का आश्रय छोड़ और पढ़ना-लिखना भूल कहीं भाग जाने की बात कितनी ही बार ज्वालादत्त के मन में आई थी और कितनी ही बार उसके पांव भाग जाने के लिये उठ-उठ गए थे। पर इतना साहस वह कभी भी नहीं बटोर सका और उसकी उमंगें उछल-उछल कर दिल ही में टूट-टूट जातीं, पाँव उठ-उठ कर ही रह जाते।

[३]

एक दिन ज्वालादत्त को लाला जी ने एकान्त में बुला कर कहा—"अब तुम बड़े हुए बेटा, इसी साल एफ० ए० भी पास कर लोगे। तुम्हारा ब्याह अब कर देना चाहता हूँ।" और रहस्य-भरी दृष्टि से उन्होंने ज्वालादत्त की ओर देखा।

ज्वालादत्त बिलकुल ही घबड़ा गया; एक प्रश्न-भरी, घबड़ाहट-भरी दृष्टि से उसने लाला जी की दृष्टि का जवाब दिया।

"चाहो, यहीं कोठी में कुछ हिस्सा दे दूंगा, अपनी गृहस्थी जमा लेना। चाहो, शहर में एक मकान दिला दूंगा, जितना खर्च जरूरी समझना ले लिया करना। एफ० ए० अब हो ही जाओगे; फिर तो काम में लगना है, और तब घर-गृहस्थी, बाल-बच्चों के बिना थोड़े ही रहना होगा।" लाला जी अर्थपूर्ण दृष्टि से मुसकराए, जिसका अर्थ समझने लायक बुद्धि और अनुभव ज्वालादत्त को हो चुका था। लाला जी की परमार्थ-भावना जब-जब कहीं भी व्यक्त होती थी, वह उसके पीछे छिपी उनकी कोई स्वार्थ-भावना ढूँढ़ने लग जाता था। उस दिन भी ढूँढ़ने लग गया। पर बोला वह फिर भी कुछ नहीं; शायद लाला जी अभी और कुछ स्पष्ट करें।

लाला जी अधिक देर चुप नहीं रहे। फिर बोले—"पंडित भगवती-चरण पहले बिजनौर में डिप्टी-कलक्टर थे," और एक चिट्ठी लाला जी ने सामने की मेज पर से उठा ली और उसे खोलते हुए कहना जारी रखा, "तभी मेरी-उनकी जान-पहचान हुई थी। बड़े भले आदमी हैं, गौड़-ब्राह्मण—तुम्हारी ही बिरादरी के। इस वक्त बेचारे बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। एक ही लड़की है उनकी—देखने-सुनने में सब तरह से अच्छी। पर पंडित जी कुछ बातों में जरा नई रोशनी के आदमी हैं—उसका ब्याह अभी तक नहीं किया। सोचा, जल्दी क्या है। पर लड़की हो गई अब सत्रह की। भला अब कोई भला लड़का कहां मिले ब्राह्मणों में?" पंडित भगवतीचरण की प्रशंसा हो रही है या बुराई, यह ज्वालादत्त अभी तक नहीं समझ सका। सहसा लाला जी का स्वर फिर ऊँचे से नीचा हो गया—"मालूम होता है बहुत दुःख में पंडित जी ने मुझे यह चिट्ठी लिखी है। लिखते हैं"—और लाला जी ने उस चिट्ठी के बीच में से पढ़ना शुरू किया—"मुझे बिरादरी से घृणा हो गई है; बिरादरी से बाहर ही अब मैं लड़की का ब्याह करूँगा। बल्कि किसी अनाथ लड़के से, जो अपने बाप-दादे के बल पर नहीं अपने बल पर मेरी लड़की को ब्याहे। आपके अनाथालय में से जो-जो लड़के तालीम पाकर निकल चुके हैं

उनमें से कौन-कौन क्या कर रहा है और कौन-कौन क्वांरा है, जरा पता लगाने की कृपा कीजिये। मैं अपनी लड़की का स्वयंवर करूँगा, जिसमें जगह-जगह के अनाथालयों से निकले हुए लड़कों को बुलाऊँगा। मैं बाप-दादों की प्रतिष्ठा पर नहीं, लड़के की योग्यता पर लड़की दूँगा।.....''

ज्वालादत्त इस तरह रम गया इन शब्दों में, कि कब लाला जी चिट्ठी का इतना अंश पढ़ कर रुक गए और कुतूहलपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे, यह उसे पता नहीं चला।

''पर लाचारी में ही यह सब कह डाला है उन्होंने,'' लाला जी फिर बोले। ''तेरा-सा योग्य लड़का पाकर भला कोई अनाथ लड़का वह क्यों खोजेंगे?''

ज्वालादत्त ने यह भी नहीं सुना। मस्तक नीचा किये वह जैसा बैठा था वैसा ही बैठा रहा—और धीरे-धीरे उसकी आँखों में आँसू भर आए, अनिर्वचनीय आनन्द और श्रद्धा के आँसू। ज्वालादत्त का मस्तक पंडित भगवतीचरण के अलक्ष्य चरणों पर नीचे तक झुका हुआ था। ज्वालादत्त के खण्डित और ध्वस्त स्वाभिमान की तंत्री के टूटे-फूटे तार ज्वलन्त स्वाभिमान की उस तंत्री के झंकृत तारों से छू-से गए थे। वह विह्वल हो उठा, और आत्मविस्मृत!

लाला रामसुखलाल यह सब-कुछ न समझ सके, पर उनका काम हो गया था। ज्वालादत्त के मौन को स्वीकृति ही समझ कर उन्होंने पंडित भगवतीचरण को जो-कुछ लिखा उसके उत्तर में केवल एक संक्षिप्त तार आया—''मुलाकात के लिये ज्वालादत्त को तुरन्त भेजें।''

और दूसरे ही दिन ज्वालादत्त को बड़े असमंजस के बाद इलाहाबाद के लिये चल देना पड़ा। वह अभी विवाह नहीं करेगा यह तो उसने इस बीच निश्चय कर लिया था, पर उन पंडित जी के दर्शन-मात्र का प्रलोभन इतना अधिक था कि वह लाला जी के आदेश को अस्वीकार नहीं कर सका। फिर, जबर्दस्ती तो कोई उसका ब्याह कर नहीं देगा, और यों भी अभी सिर्फ मुलाकात के लिये वह बुलाया गया है। किसी

अज्ञात शक्ति से खींचे-गए की भाँति, किसी सपने-से में, वह इलाहाबाद जा पहुँचा।

पर इसके बाद कैसे क्या हो गया, यह वह उस समय न सोच ही पाया, न समझ ही।

[४]

जिस समय वह पंडित जी के बँगले पर, बहुत ही साधारण पोशाक में और बहुत ही थोड़े सामान के साथ—एक फटी-सी मटमैले रंग की दरी में लिपटा हुआ छोटा-सा बिस्तरा, जिसकी रस्सी में एक पीतल की हलकी सी पिचकी-पिचकाई लुटिया बँधी लटक रही थी—पहुँचा, तब शाम हो चली थी और पंडित जी के बंगले के अन्दर कमरों में रोशनी जल चुकी थी। सारा परिवार नौका-विहार पर बाहर गया हुआ था, और ज्वालादत्त को काफी देर बाहर के बरामदे में एक कुरसी पर बैठे इन्तजार करना पड़ा।

रात के कोई आठ बजे होंगे, जब सब लोग लौटे। एक फिटिन और एक तांगा आकर उसी बरामदे के आगे की 'बरसाती' में रुक गए। नौकरों में खलबली मच गई, सारे बंगले का सन्नाटा मानो एकदम टूट गया। फिटिन में से एक युवक उतरा और कुछ स्त्रियाँ, और सीढ़ियों पर चढ़ कर, बरामदे में होकर, स्त्रियाँ अन्दर चली गईं। ज्वालादत्त जहाँ बैठा था वहाँ रोशनी बहुत ही धुंधली थी, और सीढ़ियों पर काफी तेज। पर ज्यों ही उसने बिना घूंघट वाली पहली स्त्री को सीढ़ियों पर चढ़ते देखा, उसने अपना मुंह दूसरी ओर को फेर लिया।

फिर उसने मुंह तब फेरा जब उसने सीढ़ियों पर जूतों की भारी आवाज सुनी। और ससंभ्रम वह सहसा उठ खड़ा हुआ। वह समझ गया कि यही पंडित भगवतीचरण हैं—सिर पर सफेद साफा, छाती तक लटकती हुई भव्य दाढ़ी जिसके खिचड़ी-बालों में सफेद अधिक थे या

काले, यह सहसा कह सकना कठिन था, मूंछ-दाढ़ी के बीच थोड़े-थोड़े दिखाई देने वाले अरुणाभ ओंठ, नुकीली बड़ी नाक, प्रशस्त मस्तक और तेज चमकती हुई आँखें। जिस क्षण सीढ़ियों पर की रोशनी पंडित जी के चेहरे पर सबसे अधिक पड़ी, उसी एक क्षण में ज्वालादत्त ने यह सब-कुछ देख लिया और एक बार फिर मन ही मन उसका मस्तक उनके चरणों में झुक गया।

ज्वालादत्त को बिना देखे ही पंडित जी भीतर चले गए। जब उन्हें पता लगा, तब राधेश्याम को पहले ज्वालादत्त के स्नान-भोजन की व्यवस्था करने का आदेश हुआ। तब तक रात के दस बज चुके थे, और पंडित जी सोने चले गए। ज्वालादत्त के पास उस दिन राधेश्याम सोए। पर ज्वालादत्त सो कहाँ पाया! वह मानो एक रहस्यपुरी में आ पड़ा था। कोई दो-तीन बजे सबेरे उसकी आँखें जरा झपी ही होंगी कि बूढ़े रामदीन ने उसे जगाया—"चार बज गए हैं, फारिग हो लो बेटा। फिर पंडित जी के पास चलना है।" ज्वालादत्त कोई बड़ा ही विचित्र सपना देख रहा था, पर रामदीन की आवाज ने वह सपना नष्ट ही नहीं कर दिया, याद करने पर भी ज्वालादत्त को वह याद नहीं आया।

फरवरी का महीना शुरू हो चुका था और सबेरे के वक्त अब भी काफी जाड़ा था। अपने कोट के ऊपर अपना एकमात्र कम्बल ओढ़ कर (अपनी बरसों-पुरानी मैली-कुचैली रजाई इस यात्रा पर लाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई थी) वह उस कमरे में दाखिल हो गया जिसमें लैम्प की तेज रोशनी में एक मेज के आगे पंडित जी काश्मीरी दुशाला ओढ़े कुरसी पर बैठे थे।

रामदीन ने परिचय कराया—"यही लड़का रात दिल्ली से वह चिट्ठी लेकर आया था," और पंडित जी ने मेज के एक ओर खड़े ज्वालादत्त पर अपनी दृष्टि डाली।

"बैठो कुरसी पर।" पंडित जी ने उसे सिर से पाँव तक एक बार देख जाने के बाद कहा, और निकट ही पड़ी खाली कुरसी की ओर

इशारा किया। कुरसी पर बैठते ही ज्वालादत्त पर लैम्प की पूरी रोशनी आ पड़ी।

"क्या इरादा है तुम्हारा एफ० ए० कर लेने पर?" पंडित जी ने गंभीर स्वर में पूछा।

"अभी तो कुछ ठीक नहीं है," ज्वालादत्त ने पंडित जी की आँखों में आँखें मिलाने का साहस न करके, सिर कुछ झुकाए हुए ही, कहा—"लाला जी चाहते हैं कि मैं उन्हींके किसी काम में लग जाऊँ।"

"ब्राह्मण का लड़का होकर बनिये की नौकरी करेगा?" मानो मेघ गरज उठा। और ज्वालादत्त और भी श्रद्धावनत हो गया।

"जी नहीं," वह कुछ साहस-सा पाकर बोला, "मुझे उस काम से नफरत है, लाला जी के यहाँ रहने से नफरत है। मैं तो·····"

"मैं तुझे इंजीनियर बनाऊँगा।" पंडित जी ने उसकी बात पूरी नहीं होने दी। "मेरी लड़की का ब्याह पहले जिससे तय हुआ था उसका बाप उसे इंजीनियरी पढ़ाने को तैयार नहीं था। वह उसे मास्टर बनाना चाहता था। मैं लड़की उसीको दूँगा जो रुड़की जाकर इंजीनियरी पढ़ने को तैयार हो।"

रुड़की की इंजीनियरी की पढ़ाई ज्वालादत्त की कल्पना की ऊँची से ऊँची उड़ान से भी बाहर थी। इससे अच्छा अवसर उसके भाग्य को परीक्षा का, उसकी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का, और कब आ सकता था! मुग्ध मन से पंडित जी की वाणी को वह पी चला।

[५]

दिन निकल आने पर गंगा-स्नान के लिये गाड़ियां जुत कर तैयार हो गईं। फिटिन में घर की स्त्रियां बैठीं और तांगे पर बूढ़े रामदीन और राधेश्याम के साथ ज्वालादत्त। पंडित जी घोड़े पर सवार हुए। गंगा जी के किनारे पहुँच कर गाड़ियां सड़क पर ही रह गईं, पर पंडित

जी घोड़े को रेती में उछालते हुए गंगा जी की धारा तक चले गए।

गंगा जी का यह हिस्सा प्रायः बिलकुल ही सुनसान था; दोनो ओर काफी दूर-दूर तक आदमी प्रायः कहीं नहीं थे। यही स्थान पंडित जी को प्रिय था।

स्त्रियों में इस समय ज्वालादत्त को दो ही दिखाई दीं। राधे की बहू सवेरे शायद ही कभी आती थी—एक तो घर का काम, और दूसरे जमुना-सरला की तरह वह तो पंडित जी के सामने नहा नहीं सकती थी।

स्नान आज संक्षिप्त-सा ही रहा। सरला और जमुना ने जरा अलग जाकर स्नान किया, और वे तैरीं भी नहीं। पर ज्वालादत्त की दृष्टि लज्जा-संकोच के आवरण में छिपी-सी बहुत ही सीमित थी। वह पंडित जी के बँगले से बाहर निकल कर भी, इतने विस्तृत भूखण्ड पर खड़ा भी, एक रहस्यपुरी में कैद-सा था।

स्नान के बाद वहीं बालू पर पंडित जी आ बैठे और उनके आदेशानुसार उनके एक ओर राधेश्याम और ज्वालादत्त बैठ गए और दूसरी ओर जमुना और सरला। और उसके बाद जो नाटक-सा शुरू हुआ उसमें ज्वालादत्त अपने अस्तित्व का ज्ञान बिलकुल भुला ही बैठा—कुछ देर के लिये वह यह समझ ही नहीं सका कि यह स्वप्न है या यथार्थ, वह किसी नाटक का कोई अभिनेता है या अपने ही जीवन से वह खिलवाड़ कर रहा है।

"आज जमुना का स्वयंवर है," सहसा पंडित जी किसी नाटक के सूत्रधार की ही तरह बोले। "जमुना जब बहुत छोटी थी तभी मैंने कह दिया था कि उसका स्वयंवर होगा।"

पंडित जी को छोड़, और-सभी को कुछ देर के लिये यह भ्रम-सा हो गया कि उनके आगे कोई नाटक हो रहा है।

"ज्वालादत्त से ब्याह करने को तू तैयार है?" पंडित जी ने जमुना की ओर ताक कर मेघ-गंभीर स्वर में पूछा।

जमुना के ब्याह के बारे में इन कुछ महीनों से पंडित जी का जो

रुख था उससे न तो राधे का ही साहस था कि वह इस विवाह के बारे में अपनी कोई सम्मति-असम्मति प्रकट करे या कोई दस्तन्दाजी करे और न जमुना की ही कोई इच्छा-अनिच्छा थी। शेखर के साथ अपने विवाह में परिस्थितियों के कारण जितनी दिलचस्पी लेने के लिये वह विवश हो गई थी उतनी ही उस संबंध के टूट जाने पर अपने विवाह के बारे में उदासीन हो उठी थी। उसने बिना ज्वालादत्त या अपने पिता की ओर आँखें उठाए, नम्र, संकुचित-से स्वर में केवल इतना ही कहा—"जैसी आपकी आज्ञा!"

ज्वालादत्त घबड़ाया कि शायद अब उससे यही प्रश्न पूछा जायगा। वह इसके लिये अभी तक तैयार नहीं हो पाया था। इंजीनियरी पढ़ने और लाला रामसुखलाल के यहाँ नौकरी करने से छुटकारा पाने का प्रलोभन भारी जरूर था, पर लाला जी को एकदम निराश करके कृतघ्न बनने का खयाल और विवाह-जैसी बड़ी जिम्मेदारी अभी से ले लेने की बात, जबकि दुनिया में उसका कोई भी अपना नहीं था, उसे पसोपेश में डाले हुए थी।

पर ज्वालादत्त की सम्मति लेने की पंडित जी ने कोई जरूरत ही नहीं समझी।

"रामदीन!" पंडित जी ने रामदीन की ओर सहज दृष्टि से ताका और सहज-गंभीर स्वर में बोले—"माला कहाँ है?"

रामदीन ने एक छोटी-सी पोटली खोल कर गेंदे के फूलों की एक माला निकाली और पंडित जी की ओर बढ़ाई।

"मुझको क्या देता है पगले," पंडित जी हँसते हुए बोले, "जमनी को दे। उसका स्वयंवर है, मेरा नहीं।"

"ले, माला लेकर इधर आ, इसके गले में डाल दे।" पंडित जी ने जमुना को आदेश दिया।

और जब जमुना की माला ज्वालादत्त के गले में आ झूली, तब फिर थोड़ी देर के लिये उसे यह भ्रम हो गया कि वह किसी मायापुरी

में आ पड़ा है, जहाँ की राजकुमारी ने उसका वरण किया है।

"लो, मैंने ब्याह कर दिया। अब और जो कुछ करना है वह राधे करेगा।" पंडित जी ने उठते हुए कहा।

और उसी दिन रात को सनातनी वैदिक विधि से पंडित जी के बंगले के आंगन में ज्वालादत्त के साथ जमुना का विवाह हो गया। जिस पंडित ने विवाह कराया था उसके अलावा पंडित जी और राधेश्याम के परिचितों में से केवल आठ-दस व्यक्ति उस समय उपस्थित थे।

सातवां परिच्छेद

[१]

जमुना के विवाह के कुछ ही महीने बाद पंडित भगवतीचरण की इच्छा के विरुद्ध दो बड़ी बड़ी घटनाएं घट गईं, एक के बाद एक। जमुना के बारे में पंडित जी को मालूम हुआ कि वह मां बनने जा रही है; और उनका बड़े साध का दामाद ज्वालादत्त, जिसे वह इंजीनियरी पढ़ने के लिए भेजने के बड़े-बड़े मंसूबे बांध रहे थे, एफ० ए० में ही फेल हो गया।

जमुना का विवाह करके दूसरे ही दिन पंडित जी ने राधे को बुलाकर कड़ी ताकीद की थी—"देखो, ज्वालादत्त को जल्द ही रवाना कर दो दिल्ली; पढ़ाई-लिखाई में कोई ढिलाई नहीं आनी चाहिये ब्याह हो जाने की वजह से!" और ज्वालादत्त को बुलाकर उन्होंने पूछा था—"कॉलेज से कै दिन की छुट्टी लेकर आया था?"

"छुट्टी लेकर तो नहीं आया जी..... लाला जी ने मेरी ओर से छुट्टी की दर्खास्त भिजवा दी होगी।" ज्वालादत्त ने कहा।

"लाला जी कब लौटने का इंतजार करेंगे?" पंडित जी ने गंभीर स्वर में पूछा।

"यह मैं कैसे कहूँ जी?" ज्वालादत्त कुछ सकपका उठा।

"देख ज्वालादत्त," पंडित जी ने गंभीरता के ही साथ, पर कुछ नरम स्वर में, कहना शुरू किया, "इस साल फर्स्ट डिवीजन में एफ० ए० करके फिर इलाहाबाद में ही तुझे राधे के साथ रहना होगा, बी० एस-सी० कर डालने के लिये। और बी० एस-सी० में भी फर्स्ट डिवीजन लाकर रुड़की की तैयारी करनी होगी।..... ब्याह करके ढिलाई तो नहीं

आएगी पढ़ाई में ?·····क्या कहता है ?"

"जी नहीं !" ज्वालादत्त ने शर्म से लाल होते हुए कहा।

"जब तक पढ़ाई चलती है तब तक विद्यार्थी-जीवन ही बिताना होगा·····गृहस्थ के लालच से पूरी तरह बचना होगा।" पंडित जी गंभीर स्वर में उपदेशामृत की वर्षा कर रहे थे। "धीरज से काम लेना, बेसब्री मत दिखलाना।·····जब ब्याह हो ही चुका है तो उस ओर से मन पूरी तरह हटा कर रखना !·····अकेले में कभी नहीं मिलना-जुलना !·····समझता है न ?" यह आखिरी वाक्य काफी कड़ाई के साथ निकला था पंडित जी के मुंह से।

ज्वालादत्त पंडित जी की इस स्पष्टवादिता से परेशान था, और साथ ही एक अजीब घबड़ाहट-सी महसूस कर रहा था इस नए ही रुख से अपने ससुर के। विवाह की ओर कल से पहले तक जिसका कभी ध्यान भी नहीं गया था वही ज्वालादत्त सारी रात एक काल्पनिक स्वर्गपुरी में विचरण करता रहा था पढ़ाई-लिखाई की सारी चिंता भूल कर, और पहली रात अपनी नववधू के दर्शन न कर पा उसने अपने मन को यही समझा लिया था कि दिन भर की थकावट और आधी रात तक वैवाहिक विधि की जटिलताओं में फंसे रहने के कारण ही और-अधिक जागरण को अनुचित समझ, पंडित जी ने वर-वधू के अलग-अलग सोने का प्रबंध किया होगा। पर इस समय की इस बातचीत ने उसकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। क्या आज भी उसका सपना, सपना ही बना रह जायगा ? क्या उसे दिल मसोस कर यों ही दिल्ली लौट जाना पड़ेगा ?

पर शर्म-लिहाज से अपने ससुर के सामने बोला वह कुछ नहीं; परम आज्ञाकारी की भांति सिर-नवाए चुप खड़ा रह गया।

"तो दिल्ली कब जाना है तुझे ?" पंडित जी ने कुछ देर रुक कर सहसा फिर पूछा।

"जी·····?" इस सीधे प्रश्न के लिये एकदम ही अप्रस्तुत ज्वालादत्त सहसा समझ ही न पाया कि इस प्रश्न का क्या अर्थ है।

"कब तक यहां और रहना है ?" पंडित जी ने वही बात दूसरे शब्दों में दुहराई, कुछ रुखाई के साथ।

"मैं आज ही दिल्ली चला जाऊंगा·····शाम की गाड़ी से," ज्वालादत्त ने भी इस बार आवेश में आकर कहा। उसके स्वाभिमान पर करारी चोट पड़ी थी।

"आज कैसे जा सकेंगे ये," इस बीच चुपके से वहां आकर खड़ी हो-गई सरला ने धीरे से और नरम स्वर में प्रतिवाद किया, और पंडित जी की तनी हुई भौंहों से मंडित कठोर आंखों में उसने अपनी सलज्ज, नम्र आंखें डाल दीं। पंडित जी की भँवें ढीली पड़ चलीं, आंखों में स्निग्धता की चमक आ गई।

"हां, आज कैसे जा सकता है ?" पंडित जी ने भी सरला का समर्थन कर डाला, "आज तो·····"

"जी, आज रात की कुछ रस्में बाकी रह गई हैं, और कल तो दावत रहेगी न ?" सरला ने स्वयं ही सुझाव पेश किया।

"दावत ?·····" पंडित जी ने आश्चर्य के साथ सरला की ओर ताका। "किसकी दावत ?"

"वाह, आपकी बेटी का ब्याह हुआ, हमारी ननँद जी का," आंखें नचाते हुए सरला ने कहा, "और दावत ही नहीं दी जायगी ? बड़े भैया के दोस्त लोग हैं, आपके भी कुछ हैं ही मिलने-जुलने वाले, और अगर दूसरा कोई नहीं है तो हमारे ये लाला तो हैं—इनकी दावत नहीं होगी?" और सरला ने एक शरारत-भरी मीठी दृष्टि सकुचाए हुए, शरमाए हुए, नीचे की ओर गड़े जा-रहे ज्वालादत्त की ओर डाली।

और ज्वालादत्त का जाना उस दिन के लिये ही नहीं रुक गया, किसी न किसी बहाने उसका जाना रोज ही रुकता गया और धीरे-धीरे दस-ग्यारह दिन बीत गए उसे अपनी ससुराल में। और इसके लिये वही नहीं, जमुना भी और जमुना की बड़ी भाभी भी कम आभारी नहीं थीं सरला की। ज्वालादत्त और जमुना की तो खैर बात ही अलग थी,

जमुना की बड़ी भाभी को बेहद तकलीफ हुई थी यह सुन कर कि जमुना का दुलहा ब्याह के दूसरे ही दिन चला जायगा और जमुना उसके साथ ससुराल भी नहीं जायगी। और अगर जमुना को सिर्फ दुलहा ही दुलहा मिला है कोई ससुराल नहीं मिली, तो फिर कुछ दिन तो दुलहा यहां रह ले ब्याह के बाद, कि जमुना जी भरके देख ले और पा ले अपने कृष्ण-कन्हैया को।

पंडित जी को छोड़ सभी की ख्वाहिश थी कि ज्वालादत्त अभी जल्द दिल्ली न लौटे। रामदीन उर्फ रामदीन चाचा की भी राय यही थी, हालांकि उनकी दलील दूसरी थी। न जाने कहां से, किस आवारे को पकड़ कर पंडित जी ने डलवा दी है उसके गले में जमना बिटिया की माला, और फिर दूसरे ही दिन उसे धकेले दे रहे हैं घर से बाहर। फिर जो अपना न रह गया तो !·····कुछ दिन तो रह ले जमना बिटिया के पास, कि दिल की दिल से गांठ तो बंध जाए।

सरला का भी आग्रह देख पंडित जी झुक तो गए थे पर यह कड़ी हिदायत कर दी गई थी कि दोनों अकेले में कभी न मिलने पाएं। राधे की बहू और सरला की उपस्थिति में ही मिलने-जुलने की छूट दी गई थी दोनों को, और रात के लिये यह खास हिदायत दी गई थी कि जमुना अपनी बड़ी भाभी के पास सोएगी और ज्वालादत्त राधेश्याम के पास, और अगर कोई भी गड़बड़ हुई तो राधे और राधे की बहू जिम्मेदार होंगे।

राधे की बहू को यह जिम्मेदारी लेने में कोई मुश्किल नहीं हुई। और फिर भी उसने ब्याह की दूसरी रात को ही दोनों को कुछ देर के लिये अपने सोने के कमरे में अकेले छोड़ देने की योजना बना डाली। जिम्मेदारी लेने में क्या था जब बिना जिम्मेदारी लिये ही पंडित जी के क्रोध की चपेट से कोई कभी बच नहीं सका था! कुछ हो-हवा भी गया तो फांसी तो चढ़ा नहीं देंगे पंडित जी राधेश्याम या राधे की बहू को! भला यह भी कोई बात है कि सत्रह साल की उम्र में तो जाकर

कहीं अब ब्याह हुआ हमारी जमना बीबी का, और अब भी मियां-बीबी दोनों क्वारे ही जैसे रहेंगे ? ना बाबा, दो जवान दुलहा-दुलहिन को इस तरह नहीं कलपा सकेंगे हम !·····भला इस तरह कलप-कलप के भी कोई पड़ा है कभी ?" और फिर बहुत धीरे, पति के कान के पास मुंह ले जाकर, राधे की बहू लज्जा-मिश्रित मुसकराहट के साथ बोली, "पंडित जी ने खुद क्या किया था ?·····अपनी बात भूल गए ! तुम सबके-सब तो पैदा होते चले गए; पंडित जी की पढ़ाई क्या रुक गई थी तब ?"

और इस प्रकार, ब्याह की दूसरी रात से दिल्ली जाने की आखिरी रात तक, रोज ज्वालादत्त को आधी रात के बाद राधे की बहू चुपके से जगा कर ले जाती अपने कमरे में, और जमुना के पास उसे छोड़ कर खुद अपने पति के पास बाकी रात, करीब-करीब जागते ही, बिताती। डर उसे अगर कुछ था तो यही कि इस षड्यंत्र का किसीको पता न चल जाय। और पंडित जी के उठने का वक्त होने से कुछ पहले ही उठ कर वह अपने कमरे के दरवाजे पर जाकर धीरे-धीरे अपनी उंगली से खट-खट की दो-चार आवाज करती, और जमुना के भी कान इतने सजग रहते थे कि राधे की बहू को कभी कोई कठिनाई नहीं हुई जमुना से दरवाजा उसी दम खुलवा लेने में।

[२]

फरवरी के शुरू में जमुना का ब्याह हुआ था और अप्रैल बीतते न बीतते पंडित जी को खबर मिली कि जमुना के बच्चा होगा।

पंडित जी मानो आस्मान से गिरे। पहले तो पंडित जी को सरला की बात पर विश्वास नहीं हुआ। हो सकता है, कोई दूसरी गड़बड़ी हो। पर जब लेडी-डॉक्टर को दिखलाया गया और उसने भी बतलाया कि दो महीने का बच्चा है पेट में, तब पंडित जी के क्रोध की सीमा नहीं रही। सबसे ज्यादा क्रोध था ज्वालादत्त पर, उस 'जंगली छोकरे' पर,

जो पंडित जी के ही घर में रह कर उनका इतना बड़ा तिरस्कार कर गया; और उसके बाद राधे और राधे की बहू पर, जिन्होंने दोनों की जिम्मेदारी ली थी। पर न ज्वालादत्त ही पंडित जी की पकड़ के अन्दर था उस दिन—नहीं तो शायद वे धृतराष्ट्र द्वारा चूर्ण-विचूर्ण की गई भीमसेन की लौह-प्रतिमा की भांति ज्वालादत्त की जीती-जागती प्रतिमा को पीस डालते—और न राधे और राधे की बहू ही थे उनके पास, कि और कुछ नहीं तो अपने विष-बुझे व्यंग-बाणों से ही वे उन्हें छेद-छेद डालते और जला-जला कर मारते। वे थे इलाहाबाद में जहां राधेश्याम वकालत कर रहा था, और पंडित जी अपनी छः महीने की छुट्टियां पूरी करके इलाहाबाद से अपनी नौकरी पर वापस आ गए थे, इस बार मिर्जापुर में। और इसलिये पंडित जी के प्रत्यक्ष क्रोध को सहन करने के लिये वहाँ दो ही प्राणी थे—जमुना और सरला। सरला इसलिये कि उसीके कारण पंडित जी ने ज्वालादत्त को ब्याह के बाद रुकने दिया था।

पर सरला सारा दोष 'बड़े भैया' और 'बड़ी भाभी' के सिर डाल कर बच गई, और रो-रो कर उसने अपनी आंखें सुजा लीं पंडित जी के सामने, कि अपने भोलेपन में उसने क्यों ज्वालादत्त को रोकने की सिफारिश की थी! और उसके आंसुओं ने और उसके उस 'भोलेपन' ने पंडित जी को गला कर रख दिया, और उनका कुल-का कुल क्रोध केन्द्रीभूत होकर रह गया अभागिन जमुना पर।

पर जमुना को देखते ही क्रोध से अधिक उन्हें आज घृणा हो उठी थी—कुछ वैसी ही घृणा जैसी तब हुई थी जब कुछ वर्ष पहले उन्होंने उसे चाबुक से पीटने के लिये नंगा होने का हुक्म दिया था और जब अचानक उन्होंने आविष्कार किया था कि वह बच्ची नहीं है! एक अजीब घृणा थी, जो पंडित जी की समझ में नहीं आई थी—न तब और न अब ही।

और जमुना की अब वे कोरी उपेक्षा ही कर सकते थे, ठंढी उपेक्षा—घृणा की चरम अभिव्यक्ति के रूप में। वे फिर उसे दुकराने लग गए—

अवश्य इस बार पांवों से नहीं, सिर्फ अपनी निगाहों से। और फल-स्वरूप जमुना ने, लज्जा और भय से गड़ी जाती हुई जमुना ने, उनके सामने आना छोड़ दिया। वह अपने भगवान से मना रही थी कि धरती फट जाए और वह उसमें समा जाए।

अंत में पंडित जी ने एक बड़ी चिट्ठी राधे को लिखी और एक ज्वालादत्त को, और दोनों ही चिट्ठियों में उन्होंने अपना यह फैसला लिखा कि इम्तिहान देकर गरमी की छुट्टियों में भी ज्वालादत्त अपनी ससुराल नहीं आने पाएगा, जैसा कि पहले से तय था।...और जब तक उसकी पढ़ाई खत्म नहीं होगी तब तक मिलना-जुलना तो दूर, ज्वाला और जमुना आपस में खत-किताबत भी नहीं कर सकेंगे।

और ज्वालादत्त और राधेश्याम दोनों ही जानते थे कि इस हुक्म को न मानने का अंजाम क्या होगा। अगर ज्वालादत्त को पंडित जी के खर्च पर ऊंची शिक्षा पानी है और अगर जमुना का बोझ अभी से नहीं उठाना है तो उन्हें खुश किये बिना कोई चारा नहीं।

किन्तु पंडित जी के क्षोभ की सीमा नहीं रही जब उन्हें खबर मिली कि ज्वालादत्त एफ० ए० की परीक्षा में पास भी नहीं हो सका। खबर पाते ही उन्होंने जमुना को बुला कर, उसकी ओर निगाह उठाए बिना ही, उसे अपना फैसला सुना दिया—"लिख दे ज्वाला को, अब आगे पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है। उसके लाला जी को खर्चा देना है तो पढ़ाएँ, और नहीं तो कोई काम तलाश करे।" और फिर थोड़ी देर रुक कर पास ही खड़ी सरला की ओर निगाह उठा कर इतना और जोड़ दिया, "...और यह भी पूछ उससे, कि तुझे कब तक डाले रहेगा यहां। अपनी घर-गृहस्थी जिस तरह जमाना हो जमाओ, और नहीं तो राधे से सलाह लो कि क्या करना है।...मुझसे अब कोई वास्ता नहीं तुम लोगों का।"

थोड़ी देर सन्नाटा रहा, और जब जमुना ने देखा कि उसके पिता को और कुछ नहीं कहना है तो वह धीरे-धीरे, सिर झुकाए, वहाँ से चली आई अपने कमरे में, और खाट पर उलटे-मुंह पड़ गई और फूट-

फूट कर रोने लगी—बिना आवाज किये।

पर पंडित जी का गुस्सा सिर्फ इतने से ही शान्त नहीं हो पाया था। इंजीनियरी वाली अपनी अभिलाषा की नौका के मँझधार में पड़ जाने पर उन्होंने जिस छोकरे को इतनी आशा लेकर अपना लंगर बनाया था, वह लोहे का नहीं मिट्टी का बना साबित हुआ, पानी में डूबते ही गलने लग गया।

सारे दिन पंडित जी चोट खाए हुए सांप की तरह जिस-तिसको अपनी फुफकार से भस्म करते रहे, और फिर भी जब अन्दर के विष की ज्वाला नहीं बुझी तब रात होते-होते अभागी कोयल पर बरस पड़े।

कोयल थी पंडित जी की पहली संतान गंगा की बेटी, जिसने जन्म लेते ही अपनी माँ को गँवा दिया था। पंडित जी की माँ रोते-रोते मर गईं, पर पंडित जी गंगा की इस बेटी को नहीं लाए। राधे की दादी ने मरते वक्त अपनी यह अभिलाषा अपने नाती राधे को वसीयत के रूप में दी थी, पूरी करने के लिये। पर राधे की वकालत अभी शुरू ही हुई थी कि एक दिन गंगा की बेटी कोयल को बिलकुल ही अनाथ बना कर उसके गरीब बाप भी चल बसे—महीने डेढ़ महीने की ही बीमारी में। पंडित जी के पास उनके ज्येष्ठ और विधुर जामाता की दर्दनाक चिट्ठी आई थी कि वे अपने पास बुला लें उन्हें उनका इलाज कराने के लिये, पर पंडित जी ने उस खत को राधे के पास भेज दिया था—'जरूरी कार्रवाई के लिये' की छोटी-सी और बहुत ही अस्पष्ट टिप्पणी के साथ।

पर राधेश्याम इस टिप्पणी का भाष्य करने में ही लगे थे कि कोयल के बाप का तार आया—इस बार राधे के ही पास, कोयल के प्रति दया रखने के लिये। और जब इस तार को पाकर राधेश्याम, विशेष रूप से अपनी स्त्री द्वारा प्रेरित होकर, कोयल के बाप के गाँव पर पहुँचे, एक दिन-रात की रेल-यात्रा, चार-पांच घण्टे की इक्का-यात्रा, और छः-सात घण्टे की बैलगाड़ी-यात्रा के बाद, तब तक कोयल के बाप को राख हुए कई दिन बीत चुके थे। और दस-ग्यारह साल की रोती-कलपती कोयल

को, जिसे उन्होंने पहले कभी देखा तक न था, अपने साथ लेकर राधेश्याम इलाहाबाद चले आए।

यह बात जमुना के ब्याह के कुछ ही हफ्ते बाद की है।

कोयल साक्षात कोयल ही थी—रंग, रूप, और वाणी, सभी में। साँवला पर सलौना रंग, चेहरे का नक्शा सुन्दर—मानो सांचे में ढाल कर निकाला गया हो, और कोयल की सी ही मीठी आवाज। और उसी तरह सबसे छिप कर, सबसे अलग-अलग और दूर-दूर रहने वाली! बहुत ही नम्र और बहुत ही मीठी। कम बोलती थी, पर मानो मिठास बरसाती थी जब दो बोल निकलते थे उसके मुह से। बारीक और सुघड़ दांतों की सफेद पंक्ति, पतले-पतले होट, बड़ी-बड़ी रसीली आँखें, और न बहुत नुकीली और न चौड़ी, मझौली नाक।

अपने बड़े मामा का ही नहीं, बड़ी मामी का भी मन मोह लिया कोयल ने उनके घर में पांव रखते ही। अपनी छाती से लगा कर बड़ी मामी ने उसका स्वागत किया, और दोनों मामी-भानजी चुपके-चुपके रो लीं, कोयल की ताजी विपत्ति को याद करके।

और कोयल की बड़ी मामी ने उसी दिन अपनी बेटी बना लिया उसे, मन-ही-मन; मातृत्व के लिये व्याकुल उनका हृदय कबसे किसीको अपनी संतान के रूप में खोज रहा था।

पर कुछ दिन बाद जब अपने बड़े मामा और बड़ी मामी के साथ कोयल मिर्जापुर गई अपने नाना के पास, कचहरी की दो दिन की छुट्टियों में, तो वहाँ से वह इलाहाबाद नहीं लौट सकी। उसे वहीं रोक लिया उसके नाना की आड़ में उसकी छोटी मामी ने। और राधे की बहू दिल मसोस कर रह गई।

पंडित जी को पहले तो नहीं मालूम हुआ था, पर सरला के आग्रह पर जब उन्होंने कोयल को रोक लिया अपने पास तब उन्हें पता लगा कि उनके एक बहुत बड़े किन्तु अब तक अज्ञात से बने हुए अभाव को कोयल ने पूरा किया था। जमुना को जबसे उन्होंने मारना छोड़ा था

तब से उनका वह अभाव पूरा करने वाला उन्हें कोई नहीं मिला था—जो अपना भी हो और जिसे पीटा भी जा सके, दिल खोल कर। नौकरों या नौकरों के बच्चों को पीटने में वह मजा नहीं था, और अपनों में अब कोई रहा नहीं था जिसे उस तरह पीटा जा सकता। सरला ने पंडित जी के कितने ही अभावों की पूर्त्ति की थी, बल्कि शायद ऐसे भी अभावों की पूर्त्ति की थी जिन्हें पंडित जी ने पहले कभी महसूस तक नहीं किया था, पर इस अभाव की दवा उसके पास भी नहीं थी। यों, उसकी ओर से, जरूर पंडित जी को पूरी छूट मिली हुई थी कि वे उसे पीटें, जी भर कर पीटें। पर जो स्वयं पिटना चाहे उसे पीटने में भला क्या मजा मिल सकता था? और खास तौर से उसे, जो पिटते वक्त भी हंसती रहे और शोख आंखों से उनकी ओर ताकती रहे!

जो जितना ही डरता था उसे पीटने में पंडित जी को उतना ही मजा आता था। जमुना ने इस दृष्टि से पंडित जी की इस इच्छा को सबसे अधिक तृप्त किया था, और अब उसके बाद उससे भी बढ़ कर मिली थी यह कोयल।

और कोयल को भी पीटने में सबसे ज्यादा तृप्ति पहले-पहल पंडित जी को उसी दिन मिली, ज्वालादत्त के एफ० ए० में फेल होने की खबर पाकर। जमुना को सवेरे अपना फैसला सुना देने के बाद दिन भर अपनी फुफकारें छोड़ते हुए शाम को जब वे अपने बंगले पर लौटे कचहरी और घुड़सवारी के बाद, तब भी उनका गुस्सा काबू में नहीं आया था और 'इस कमीने ज्वालादत्त' ने, एक के बाद एक, जो उनका तिरस्कार पर तिरस्कार करना शुरू कर दिया था उसके प्रतिशोध की ज्वाला उन्हें अन्दर ही अन्दर जला रही थी।

बहाना खोजना पंडित जी के लिये कुछ मुश्किल नहीं था, और फिर अपना क्रोध उतारने के लिये उन्हें किसी बहाने की जरूरत भी नहीं थी। रात होते-होते पंडित जी पर क्रोध का भूत पूरी तरह सवार हो चुका था, और मई-जून की तेज गर्मी में भी कोयल को पकड़ कर कमरे में बन्द

करके पंडित जी ने अपने चमड़े के हण्टर से उसकी जो मरम्मत की उससे उसे बचाने वाला कोई भी नहीं था उस रात। कोयल बेचारी बिलकुल ही अनभ्यस्त थी इस मामले में; वह क्या जानती थी कि जितना ही वह चीखे-चिल्लाएगी उतना ही पंडित जी का भूत प्रचण्ड पड़ेगा। जमुना अपने कमरे में दरवाजे से चिपकी हुई हण्टर का एक-एक वार सुनती थी और सिर से पांव तक सिहर-सिहर उठती थी, और उसका जी बुरी तरह से व्याकुल था कोयल के कानों में किसी तरह यह मंत्र फूंक देने के लिये कि दम साध कर वह मार खा ले, चीखे-चिल्लाए नहीं। पर कोई चारा नहीं था, वह एकदम ही असहाय थी।

और कोयल के घावो पर मलहम लगाने की भी तो हिम्मत नहीं थी जमुना में! यह हिम्मत भी एक सरला में ही थी, और जब पंडित जी अपना पूरा गुस्सा उतार कर कमरे से निकल गए तब वही हिम्मत करके घुसी उस कमरे में और अपनी छाती से चिपटा कर उसे खींचती-खांचती किसी तरह अपने कमरे में लाई, और उसकी नंगी पीठ और नंगी टांगों पर उभड़े हुए नीले-नीले लाल-लाल लम्बे-लम्बे घावों पर मलहम लगाती रही। और पंडित जी के कई बुलावों की उपेक्षा करके भी सरला ने छोड़ा नहीं कोयल को उस रात, और तभी वहां से उठी जब कि उसकी गोद में सिर रखे वह नींद से सो गई।

पर रात की इस परम तृप्ति के बाद पंडित जी का क्रोध दूर हो चुका था और अगले दिन सबेरे पिछले दिन के अपने निश्चय को बदलते हुए उन्होंने स्वयं ही ज्वालादत्त को एक पत्र लिख कर अपना यह नया फैसला सुनाया कि इस साल अगर फर्स्ट डिवीजन में एफ० ए० नहीं पास किया उसने, तो उसके बाद न उसे आगे पढ़ाने का खर्च ही मिलेगा और न जमुना ही फिर अपने पिता के घर आश्रय पाएगी।

[३]

अपने कठोर श्वसुर की दी हुई सजाओं ने पहले तो ज्वालादत्त के

मन में प्रचण्ड विद्रोह की भावना पैदा की और प्रथम आवेश में तो उसने यही फैसला कर डाला कि जिंदगी भर वह क्लर्की करे सो भी अच्छा, पर पंडित जी के या लाला जी के पैसे से पढ़ कर उनकी ताबेदारी वह नहीं करेगा। जल्द से जल्द किरानी का कोई काम खोज कर जमुना को ले आने का निश्चय करके एक रात वह सुख और निवृत्ति की ही नींद सोया, पर अगले दिन ही उसका निश्चय डगमगा उठा। और अन्त में जब अपने भावावेश पर विजय पाकर आखीर तक पढ़ डालने और इंजीनियरी पास करके 'आदमी' बनने का आकर्षण प्रबल हो उठा तब वह पूरी एकाग्रता के साथ अपनी पढ़ाई में लग गया—जमुना और पंडित जी दोनों को भूल कर। और अन्त में जब सचमुच ही उसने एफ० ए० की परीक्षा फर्स्ट डिवीजन में पास की तब उसने कठोर, पर अपने शुभचिंतक, पंडित जी के चरणों में मन ही मन अपना मस्तक झुकाया और उन्होंने उसे जो सजाएं दी थीं उन्हें अभिशाप नहीं वरदान माना। विवाह की प्रथम मादकता के प्रवाह में पड़ कर उसने जिस हृदय-दौर्बल्य का परिचय दिया था उसमें बह कर वह न जाने कहां चला जाता और जीवन-भर पंडित जी को और अपने को और जमुना को भी कोसता ही तो रहता! और वह बेहद शर्मिन्दा था कि अपने श्वसुर के आदेश का पालन न करके वह पिछली बार फेल भी हुआ इम्तिहान में, और एक बच्चे का बाप भी बन गया पराश्रित रहते हुए ही।

और जब फर्स्ट डिवीजन में एफ० ए० पास करके उसने पंडित जी को संतुष्ट कर दिया और उन्हींके खर्चे से आगे पढ़ने के लिये इलाहाबाद आ गया राधेश्याम के पास, तब भी वह अपने दूरदर्शितापूर्ण क्षणों में कृतज्ञ ही हो उठता था अपने श्वसुर के प्रति, कि स्त्री-पुत्र से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध रखने की आजादी नहीं मिली हुई थी उसे।

पर जमुना को मां बने एक ही साल हुआ था, और ज्वालादत्त अभी बी० एस-सी० के प्रथम वर्ष में ही था, कि पंडित जी की बदली इलाहाबाद में ही हो गई, जिसकी वे काफी समय से चेष्टा कर रहे थे। और

राधेश्याम ने पंडित जी के ही खर्च से जो अलग गृहस्थी जमा रखी थी अपनी, उसे इच्छा न रहते हुए भी उन्हें तोड़ना पड़ा और अपने पिता के ही साथ रहने के लिए बाध्य होना पड़ा। अभी अक उनकी वकालत अच्छी नहीं जम सकी थी।

और तब ज्वालादत्त के लिये अग्नि-परीक्षा का समय आया।

मिर्जापुर से पंडित जी के इलाहाबाद के लिये प्रस्थान करते वक्त इलाहाबाद के उनके बंगले को ठीक कर-कराके और अपनी स्त्री और ज्वालादत्त पर वहां की सारी जिम्मेदारी सौंप कर राधेश्याम मिर्जापुर चले आए थे अपने पिता की गृहस्थी को वहां से उठा ले जाने में मदद करने के लिये। और वहां यह सवाल छिड़ गया कि ज्वालादत्त और जमुना का क्या होगा।

यह सवाल राधेश्याम और उनकी स्त्री के बीच भी छिड़ा था इलाहाबाद से उनके मिर्जापुर आते वक्त। उनकी स्त्री का विश्वास था कि पंडित जी अब तक नरम पड़ चुके होंगे जमुना और ज्वालादत्त की डेढ़ दो साल की कड़ी तपस्या के बाद, और इसलिये उसका जबर्दस्त आग्रह था अपने पति से कि वे अपने पिता का वह हुक्म रद कराने की पूरी तैयारी करके लौटें अपने पिता के साथ। और राधेश्याम को यद्यपि पूरा भरोसा नहीं था अपनी सफलता में, पर पंडित जी के किसी स्पष्ट आदेश के अभाव में वे ज्वालादत्त को भी पंडित जी वाले नए बंगले पर इसी आशा में ले आए थे, बिना अपने पिता से पूछे ही, कि अगर पहले से कुछ तय न भी हुआ तो यहां आ जाने पर तो पंडित जी के लिये भी शायद कठिन ही होगा घर पर जमे हुए जमाई को दूर-दूर रख सकना।

किन्तु पंडित जी ने छूटते ही पहला प्रश्न यही किया कि—"ज्वालादत्त के रहने का क्या किया है?"

"जी, बंगले पर ही तो छोड़ आया हूँ," सहमे हुए स्वर में राधेश्याम ने जवाब दिया।

"क्यों?" भौंहें चढ़ा कर पंडित जी ने कड़े स्वर में पूछा। "होस्टल

में क्यों नहीं भरती करा दिया ?"

"जी....." राधेश्याम को सहसा कोई जवाब नहीं सूझा।

और तब सरला ने, जमुना की ओर आँखें मार कर, अपनी सहृदयता और उदारता का अहसान उस पर चढ़ाते हुए, राधेश्याम की मदद की। "अब तो कोई कसूर है नहीं उनका; आपका हुक्म तो पूरी तरह मान रहे हैं दोनों जने," नम्रता की मूर्त्ति बन कर उसने पंडित जी की सेवा में निवेदन किया।

"मगर घर पर रह कर पढ़ाई कैसे हो सकेगी ?" दुबारा अपनी भँवों को माथे पर चढ़ाते हुए, पर करीब-करीब नरम पड़ते हुए स्वर में, उन्होंने राधे और सरला दोनों से पूछा।

"अच्छा, इसका फैसला वहीं चल कर होगा, ज्वाला से बात करके," पंडित जी ने दोनों को ही चुप देख, कुछ देर बाद कहा, और ज्वालादत्त को लिख दिया गया कि स्टेशन पर वह गाड़ी के वक्त पहुँच जाए।

पर इलाहाबाद स्टेशन पर गाड़ी के पहुँचने पर न जमुना ने ही ज्वालादत्त की ओर आँख उठा कर देखने की हिम्मत की और न ज्वालादत्त ने ही उसकी ओर। और जमुना के और अपने उस साल भर के नन्हें से बच्चे को देख कर जो सरला की गोद में चढ़ा हुआ भौचक्का सा स्टेशन की उस रेलपेल को देख रहा था, ज्वालादत्त के मन में कोई खास भाव नहीं पैदा हुआ था। उसकी आँखें पंडित जी के चेहरे को पढ़ रही थीं और दिल जमुना की एक झलक पाने के लिये छटपटा रहा था, पर न वह अपने ससुर के दिल का पता लगा सका और न जमुना के चेहरे की एक झलक तक पा सका। स्टेशन पर वह बराबर उसकी निगाहों से अपने को बचाती रही और रास्ता दोनों ने दो अलग-अलग सवारियों पर काटा।

बंगले पर पहुँच कर भी रात होने तक दोनों की एक-दूसरे से मुलाकात नहीं हुई और न किसी को यही पता चल सका कि उनके भाग्य में क्या बदा है।

रात को पंडित जी के सोने के कमरे में सबकी बुलाहट हुई और यह मामला बाकायदा पेश हुआ।

आरामकुरसी पर पंडित जी लेटे थे, और नीचे बिछे हुए फर्श पर एक ओर राधे बैठा था और दूसरी ओर घूंघट निकाले हुए राधे की बहू, और मुंह खोले हुए सरला। कोयल सरला के पास खड़ी हुई थी।

"ज्वाला और जमुना क्यों नहीं आए ?" पंडित जी ने गंभीर स्वर में पूछा और एक बार राधे की ओर देखा और दूसरी बार सरला की ओर।

और राधे चुपचाप उठ कर, खुशी-खुशी चला ज्वालादत्त को बुलाने, और सरला के इशारे पर कोयल दौड़ चली जमुना को लाने के लिये।

अपने ब्याह के बाद जमुना के लिये यह पहला मौका आया था जब वह अपने पिता के सामने अपने पति की उपस्थिति में आई थी। घूंघट निकालना न उसने सीखा ही था और न पिता की उपस्थिति में वह ऐसा कर ही पा रही थी। और इसलिये लज्जा से लाल होकर वह नीचे तक सिर झुकाए अपनी छोटी और बड़ी भाभियों के पीछे छिपी-सी, सिकुड़ी-सिकुड़ाई आ बैठी, और राधे के पास बैठे अपने पति की ओर आंखें उठा कर देखने का उसका एक बार भी साहस नहीं हुआ। ज्वालादत्त भी संकुचित-सा, संज्ञिस-सा ही बना आ बैठा था वहाँ और जमुना के आ जाने के बाद स्त्रियों के उस गिरोह की ओर भी देख सकना उसके लिये असंभव हो गया।

"कहाँ है तेरा छोकरा ?' गंभीर स्वर में पंडित जी ने जमुना से पूछा।

"जी.....सो गया है," बहुत ही धीमी आवाज में जमुना ने किसी तरह जवाब दिया।

कुछ क्षण सन्नाटा रहा; सभी दम-साधे पंडित जी के फैसले के इंतजार में थे।

पंडित जी आज खास तौर से खुश दिखाई दे रहे थे। तृप्ति और

प्रसाद का एक स्निग्ध भाव उनके चेहरे पर था और उनके स्वर की गंभीरता एक सीमा तक आज बनावटी ही लग रही थी।

इसका कारण था। एक साथ ही इधर पंडित जी के अहंकार की कई प्रकारों से तृप्ति हुई थी। इलाहाबाद-जैसे बड़े शहर में उनका तबादला उनकी 'उन्नति' का ही द्योतक नहीं था, कलक्टरी की मंजिल से पहले की उनकी आखिरी सीढ़ी था। इसके अलावा, इलाहाबाद उनका प्रिय नगर था और अब वे वहाँ एक हाकिम बन कर आए थे।

दूसरी ओर अपने परिवार में भी उनकी अधिकार-परिधि इधर फिर से बढ़नी शुरू हुई थी और एक के बाद एक उनकी जीत पर जीत होती जा रही थी। ज्वालादत्त ने उनके अनुशासन को शिरोधार्य कर फर्स्ट डिवीजन में एफ० ए० पास करके ही नहीं, जमुना से और अपने बच्चे से अपने को पूरी तरह से अलग रख कर भी पंडित जी का लोहा मानने का पूरा प्रमाण दिया था। जमुना ने भी जो अपराध किया था उसका पूरा प्रायश्चित्त वह कर ही रही थी। पंडित जी का परिवार भी अब क्षीण न होकर फिर से संख्या-वृद्धि की ओर बढ़ रहा था और उनकी शासन-परिधि का भी विस्तार कर रहा था। अपनी पत्नी की और फिर यशोवर्द्धन की मृत्यु के बाद, और बाद को अपनी मां को भी खोकर, धीरे-धीरे पंडित जी अपने को ही छोटा होता महसूस करने लगे थे। रामगोपाल को भी ब्याह कर उन्होंने अपने परिवार को बढ़ाने की जगह उससे भी हाथ धोया था, और एक दिन आया था जब उन्होंने समझा था कि जमुना को भी उन्हें अपने घर से निकाल बाहर करना पड़ेगा। इतनी सारी चोटें, अपनी पारिवारिक शासन-परिधि की यह बढ़ती हुई क्षीणता, शायद अन्त में उन्हें पागल बना कर ही छोड़ती, अगर सरला ने आकर उस बढ़ते हुए अभाव की तरह-तरह से पूर्ति न की होती।

पर सरला जो मिली सो तो मिल ही गई, ऊपर से वे सब अभाव भी एक बार फिर, एक के बाद एक, नए सिरे से पूरे होने शुरू हो गए। जमुना के साथ साथ ज्वालादत्त ही नहीं, इन दोनों का यह साल भर का

छोकरा भी अब मिल गया है पंडित जी को, और एक यह कोयल मिल गई है मानो अचानक आसमान से टपकी हुई सी। अपनों, बिलकुल अपनों पर लात और घूँसे और चांटे जड़ने के लिये उनकी जमींदारी एक बार फिर बढ़ती दिखाई दे रही है।

और आज की पंडित जी की खुशी का प्रधान कारण यह भी है कि मिर्जापुर से चलने के पहले कल उन्हें अपने मझले बेटे रामगोपाल की चिट्ठी मिली थी जिसमें उसने सपरिवार पंडित जी की शरण मांगी थी। ससुर के चहेते होने पर भी उसकी अपनी सास से नहीं पट रही थी और उसकी बहू भी अब अपनी मां से विद्रोह कर बैठी थी। रामगोपाल की उस चिट्ठी में मियाँ-बीबी दोनों की ओर से कसमें खाई गई थीं कि पंडित जी जैसा कहेंगे वे दोनों करेंगे, अगर पंडित जी उन्हें अपने पास बुला ल। और परम परितृप्त होकर पंडित जी ने उन्हें इलाहाबाद आने को लिख दिया था। रामगोपाल के लिये इलाहाबाद में ही किरानी की कोई नौकरी दिला देना उनके लिये कोई कठिन काम नहीं था।

और इस तरह अब उनके परिवार में, उनकी शासन-परिधि में, एक और इजाफा होने जा रहा था—चार और प्राणियों का, रामगोपाल और उसकी बहू के अलावा उनके दो बच्चों का भी, जिन्हें पंडित जी ने अब तक देखा भी नहीं था—दो-ढाई साल की एक लड़की और दो-तीन महीने का एक लड़का!

देवता इस समय शाप के नहीं वरदान के 'मूड' में थे।

"घर पर रह कर फर्स्ट डिवीजन लाएगा या होस्टल में रह कर?" कुछ देर से चले आने वाले सन्नाटे को अंत में भंग करते हुए पंडित जी ने बिना किसी की ओर ताके प्रश्न किया। स्वर में गंभीरता रहने पर भी कोई कठोरता नहीं मालूम पड़ी किसीको।

प्रश्न ज्वालादत्त से किया गया था यह सभीके सामने स्पष्ट था, पर ज्वालादत्त के पास इसका कोई जवाब नहीं था। पंडित जी का यह प्रश्न इतना अप्रत्याशित था कि ज्वालादत्त और जमुना सम्बंधी पंडित जी

के आखिरी फैसले के बारे में सभी के सन्देह दूर हो गए। राधे और राधे की बहू दोनों ने अलग-अलग सरला के दरबार में पैरवी की थी कि वह ज्वालादत्त और जमुना के मिलने-जुलने का रास्ता आसान बनाने में उनकी मदद करे। पर सरला की मदद की अब शायद कोई जरूरत ही नहीं रह गई थी। पंडित जी के इस प्रश्न से ही यह स्पष्ट था कि उन दोनों को माफी मिल चुकी है। ज्वालादत्त घर पर रहे चाहे होस्टल में, दोनों के मिलने-जुलने पर रोक नहीं रहेगी यह राधे और राधे की बहू दोनों अब स्पष्ट देख रहे थे।

पर पंडित जी की इतनी नरमी से घबड़ाया ज्वालादत्त खुद ही। एफ० ए० में फर्स्ट डिवीजन पाकर बी० एस-सी० भी उसी तरह पास करने की आशा उसके दिल में पैदा हो चुकी थी और इंजीनियरी करने का सपना काफी प्रबल हो उठा था। घर पर रह कर क्या वह अपने ऊपर काबू रख पाएगा? और कुछ क्षणों तक अपने ही साथ लड़ाई करने के बाद अन्त में साहस करके वह बोल ही उठा—"जी, होस्टल में रहूँ तो पढ़ाई ठीक हो सकेगी।"

ज्वालादत्त की इस बात में जोर था, और राधेश्याम को उसके प्रति श्रद्धा हुई। पर राधे की बहू को यह बात अच्छी नहीं लगी। जिसे यहाँ की पढ़ाई करके फिर बरसों के लिये दूर रुड़की चले जाना होगा वह किस पत्थर के दिल का बना है जो ऐसी बात कह सका? तो फिर ब्याह ही क्यों किया था हमारी जमना बीबी से? वह क्या घर पर पड़ी कलपा ही करेगी जिन्दगी भर?

पर ज्वालादत्त की बात का विरोध हुआ स्वयं पंडित जी की ओर से। अगर उसने घर पर रहने की इच्छा किसी इशारे से भी प्रकट की होती तो निश्चित था कि पंडित जी उसे होस्टल में रखने की ही व्यवस्था करते, काफी खर्चे का बोझ अपने ऊपर बढ़ा कर भी। पर उनकी यह हिमाकत कि वह घर पर न रह कर होस्टल में रहना चाहे?

"खर्चा कौन देगा होस्टल का?" भौंहें चढ़ा कर पंडित जी ज्वालादत्त

को अपनी तेज आँखों से छेदते हुए गरजे। "जो घर पर रह कर फर्स्ट डिवीजन नहीं ला सकता वह निकम्मा है।"

और ज्वालादत्त की अग्नि-परीक्षा की ही पूरी तैयारी करके अपनी इस पारिवारिक बैठक में पंडित जी, अपने इस नए बंगले में किस-किसके रहने को कौन कमरा दिया जायगा—इस समस्या के विस्तृत समाधान में लग गए। जमुना को और कोयल को एक कमरा दिया गया—सरला के और राधे की बहू के कमरों के बीच, और ज्वालादत्त को अन्तःपुर के खण्ड से विपरीत दिशा में आखिरी कोने का एक छोटा-सा कमरा मिला, जिस पर रामदीन की पूरी नजर रह सकती थी।

पर इस बार उन पर नजर रखने या उनकी निगरानी करने की खास जिम्मेदारी किसी को नहीं दी गई। बैठक को बर्खास्त करने के पहले पंडित जी ने कड़ी आवाज में ज्वालादत्त को नहीं मानों सबों को सुनाते हुए सिर्फ इतना कहा कि—"अगर फिर कोई खुराफात हुई तो न आगे की पढ़ाई होगी और न इस घर में जगह मिलेगी किसी को!"

और खुशी के साथ-साथ गम का एक बोझ लेकर ही उठे वहाँ से ज्वालादत्त और जमुना, और राधे की बहू और राधे।

[४]

सबसे अधिक यातना ज्वालादत्त के पल्ले पड़ी। एक ही घर में जमुना के साथ रहते हुए भी उसे न पाने की छटपटाहट ने उसका पढ़ना-लिखना बिलकुल ही हराम कर दिया और दिन-रात वह इसी चिंता में घुलने लगा कि अपनी इस समस्या का वह क्या समाधान निकाले। जमुना से दूर रह कर उसने जो मानसिक कष्ट पाया था उससे अन्त में उसे लाभ ही हुआ था और मन-ही-मन पंडित जी का आभार ही माना था उसने, कि उन्होंने उसे प्रलोभन से बचा कर आदमी बनने का मौका दिया। पर दिन-रात अपनी आँखों के सामने इतना बड़ा प्रलोभन रख कर वह कैसे

अपने मन को पढ़ने-लिखने में लगा सकेगा ? विवाह के बाद के कुछ ही दिनों में वह देख चुका था कि वह उन महापुरुषों में नहीं है जो प्रलोभन को सामने रख कर भी उस पर विजय पाते हैं।

और फिर, पढ़ाई-लिखाई हो पाएगी या नहीं हो पाएगी इस चिंता से बड़ी तो यह यातना थी कि जमुना सामने थी पर उसे वह पा नहीं सकता था। जलते हुए जिस कोयले को धीरे-धीरे राख से ढक कर बड़े प्रयत्नों से उसने ठंढा कर रखा था उस पर नित्य नया ईंधन पड़ रहा था और धू-धू कर उसे जला रहा था। इसमें तो यही अच्छा था कि वह जमुना को पाकर इस जलती ज्वाला को शान्त होने देता और उसके बाद पढ़ने-लिखने में मन लगा कर देखता कि उस दिशा में फिर भी वह कुछ कर पाएगा या नहीं।

और तब उसकी मदद की, और किसी ने नहीं, सरला भाभी ने।

इलाहाबाद में पंडित जी के आने के आठ-दस दिन बाद की बात है। तीन दिन के दौरे का प्रोग्राम बना कर तीसरे पहर पंडित जी दौरे पर चले गए थे और रात का खाना-पीना कुछ जल्दी ही निपट चुका था उस दिन। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था और घर के सभी लोग अपने-अपने कमरों में जा दुबके थे सात-आठ बजते-बजते। और ज्वालादत्त भी अन्दर से सिटकिनी लगा कर आज अपने ससुर की अनुपस्थिति से लाभ उठा बिछौने पर लेटे-लेटे ही कोई किताब पढ़ रहा था सिरहाने रखे लेम्प की रोशनी में। पर पढ़ वह खाक रहा था! आज की रात उसके ससुर घर पर नहीं थे, और एकमात्र सरला का ही भय था जिसने ज्वालादत्त को रोक रखा था आज अपनी जलती आग को बुझाने से।

अचानक वह चौंक पड़ा। कुछ आवाज हुई क्या ? नहीं तो ! उसका भ्रम था शायद। पर नहीं, फिर आवाज हुई, दरवाजे पर किसी नरम हाथ की बहुत ही धीमी मीठी आवाज। ज्वालादत्त के सारे बदन में बिजली दौड़ गई। शर्मीली और डरपोक इस जमुना का इतना बड़ा साहस ! किसीने देख लिया तो ?

पर उसके लिये सोचने-विचारने का कोई सवाल ही नहीं था। जब जमुना आई है तब वह कुछ सोच-समझ कर ही आई होगी। और अगर कुछ नहीं भी सोचा-समझा हो तो भगवान मालिक है।

और जल्दी से उठ कर बहुत धीरे-धीरे, कि जरा भी आवाज न होने पाए, उसने दरवाजा खोल दिया। वह देख कर स्तब्ध रह गया। बरामदे के लैम्प की पूरी रोशनी में जमुना नहीं सरला भाभी खड़ी थीं, अपने चेहरे पर एक मद-भरी मुसकराहट लिये।

पल भर में ही ज्वालादत्त पसीना-पसीना हो गया।

"क्या है भाभी ?" सूखते गले से बड़ी मुश्किल से वह एक हलकी-सी आवाज निकाल पाया।

"इस घर की देवी हूँ न मै," अपनी सहज-मधुर आवाज में पर कुछ धीमे स्वर में ही सरला ने अपनी मुसकराहट को चेहरे पर और भी दूर तक फैलाते हुए कहा, "वरदान देने आई हूँ, जो चाहो माँग लो।"

ज्वालादत्त के मुंह से कोई जवाब नहीं निकला।

"घबड़ा गए लाला ?" सरला ने चुपके से कहा। "इस घर की देवी का वरदान नहीं चाहते तो अपने हृदय की देवी का वरदान तो चाहते हो न ?" और अपनी हँसी को रोकने के लिये सरला ने अपने आंचल का एक हिस्सा अपने मुंह में ठूंस लिया।

और उस रात सरला ने ही जमुना और ज्वालादत्त को मिला दिया, अपने ही कमरे में। वह खुद जमुना के कमरे में जमुना की खाट पर सोई, कोयल की बगल में।

और यह व्यवस्था एक कायमी व्यवस्था बन गई। पंडित जी की जो रातें दौरे पर बीततीं वे जमुना और ज्वालादत्त के लिये सोने-चांदी की रातें बन कर आतीं और उनके दिल सरला भाभी को दुआएं देते। धीरे-धीरे बात सभी को मालूम हो गई, एक पंडित जी को छोड़ कर। पर ज्वालादत्त नहीं तो जमुना पर अन्य सबों का प्यार था, और फिर जिस काम के पीछे सरला स्वयं थी उसमें बाधा देने वाला या उसके बारे में

पंडित जी के पास चुगली करने की हिम्मत करने वाला वहाँ कोई नहीं था। कोयल पर सरला का पूरा प्रभाव था ही, और पंडित जी के मँझले बेटे रामगोपाल और उनकी स्त्री का भी – जो इन दिनों इलाहाबाद ही थे—इस मामले में अपना कोई स्वार्थ नहीं था सरला या जमुना के खिलाफ जाने में।

[५]

डर सभी को तब हुआ जब जमुना फिर गर्भवती हुई।

पर इस बार भी सरला ने ही अभय-दान दिया।

"पंडित जी को मैं मना लूंगी जमना बीबी, अगर तुम मुझे मना लो।" उसने पूरे आत्म-विश्वास के साथ हँसते हुए जमुना से कहा, और उसकी ठोड़ी पकड़ कर जोर से हिला दी।

शरमाती हुई जमुना ने अपना डर छिपाते हुए जवाब दिया—"तुमको तो मैं नहीं मनाऊँगी भाभी।"

पर सरला यों मानने वाली नहीं थी। "तुम्हारा यह बच्चा मेरा होगा बीबी, यह वादा करो तो पंडित जी को अभी से मना कर रखूँ मैं," और उत्सुकतापूर्वक वह जमुना के चेहरे को पढ़ने की कोशिश करने लगी।

"तो यह मुन्ना क्या तुम्हारा नहीं है भाभी, जो ऐसी बात करती हो?" कृतज्ञ जमुना अपनी पुरानी ईर्ष्या अब तक भूल चुकी थी।

"ऐसी बातों में नहीं आने वाली हूँ मैं," सरला दृढ़-संकल्प थी, और कई दिन तक बार-बार यह चर्चा छेड़ती ही रही वह जमुना से, और जब उसने जमुना के दिल पर पूरी तरह से यह छाप डाल ही दी कि वह हँसी नहीं कर रही है और एक बच्चे को अपना मान कर पालने-पोसने की आकांक्षा बहुत ही तीव्र है उसके मन में, तब न चाहने पर भी अन्त में जमुना ने यह वादा कर दिया—कुछ तो पंडित जी के गुस्से के खिलाफ उसकी मदद पाने के लोभ में और कुछ सचमुच ही अपनी

विधवा भाभी के प्रति तरस खाकर। और अन्त में यह बात पक्की हो गई, और जब जमुना ने अपनी बड़ी भाभी को साक्षी बना कर यह बात स्वीकार कर ली तभी सरला ने यह प्रसंग पंडित जी के सामने छेड़ा।

पंडित जी क्रुद्ध हुए, पर उतने नहीं जितने पहली बार हुए थे। और सरला उनके दोनों पांव पकड़ कर उन पर अपना आंचल फैला कर बैठ गई, और आँसुओं से भरी अपनी बड़ी-बड़ी आँखें पंडित जी की कठोर आँखों में डाल कर उसने उन्हें परास्त कर दिया।

"कोयल तो है तेरे पास,...और किस-किसको लेगी?" पिघलते-पिघलते भी पंडित जी ने आखिरी बार अपने पांव जमाए रखने की कोशिश की।

"कोयल क्या नन्हें से मुन्ना-मुन्नी की जगह ले लेगी?" रोती-रोती सरला ने कुछ कड़े पड़ते हुए स्वर में जवाब दिया, और फिर तुरन्त ही नरम पड़ते हुए कहा—"और वह कितने दिन रहेगी इस घर में?..... किसके सहारे काटूँगी मैं अपने करम-फूटे दिन?"

"फिर वही बात?" पंडित जी एकदम गरज उठे। "किसने कहा तेरा करम फूटा है? मेरे रहते कौन उँगली उठा सकता है तुझ पर?"

अभागी सरला कैसे कहे पंडित जी से, कि वे अमर होकर नहीं आए हैं, और उनके बाद भी सरला को अपनी पहाड़-सी जिन्दगी काटने के लिये रह जाना पड़ेगा इस बेगानी दुनिया में!

पर सरला का काम हो चुका था। उसका अमोघ अस्त्र पंडित जी के कलेजे को छेद कर उस पार जा निकला था। "तो रोती क्यों है," उन्होंने नरम पड़ते हुए अपनी गगन-गंभीर आवाज में कहा, "पाल लेना उस बच्चे को।...पर अगर ज्वाला की पढ़ाई में गफलत हुई तो..."

"तो आप जो चाहे कीजियेगा, मेरा बच्चा मुझे मिल जाने दीजिये।"

पर बच्चा सरला को नहीं मिल सका। जमुना का यह बच्चा—लड़की थी यह—तीन दिन ही जीवित रह कर चल बसा।

जमुना के साथ-साथ उसकी बड़ी भाभी भी, इस बार पहलेपहल, मां बनी थीं और जमुना की बच्ची से बारह दिन पहले उनके लड़का हुआ था—उनकी कितने साध की और कितने वर्षों की निराशा के बाद की पहली सन्तान। किन्तु उनकी तन्दुरुस्ती बेहद खराब थी; इस बच्चे के गर्भ में आने के बाद से ही उन्हें दमा की बीमारी शुरू हुई थी और अपनी पहली सन्तान के लिये भी उनकी छातियाँ करीब-करीब सूखी हुई थीं।

और जमुना जब अपनी बच्ची को जन्म देने के तीन दिन बाद ही खोकर सहसा समझ नहीं पा रही थी कि यह क्या हो गया, तब उसकी बड़ी भाभी ने दूध से भरी हुई उसकी उन निरर्थक छातियों को सार्थक बना दिया था अपने उस नवजात शिशु को उसकी गोदी में देकर और उसके ललचाए हुए मुंह में उसकी छाती का मुंह लगा कर।

जमुना को तो अपने मुन्ना के अलावा एक और नया मुन्ना मिल गया, पर सरला की इतनी साध का वह बच्चा मिलता-मिलता भी उससे छिन गया। पर वह अब दोष भी भला किसे देती?

आठवां परिच्छेद

[१]

ज्वालादत्त और जमुना की विरह-यातना को दूर करके उन्हें एक-साथ रात बिताने का मौका देने में उनकी सरला भाभी का सिर्फ यही स्वार्थ नहीं था कि उनके दूसरे बच्चे को अपना कर मातृत्व के लिये छट-पटाते हुए अपने हृदय की एक बहुत बड़ी प्यास वह बुझा सके। उसके दिल में एक दूसरी भी आग जल रही थी जिसे ज्वालादत्त की सलज पर भूखी-सी आँखो ने तभी से भड़काना शुरू कर दिया था जबकि सरला ने उसे पहले-पहल देखा था। ज्वालादत्त नहीं जानता था, पर ज्वालादत्त का नाम सुनते ही सरला के सारे बदन में बिजली की एक लहर-सी दौड़ जाती थी, और उसकी उन आँखो की दृष्टि का मुकाबला करने पर तो वह अपने को मानों खो ही बैठती थी।

और सरला उन नारियो में थी जिनका वैधव्य उनके नारीत्व को कुचल नहीं पाता। फिर, उसके नारीत्व को तो उसके वैधव्य ने कुचलना चाहा भी नहीं था।

पर ज्वालादत्त इस मामले में जितना संयमी या नीतिपरायण था उससे अधिक भीरु।

अपनी विभिन्न भावभंगियों, अपनी आँखों की चितवनों और अपने शब्दों के पीछे छिपे हुए रहस्यपूर्ण इंगितों से भी जब सरला उसे अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकी और समय-असमय बीच में उसका रास्ता रोक साधारण छेड़छाड़ से भी जब उसने अपना जादू बेकार होते और उलटे उसे अपने से विमुख होते देखा तब एक बार उसने अपने इशारे को ज्यादा से ज्यादा साफ करते हुए ज्वालादत्त की आँखों में अपनी

हँसती हुई आँखें डाल कर पूछा—"तुमने तो देवी का वरदान पा लिया लाला, पर देवी को क्या मिला ?"

ज्वालादत्त सरला भाभी की इस बात का मतलब नहीं समझ सका; देवी सरला ने जमुना को नहीं अपने को बनाया था यह उसके ध्यान में आया ही नहीं।

"क्यों ? देवी को मैं मिल रहा हूँ—इससे भी बड़ा वरदान उसे और क्या चाहिये ?"

"तो फिर इस कमरे में आकर क्यों बैठे हो लाला," सरला ने चोट खाकर व्यंग कसा, "चले जाओ न सीधे अपनी देवी के मन्दिर में।··· मेरी मदद किसलिये लेने आए हो ?" यह बातचीत सरला के ही कमरे मे हो रही थी जब कि नियमानुसार, पंडित जी की अनुपस्थिति में, उस रात को ज्वालादत्त सरला के बुलावे पर उसके कमरे मे दाखिल हुआ था।

और तब ज्वालादत्त ने अपनी गलती महसूस की। "भूल हुई भाभी, माफ करो," नम्रता के साथ उसने कहा, "देवी तो साक्षात मेरे सामने खड़ी है·····इसीके वरदान से तो हम मिल पा रहे हैं···" और सचमुच कृतज्ञता के साथ उसने विनीत आंखों से सरला भाभी की ओर ताका।

"तो बताओ फिर, मुझे क्या दोगे बदले में ?" सरला ने उन आँखों की उस भोली चितवन से और भी उत्तेजित होकर एक ऐसी आजिजी के साथ कहा जो ज्वालादत्त के लिये बिलकुल नई थी।

वह घबड़ा गया। "मै तुम्हें क्या देने लायक हूँ भाभी ?" सूखते हुए गले से उसने धीमी आवाज में कहा।

"तुम ?···तुम क्या नहीं दे सकते लाला ?···" सरला का भी गला खुश्क हो गया था। और उसने कहना चाहा कि "जो जमना बीबी को चाहिये वह क्या और किसी को नहीं चाहिये लाला ?"—पर यह बात उसके मुँह से निकल नहीं सकी।

और वह रात, सारी की सारी, जागते और अपने बिस्तरे पर जमुना के कमरे में छटपटाते हुए काटी सरला ने।

दूसरी रात भी पंडित जी बाहर ही थे, और ज्वालादत्त को अपने कमरे में इन्तजार करते-करते आधी रात हो चली—पर बुलावा नहीं आया।

यों, यह कोई नई बात नहीं थी। पहले भी दो-एक बार इतनी देर हुई थी, पर ज्वालादत्त को कल की बात याद आई और सरला भाभी की नीयत के बारे में कभी-कभी जो उसे घबड़ाहट-भरा सन्देह होता था वह उसके मन में दौड़ गया। क्या सचमुच सरला भाभी कुछ चाहती है उससे, और क्या इसीलिये आज सजा मिल रही है उनको ?

पर अन्त में इन्तजारी की वह बेबसी खत्म हुई, और उसके दरवाजे पर सरला के हाथ की हलकी आवाज हुई। दरवाजा सिर्फ भिड़ा ही हुआ था, और उसे खोल कर जब तक वह बाहर आया तब तक सरला गायब हो चुकी थी। उसे खुशी ही हुई उसका मुकाबला करने से छुट्टी पाकर।

दबे-पांवों धीरे-धीरे वह सरला के कमरे के दरवाजे पर आया। हलका धक्का देने पर ही दरवाजा खुल गया और अंधेरे में ही वह अभ्यास के अनुसार टटोल-टटोल कर पलंग तक पहुँच गया।

पर जमुना ने तब तक भी कोई आहट नहीं दी, न डरी हुई धीमी आवाज में सदा की भाँति उसे सावधान ही किया—"धीरे से...संभल कर !"

क्या नींद आ गई है जमुना को ?—उसने सोचा, और रजाई के अन्दर लिपटी-पड़ी जमुना के बदन पर अपने हाथों का बोझ डाल कर झुकते हुए धीरे से उसने पूछा—"सो गई हो क्या ?"

पर जमुना कुछ नहीं बोली, और न हिली-ही-डुली। और ज्वालादत्त ने रजाई का एक किनारा जमुना के बदन के नीचे से खींच कर रजाई के अन्दर अपना रास्ता बनाया और उसके पास जाकर लेट गया।

और अचानक जमुना ने अपनी दोनों बांहों में ज्वालादत्त को कस लिया और अपनी छाती से लगा लिया, इतना कस कर कि ज्वालादत्त के लिये सांस लेना मुश्किल हो गया।

ज्वालादत्त ताज्जुब में पड़ गया। पहले तो कभी ऐसा नहीं किया था जमुना ने।

पर जमुना के बालों से तो यह गंध भी कभी नहीं आई थी, और और-भी बहुत-कुछ मानों कुछ नया-नया सा लगा ज्वालादत्त को। और जोर लगा कर उस बाहुपाश को कुछ ढीला करके जब उसने जमुना के कान की बालियों को टटोलने के लिये हाथ बढ़ाया तब जमुना नहीं सरला की आवाज निकली उस मुंह से—"घबड़ा गए लाला?"

डर से कलेजा धक कर उठा ज्वालादत्त का। बड़ी मुश्किल से वह कह पाया—"छोड़ दो भाभी ··जाने दो मुझे।"

"जाने अब कैसे दूँगी लाला," क्रुद्ध नागिन की तरह सरला फुफकार उठी, "तुम्हें अब छोड़ दूँगी तो क्या मेरी गई-हुई लाज मुझे मिल जाएगी लौट कर?···" और फिर एक बार और ज्वालादत्त को अपनी बांहों में जोर से कस कर सरला ने अपने ओठों से ज्वालादत्त की आंखें चूम लीं। "जाना चाहो तो जाओ, पर मैं शोर मचा दूँगी कि तुमने हमला किया है मुझ पर," सरला ने अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ते हुए कहा और ज्वालादत्त पूरी तरह परास्त हो गया।

[२]

वह रात ज्वालादत्त की जागते ही बीती। सरला जब सो गई तब वह चुपके-से उठ कर धीरे-धीरे, खोया हुआ सा, अपने कमरे में आकर अपनी खाट पर पड़ गया, पर बाकी रात करवटें ही बदलता रहा। यह किस दलदल में आ पड़ा है वह भगवान, किस मायापुरी में आकर वह फँस गया है? बार-बार उसके मन में आया कि वह इसी दम उठ कर, बिना किसीको कोई खबर दिये यहां से निकल भागे, पर इसकी भी शक्ति नहीं रह गई थी उसके कायर बन गए मन में।

बचपन से ही ज्वालादत्त की नाव बिना लंगर की थी। उसने

समझा था कि उस नाव को एक लंगर मिल गया है, और अब वह अकारण इधर-उधर मारी-मारी नहीं फिरेगी। पर कहाँ ? कहाँ है वह लंगर ? कौन है उसका इस घर में ? जमुना ? जमुना के साथ उसका ब्याह जरूर हुआ है और कर्तव्य की दृष्टि से जरूर उसने यही माना है कि वह उसकी है। पर उसे खुद क्या मिला है इस जमुना से भी ? ब्याह के बाद के इन दो से भी अधिक बरसों में कितने नजदीक आ पाए हैं वे दोनों एक-दूसरे के, और कितना जान पाए हैं एक-दूसरे को ?

पर इसमें जमुना बेचारी का भला क्या दोष ? पंडित जी की गृहस्थी में उनका आश्रित बन कर रहने लिये जब तक वह मजबूर है तब तक न जमुना उसकी है न वह खुद अपना है।

किन्तु यह विचार भी उसके क्षोभ को, उसकी आत्मग्लानि की पीड़ा को हलका नहीं कर सका। इंजीनियरी पास करना तो दूर की बात है, अगर बी० एस-सी० की परीक्षा में भी वह किसी तरह पास भर हो जा सके, तभी न अपनी अलग गृहस्थी बना कर पूरी तरह स्वतंत्र होने की आशा कर सकता है वह ? किन्तु इतना भी वह कैसे कर पाएगा इस दलदल में दिन पर दिन फँसते चले जा कर ?

पर कोई उपाय नहीं था। इतना तो उसे किसी तरह मन मार कर करना ही होगा, अगर अपनी बिना लंगर की नाव का लंगर उसे बिठाना है, अपने आहत-स्वाभिमान से सदा के लिये छुट्टी पानी है।

और दूसरे दिन से जो सबसे बड़ी लड़ाई उसे अपने साथ लड़नी पड़ी वह थी मोहिनी सरला के नागपाश से अपने को दूर-दूर रखने की। इस लड़ाई में उसे बहुत-कुछ सफलता मिली भी, पर सदा नहीं। और जब-जब उसकी पराजय हुई, उसने अपने मन को कम नहीं कोसा, क्योंकि वह जानता था कि किसी न किसी हद तक उसकी अपनी कमजोरी भी इसके लिये जिम्मेदार थी।

और ज्वालादत्त की पढ़ाई में बार-बार, तरह-तरह की, बाधाएँ आती ही चली गईं। उसके स्वाभिमान पर चोट-पर-चोट पड़ती थी और उन

सबको, बिना किसी प्रकार के प्रतीकार के, उसे हजम करना पड़ता था। जमुना और अपने बच्चे पर भी तो अपना गुस्सा पूरी तरह से उतारने के लिये वह अपने को आजाद नहीं पाता था!

अपने ससुर के क्रोध को और उनकी क्षण-क्षण बदलती हुई आज्ञाओं को तो खैर किसी तरह वह सह लेता था पर इस सरला भाभी की 'दया' को या उसकी प्रतिहिंसा को वह किसी तरह भी बरदाश्त नहीं कर पाता था। घर की मालकिन थी यह सरला भाभी ही, और ज्वालादत्त की जिन्दगी को अधिक-से-अधिक सुविधापूर्ण और आरामदेह बना देना या ज्यादा-से-ज्यादा तकलीफदेह और असुविधापूर्ण बना देना उसकी साधारण-से-साधारण इच्छा पर निर्भर करता था। खाना इस घर में तरह-तरह के किस्मों का और भिन्न-भिन्न श्रेणियों का था, और पंडित जी को छोड़ बाकी सबों के भोजन की श्रेणी में सरला जब जो चाहती थी परिवर्तन कर दे सकती थी। इस घर के एकमात्र दामाद के नाते ज्वालादत्त के लिये यही कम अपमानजनक नहीं था कि उसकी आँखों के सामने उसके ससुर का भोजन तो एकदम राजसी हो और उसका एकदम ही रूखा-सूखा। जहाँ पंडित जी के नाश्ते में पिस्ता, बादाम, घी और दूध की विशेष मात्रा रहती थी वहाँ उसे नाश्ते में मिलता था एक पाव दूध और उसके साथ कभी छौंके हुए चने, कभी थोड़ा-सा कम-घी वाला हलुआ जो बाकी लोगों के लिये अलग बनाया जाता था, और कभी घर की बनी कोई बासी मिठाई। रोटी के वक्त भी पंडित जी की दाल के ऊपर छौंके हुए घी का ऐसा आवरण रहता था कि उसके नीचे कटोरे के अन्दर दाल तलहटी में बैठी-सी लगती थी, और पंडित जी की फूली-फूली गरम-गरम रोटियाँ उनकी थाली के पास रखे एक फूल के बेले में डाल दी जाती थीं और घी में तरबतर सबसे नीचे की रोटी उसमें से निकाल-निकाल कर पंडित जी अपनी थाली में रखते जाते थे। और ज्वालादत्त उनके साथ भी खाने बैठ कर इस सम्मान और इस स्वाद से वंचित ही रह जाता था। किन्तु सरला की जब किसी कारणवश कृपा

होती थी—कभी-कभी यह कृपा किसी उद्देश्य-सिद्धि की दृष्टि से कई-कई दिन तक लगातार बनी रहती थी—तब ज्वालादत्त को पंडित जी के साथ खाने नहीं बैठने दिया जाता था और तब सरला स्वयं उसके सामने बैठ कर तरह-तरह के स्वादिष्ट पदार्थ उसकी थाली में रखती जाती थी, और उस दिन ज्वालादत्त देखता था कि उसकी रुचि के कई पदार्थ बनाए गए हैं, जिन्हें यत्नपूर्वक उसकी थाली में परोसते वक्त सरला यह कहती भी जाती थी—"तुम्हारे ही लिये बनाई है खीर मैंने आज लाला·····यह हलुआ सूजी का···आलू-मटर की ये कचौरियाँ···ये दही-बड़े···"

पर जब सरला नाराज होती थी उससे, या सजा देती थी उसे अपने प्रति किये गए किसी अपराध की, तो उसकी रुचि की तो एक भी चीज नहीं ही मिलती थी उसे उस दिन, बल्कि जिन चीजों से उसे खास नफरत थी वही उसकी थाली में नजर आती थीं—मूंग की दाल, बैगन और करेले की तरकारियाँ, आधी-कच्ची रोटियाँ, वगैरह, वगैरह।

और इसलिये ज्वालादत्त पर जब सरला की 'कृपा' के दिन होते थे तब भी ज्वालादत्त की स्वाभिमान-भावना उसे बरदाश्त नहीं कर पाती थी।

वह यह भी कम ही मौकों पर समझ पाता था कि कब कौन सी सुविधा या असुविधा उसे अपने ससुर के आदेश से मिल रही है और कौन सी सरला भाभी की इच्छा के कारण। कुछ ही महीनों के अन्दर उसका कमरा कम-से-कम चार-पाँच बार बदला गया—कभी सरला के कमरे के निकट उसे कमरा मिला, कभी बहुत दूर; कभी जमुना के कमरे के निकट मिला, कभी उससे भी बहुत दूर। और होस्टल में जाने की बात कितनी बार चल-चल कर रुक गई, और एक बार तो उसे बहुत ही अधिक निराश होना पड़ा जब कि होस्टल में एक कमरा ठीक हो जाने पर और उसकी फीस जमा कर दी जाने पर भी अन्त में वह व्यवस्था रद्द हो गई और उसे सराय से भी बदतर मालूम होने वाली अपनी उस ससुराल में ही बने रहने के लिये विवश हो जाना पड़ा।

दिन-पर-दिन संचित होता हुआ उसका क्षोभ अन्त में जाकर निकलना शुरू हुआ गरीब जमुना पर और कभी-कभी उनके बच्चे पर, और एक दिन—उन दिनों सरला की ही कृपा से ज्वालादत्त की खाट जमुना के कमरे में पड़ने लगी थी और कायला सोती थी सरला के कमरे में—ज्वालादत्त ने पंडित जी और सरला के खिलाफ जमे हुए क्रोध को काफी बेरहमी के साथ निरीह जमुना पर शान्त किया। बेवकूफ जमुना ने अपने प्रति उसकी दिन-पर-दिन घटती हुई दिलचस्पी और बढ़ते हुए चिड़चिड़ेपन की ओर किसी प्रसंग में हलके ही स्वर में उसका ध्यान खींचा तो तैश में आकर उसने कह दिया—"मेरा बस चले तो इस कमरे में पांव भी न रखूँ।"

जमुना के लिये भी यह वाक्य असह्य हो उठा और अपनी बड़ी और मँझली भाभियों को आपसी चर्चा में भनक पाकर सन्देह का जो छोटा-सा कीड़ा उसके दिल में कुछ दिनों से घर करता आ रहा था उसने उसे विवश कर दिया जवाबी हमला करने के लिये। बगैर सोचे-समझे, परिणाम का खयाल किये बिना, वह कह बैठी—"तो जाओ न छोटी भाभी के ही कमरे में।"

तीर सीधा जाकर ज्वालादत्त के अन्तःकरण में विंध गया। जमुना बेचारी जानती भी नहीं थी कि उसका वह संदेह कितना सही था या कितना गलत। पर दूसरे ही क्षण उसके गाल पर एक जोर का तमाचा लगा, और तेल के टिमटिमाते हुए चिराग की हलकी रोशनी में सामने की दीवाल पर, बिस्तरे पर से तेजी से कूद कर खड़े हो गए अपने पति की दैत्य-जैसी लम्बी-चौड़ी छाया देख कर ज्यों ही उसके मुंह से एक हलकी-सी चीख निकली कि ज्वालादत्त ने उसका मुंह बन्द कर उसमें उसकी साड़ी के पल्ले का गोला बना कर ठूंस दिया। उसके बाद जमुना की जो दुर्गति हुई और जो अपमान हुआ, उसे वह सारे जीवन नहीं भूल सकी। ज्वालादत्त ने उसके मुंह को खूब कस कर बांधा, और फिर उसकी बांह पकड़ कर उसे खाट से नीचे खींच लाया और जमीन पर गिरा कर

उसकी पीठ पर, उसकी छाती पर, उसके सिर पर, लातों और घूंसों की बौछार कर दी। बन्द मुंह से भी बेचारी जमुना अगर कोई आवाज निकाल सकती तो भी न निकाल सकी; पंडित जी की मार के अभ्यास ने स्वतः ही उसकी आवाज बन्द कर रखी थी।

पंडित जी की मार से तकलीफ चाहे जो होती रही हो, वह शर्म जमुना को कभी नहीं हुई थी जो पति की मार खा कर हुई। और अपनी यह शर्म कभी भी उसने किसी के सामने नहीं खोली। अगले दिन उसका बदन कई जगह सूजा हुआ था, सारे शरीर में बेहद दर्द था, और बुखार भी। पर असली कारण उसने कभी किसी को नहीं जानने दिया।

और इस घटना के बाद पति-पत्नी एक-दूसरे से दिन-पर-दिन दूर ही होते गए; सिवा भय के ज्वालादत्त के प्रति जमुना का और कोई भाव नहीं रह गया। यह घटना तब घटी थी जब जमुना का दूसरा बच्चा उसके गर्भ में था—करीब दो महीने का। इस मार के बाद उसकी कोख में कभी-कभी बड़े जोर से दर्द उठता था—उसे बेहोश-सा कर देने वाला दर्द, और जब उसका बच्चा होकर तीन दिन में ही चल बसा तब जमुना के दिल में यह बात जम कर बैठ गई कि उस पर उस दिन जो भयंकर मार पड़ी थी अपने पति की, उसके कारण ही उसके बच्चे की मृत्यु हुई। और जमुना के दिल में ज्वालादत्त के प्रति जो भय पैदा हो गया था उस मार के बाद, वह अब घृणा में बदल गया।

ज्वालादत्त भी मन-ही मन अपने को अपराधी मानता था उस बच्चे की मृत्यु के लिये, और उसके बाद से जमुना का सामना करना उसके लिये भी दिन-पर-दिन कठिन होता गया। अगले साल सितम्बर के महीने में उनका वह दूसरा बच्चा हुआ, और बी० एस-सी० की उसकी अन्तिम परीक्षा के कुछ ही महीने रह गए तब। जमुना और सरला दोनों से दूर ही दूर रहने की कोशिश करते हुए उसने भगीरथ आत्म-संयम के साथ पढ़ने-लिखने में अपनी सारी शक्ति केन्द्रीभूत कर दी। और उसने मन-ही-मन बहुत बड़ी निवृत्ति महसूस की जब उसकी परीक्षा

के तीन-चार महीने पहले ही उसके ससुर का इलाहाबाद से तबादला हो गया और वे कलक्टर बना कर सीतापुर भेज दिये गए। ससुर के कठोर शासन से उसे छुट्टी मिली और पग-पग पर मिलने वाले उस प्रलोभन से और उस अन्तर्द्वन्द्व से भी छुटकारा मिला जो सरला भाभी के कारण उसका सबसे बड़ी समस्या बन गया था।

[३]

पंडित जी के तबादले के वक्त इस बार सिर्फ सरला और कोयल ही गई थीं उनके साथ, जमुना अपने बड़े भैया और बड़ी भाभी के ही पास रह गई थी। बड़ी भाभी बीमार थीं और उनके बच्चे की जमुना ही माँ बन गई थी। तय यह हुआ था कि कुछ महीने बाद गरमी की छुट्टियों में अदालत बन्द होने पर सभी लोग सीतापुर चले जाएंगे।

ज्वालादत्त की तीव्र इच्छा थी कि अब वह होस्टल में ही रहे ताकि पंडित जी और सरला भाभी की अनुपस्थिति में जमुना के और-निकट आने से वह बच सके, पर अन्य इच्छाओं की भाँति उसकी यह इच्छा भी पूरी नहीं हो सकी।

परीक्षा तक तो खैर इस नए घर में भी वह जमुना से दूर-दूर रहने का बहाना पाए रहा, पर परीक्षा समाप्त होने पर भी जब जमुना ने उसमें कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई और वह अपने और अपनी भाभी के बच्चों में ही सदा की भाँति पूरी तरह से रमी दिखाई दी तो ज्वालादत्त के लिये यह स्थिति भी असह्य हो उठी। वह पति था, और जमुना सामाजिक परम्परा के अनुसार उसकी दासी। हिन्दू समाज का एक यही तो वरदान था हर पराजित, अपमानित, असहाय पति के लिये, कि और कहीं नहीं तो अपनी पत्नी पर रोबदन्दी करके, उसे अपमानित करके, उसकी असहायता में अपने बड़प्पन की तृप्ति वह पा सकता था। इसके अलावा, इतने महीनों के आत्मसंयम का बांध भी तो अब टूट रहा था!

पर परीक्षा समाप्त होने के बाद की पहली रात उसकी यों ही बीत गई; न जमुना ने कोई कोशिश की कि इतने महीनों से चले आने वाले उस मनोमालिन्य के खिलाफ कोई कदम उठाए, और न वही हिम्मत कर पाया कि उसे इसकी सजा दे।

और अगले दिन पंडित जी का तार आ धमका—"आखिरी परचा होते ही बिना एक दिन की देर किये चले आओ।"

एक दृष्टि से ज्वालादत्त को खुशी हुई—सरला भाभी की तस्वीर उसकी आँखों के आगे नाच गई। पर इस प्रलोभन के खिलाफ भी आवाजें थीं उसके दिल में, और पंडित जी का सामीप्य तो किसी प्रकार भी आकर्षक नहीं था। फिर, सरला भाभी की कई तस्वीरें ऐसी भी थीं जो उसके स्वाभिमान पर सिर्फ चोट-ही-चोट करने वाली थीं। और सबसे बड़ी बात यह थी कि जमुना से किसी प्रकार का भी बदला लिये बिना उसे जाना पड़ रहा था।

सारे रास्ते ज्वालादत्त का मन तर्क-वितर्क और संकल्प-विकल्प का अखाड़ा बना रहा।

"कैसे परचे किये हैं," पंडित जी ने उससे पहला प्रश्न किया, "फर्स्ट डिवीजन लाएगा न?"

"जी, उम्मीद तो करता हूँ," ज्वालादत्त ने सरासर झूट बोला।

"ठीक है," पंडित जी ने संतुष्ट होकर कहा, "यहाँ इसलिये बुला लिया है तुझको, कि वहाँ रह कर यह वक्त खुराफातों में न बिता देता। यहाँ के डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर मिस्टर कपूर से बात हो गई है; वे तुझे रुड़की की तैयारी करा देंगे। ···दिन में रोज उनके ही बंगले पर चले जाया करना·····उनकी देखरेख में तैयारी ठीक हो जायगी।"

और सरला भाभी ने मिलते ही आँखें नचा कर कहा—"मेरी ही कोशिश से तो आए हो लाला, कुछ दिन चहल-पहल रहेगी। पंडित जी को कलक्टरी क्या मिली है, काम का पहाड़ टूट पड़ा है, हर वक्त काम ही काम। ···एकदम मन ही नहीं लगता था मेरा तो।···बस,

एक कोयल है, सो उसके साथ क्या मन लगे रात-दिन !" और एक रहस्यपूर्ण मुसकराहट के साथ सरला भाभी ने उसकी ओर कटाक्ष किया।

ज्वालादत्त के सारे बदन में बिजली दौड़ गई।

पर बाद को उसने देखा कि जिस सरला भाभी का एकमात्र आकर्षण था उसके लिये यहाँ, वह उसकी मृगतृष्णा को बढ़ाती अधिक थी बुझाती बहुत ही कम थी। सरला भाभी की यह प्रवृत्ति इधर उसे बेहद बढ़ी दिखाई दी। मानों उसे ज्वालादत्त को सताने में ही मजा आता था।

और ज्वालादत्त इसके लिये जितनी घृणा सरला को कर पाता था उससे अधिक अपने को करता था--अपनी कमजोरियों के लिये।

इसी तरह दिन पर दिन बीत चले, हफ्ते पर हफ्ते। ज्वालादत्त परीक्षा-फल के लिये जितना बेचैन होता जा रहा था उतना ही सरला से, पंडित जी से, जमुना से, दुनिया से, सभी से बदला लेने के लिये व्याकुल और अधीर। सबसे ज्यादा बेचैन था वह सरला भाभी को किसी तरह छोटा करने के लिये। हमेशा ही तो वह उसको छोटा करती आ रही थी !

और एक दिन आया जब ज्वालादत्त के ज्वालामुखी का पूर्ण विस्फोट हुआ—ऐसा विस्फोट, जिसमें न जाने क्या-क्या उड़ कर दूर, बहुत ही दूर, जाकर गिरा।

बात यों हुई।

हिसाब-किताब के मामले में पंडित जी बहुत ही सख्त थे और अपने आमद-खर्च का पाई-पाई का हिसाब, जब से उन्होंने नौकरी की थी, उनके बही-खाते में मौजूद था। लड़कों से भी पंडित जी ने उनकी पढ़ाई का हिसाब-किताब रखाया था, और राधेश्याम अभी तक हर महीने की पांचवीं तारीख तक पिछले महीने का अपना पाई-पाई का हिसाब पंडित जी के पास भेजा करते थे। पंडित जी भी हर महीने के हिसाब को गौर से देखते थे और हर महीने ही किसी न किसी खर्च के बारे में राधेश्याम को पंडित जी की मौखिक या लिखित कड़ी टिप्पणियाँ सुनने या पढ़ने को

मिलती थीं। राधेश्याम इन टिप्पणियों के आदी हो गए थे और उनकी प्रतिक्रिया सीधे-सादे मौन के ही रूप में होती थी। इसके अलावा, हिसाब-किताब के बारे में सच और झूट का मिश्रण करना उन्होंने विधि-पूर्वक सीखा था और बहुत सी टिप्पणियों से तो वह इस 'टेकनीक' के प्रयोग द्वारा ही बचते रहते थे।

पर ज्वालादत्त इस 'टेकनीक' को न तो जानता ही था और न उसका आहत-स्वाभिमान उसे झूटा हिसाब पेश करने ही देता। ससुर के पैसे से वह पढ़ रहा था और उस पर भी अपने जेब-खर्च के रुपये का उसे पाई-पाई का हिसाब पेश करना पड़ता था—यही उसके लिये कम अपमान की बात नहीं थी!

ज्वालादत्त स्वयं कम-से-कम खर्च करना चाहता था, और पूरा-का-पूरा हिसाब सही-सही पंडित जी के सामने पेश करते वक्त उसे गर्व रहता था कि उसने ऐसे किसी मद में कोई खर्च नहीं किया है जिसे बचाया जा सकता हो। पर फिर भी किसी-न-किसी मद के खर्च पर पंडित जी की कोई-न-कोई कड़ी टिप्पणी उसे सुननी ही पड़ती थी जिसके बाद कई दिन तक वह तिलमिलाया रहता था और पढ़ाई-लिखाई बन्द करके उनका आश्रय छोड़ देने के विचार के खिलाफ उसे बड़ी जबर्दस्त लड़ाई लड़नी पड़ती थी अपने अन्दर।

इलाहाबाद से अपनी परीक्षा देकर यहाँ आने पर उसे न जेब-खर्च मिल रहा था और न उसका हिसाब ही रखना पड़ता था। पर इस बार सरला भाभी की शरारत के कारण घर का हिसाब उसीके पास रहने लगा था।

जिस दिन की बात है उस दिन पिछले दिन के हिसाब में एक रुपये की गलती निकली थी और घंटों मगजपच्ची करके भी ज्वालादत्त उस रुपये का पता नहीं लगा पाया था। अन्त में जब कुछ नहीं सूझा तो उसने 'भूल'-खाते एक रुपया डाल दिया।

तीसरे पहर का वक्त था और पंडित जी दो दिन के लिये बाहर

दौरे पर जाने को तैयार बैठे थे। पन्द्रह-बीस मिनट के खाली वक्त में वे पिछले तीन दिनों का हिसाब, जो उन्होंने नहीं देखा था, देख रहे थे। अचानक वे चीख उठे—"ज्वालादत्त !"

थोड़ी देर में ज्वालादत्त हाजिर हुआ। पीछे-पीछे सरला और कोयल भी आ पहुँचीं—सरला प्रकट रूप से और कोयल छिपे-छिपे, दरवाजे की ओट में।

"एक रुपये की भूल का क्या मतलब ?" ज्वालादत्त की ओर कठोर दृष्टि स्थापित करते हुए पंडित जी गरज उठे।

"जी · याद ही नहीं पड़ रहा है, क्या हुआ एक रुपये का।" ज्वालादत्त ने सहमे हुए स्वर में, पर सिर ऊँचा रखने की कोशिश करते हुए कहा।

"तो बिना लिखे खर्च कैसे कर डाला ?···या झूट बोल रहा है ?" पंडित जी और भी कड़े स्वर में बोले।

"जी, झूट मैं कभी नहीं बोलता···" कुछ तैश के ही साथ ज्वालादत्त ने भी जवाब दिया।

पंडित जी इस जवाब के लिये शायद बिलकुल ही तैयार नहीं थे। "तो जा, जब तक याद नहीं आए तब तक कोई दूसरा काम करने की जरूरत नहीं।·····झूट नहीं बोलता है तो फिर याद कर, कहाँ खर्च किया !" और सरला की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"जब तक याद नहीं आए तब तक सोने नहीं पाए। ···इंजीनियरी क्या खाक करेगा ऐसी याददाश्त लेकर ?"

पंडित जी का वक्त हो चुका था, और इतना कह कर वे तो निकल गए बाहर, पर सरला भाभी के सामने पंडित जी द्वारा अपना यह अपमान ज्वालादत्त के लिये आज बहुत ही असह्य हो उठा। तेजी से उस कमरे से निकल कर वह अपने कमरे में आकर कुर्सी पर धम से बैठ गया, और एक रुपये वाली उस भूल को याद करके दुरुस्त करने की जगह पंडित जी का दामाद बनने की ही भूल उसके दिमाग को झकझोरने लगी बुरी तरह से।

"आंधी आई···आंधी आई···" सारे घर में शोर मचा हुआ था, जिसे अपने दिमाग में आई हुई आंधी के आगे ज्वालादत्त ने देखा ही नहीं था। देखा तब जब उसके कमरे के दरवाजे और खिड़कियाँ जोर-जोर से खुलने और बन्द होने लगे और सारा कमरा धूल से भर गया। उठ कर उसने सब दरवाजो और खिड़कियों को बन्द किया और बरामदे में आ खड़ा हुआ। करीब आधे घंटे तक धूल का तूफान उसके चारो ओर गरजता और घुमड़ता रहा पर वह वहाँ से हटा नहीं, और जब आसमान से धीरे-धीरे बूंदे गिरने लगीं और कुछ देर बाद अच्छा-खासा पानी बरसने लगा, तब वह कपड़े उतार कर बाहर पानी में जा खड़ा हुआ। ठण्ढे-ठण्ढे पानी ने उसके दिमाग और दिल दोनों को ठण्ढक पहुँचाई और जब पानी के साथ-साथ ओले गिरने लगे और उनकी चोट बरदाश्त के बाहर हो गई तभी रामदीन चाचा की बार-बार की चुड़कियों पर उसका ध्यान गया और वह कपड़े बदल कर एक चादर ओढ़ अपने कमरे में कुरसी पर आ बैठा।

बाहर की गरमी कुछ ही समय मे बदल कर अच्छी-खासी ठंढक बन गई, पर उसका दिमाग कुछ देर के लिए ठंढा होकर भी फिर गरम हो चला। नहीं, अब और नहीं सहा जा सकता इतना अपमान, अब और नहीं—उसके दिमाग में यह एक ही आवाज थी, उसके दिल में यह एक ही पुकार।

कई घंटे इसी तरह बीत गए; वह जहाँ का तहाँ अपनी कुरसी पर बैठा ही रह गया—करीब-करीब एक ही मुद्रा में, एक ही भाव से।

और जब रामदीन चाचा उसे खाने के लिये बुलाने आए उसके अंधेरे घर में, तब उसने कुछ निवृत्ति पाई यह प्रतिवाद करके कि "खाना नहीं खाऊँगा आज।"

"क्यों, सिर दर्द कर रहा है क्या? ठंढ तो नहीं लग गई इतनी देर पानी में भींग कर?" सहानुभूति के स्वर में रामदीन ने पूछा।

"एक बार कह दिया रामदीन चाचा, मुझे तंग मत करो अब," कुछ

झुंझलाहट के साथ उसने जवाब दिया, और रामदीन चाचा धीरे-धीरे न जाने क्या-क्या बड़बड़ाते हुए वहाँ से चले गए।

और तब आई सरला भाभी, जिसके खिलाफ आज चोट खाए हुए ज्वालादत्त के मन में शिकायत ही शिकायत थी। वह चाहती, तो क्या पंडित जी द्वारा अपमानित होने से उसे नहीं बचा सकती थी? वह साफ देखता आ रहा था कि न जाने क्यों यह सरला भाभी उसे सताने पर, उसे अपमानित कराने पर, तुली हुई है कुछ वक्त से। न जाने क्यों? क्या बिगाड़ा है ज्वालादत्त ने उसका?

"क्यों, खाना-पीना क्यों छोड़ रखा है लाला?" सरला भाभी ने आते ही कोमल स्वर में तीखा व्यंग्य-बाण कसा, "पंडित जी तो सिर्फ सोने से रोक गए हैं, जब तक हिसाब न मिले।"

ज्वालादत्त का सारा मन बुरी तरह से जल उठा, पर काफी जहरीला कोई जवाब तुरंत न मिलने के कारण वह चुप बैठा रहा, ठीक उसी मुद्रा में, जैसा-का-तैसा।

"मेरे अच्छे लाला!" कुछ देर चुपचाप खड़ी रहने के बाद सरला ने बड़े ही मीठे प्यार के स्वर में कहा, और ज्वालादत्त के कन्धे पर अपनी कुहनी रख कर उसके ऊपर झुकती हुई उसके कान में बोली, "मेरे प्यारे लाला!.....चलो खा लो!"

ज्वालादत्त के दिल की सबसे ज्यादा कमजोर जगह पर हाथ रख दिया था उसकी सरला भाभी ने, प्यार के लिये पागल उसके दिल के मर्मस्थल पर। पर फिर भी उसने अपने मन की चंचलता पर रोक लगाई—इस मायाविनी को वह अभी तक नहीं समझ सका था, क्या पता क्या मतलब है उसका!

सरला अपने हाथ में लालटेन लेकर आई थी। उसे बाहर दीवाल की ओट में रख कर कमरे के हलके अंधेरे में उसके निकट आ इस बार उसने उसकी बांह पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचते हुए उठाने की कोशिश की, और जब देखा कि इस बार उसकी जिद कुछ ज्यादा पक्की

है तो उसके प्रति सम्मान का जो भाव उसके मन में धीरे-धीरे घटता ही चला आया था वह एकबारगी ही बढ़ गया और उसके कन्धों को अपनी बांहों में लपेट कर उसने अपना गाल उसके गाल पर रख दिया।

और ज्वालादत्त इस बार पूरी तरह से द्रवित हो गया, पराजित हो गया। कितने अरसे की उसकी अतृप्ति, कितने दिनों का उसका दबा हुआ मन, एकबारगी ही सिर उठा कर खड़ा हो गया, और सरला भाभी की छाती पर अपना सिर रख कर उसे लगा कि वह सब-कुछ भूल जायगा, सब-कुछ !

"चलो, पहले खाना खा लो," धीरे-धीरे ज्वालादत्त को अपने से अलग करती हुई सरला भाभी अन्त में बोली, और चुपचाप, छोटे-से किसी सुशील बालक की तरह वह उसके पीछे-पीछे चल दिया भोजन-गृह की ओर।

ज्वालादत्त का मन बहुत ही कमजोर पड़ गया था, और अपनी सारी समस्याओं और सारी दुश्चिन्ताओं को अपने मन से हटा, नशे में डूबा-सा वह किसी तरह खा-पीकर सरला भाभी के ही कमरे में आ बैठा, और लैम्प की रोशनी में टेबुल के पास बैठा-बैठा तुलसीदास की रामायण के पन्ने उलटने लगा, जो कि सरला की टेबुल पर रखी थी। इलाहाबाद से यहां आने के बाद, पंडित जी के दौरे पर चले जाने पर भी, रात को कभी एकान्त में सरला भाभी से मिलने का मौका नहीं पा सका था वह अभी तक; कोयल और सरला दोनों अन्तःपुर के खुले आंगन में सोती थीं पंडित जी के न रहने पर। गरमी के कारण कमरे के अन्दर सोना असंभव था उन दिनों। आज ओले और पानी ने मौसम बिलकुल ही बदल दिया था, और यहाँ आने के बाद आज पहली बार मौका मिला था कि सरला भाभी के साथ उसके कमरे में वह एकान्त पा सके। और इलाहाबाद से लेकर अब तक की उसकी सारी अतृप्ति, सारी तृष्णा अपनी पूरी तीव्रता के साथ जग उठी थी आज इस वक्त। बड़ी अधीरता

के साथ वह रामायण के पन्ने उलटते-उलटते अपनी मोहिनी भाभी की प्रतीक्षा कर रहा था।

सरला जब खुद खा-पीकर लौटी तब वह ज्वालादत्त को वहाँ अपनी प्रतीक्षा में बैठे देख मुसकरा उठी मन-ही-मन। "रामायण क्या एक इसी कमरे में है लाला?" उसने धीरे से, पर मिठास के साथ कहा।

"तुम्हारी रामायण देख रहा था भाभी—कैसी है," ज्वालादत्त ने अप्रतिभ न होते हुए जवाब दिया।

"यही रामायण तो है वह जो तुमने इलाहाबाद में खरीद कर ला दी थी," सरला ने उसे छेड़ने के लिये कहा।

"रामायण की बात छोड़ो भाभी," खिन्न होकर ज्वालादत्त बोल उठा, "कुछ बातें करो अच्छी-अच्छी।"

"पेट भर के खा-पी चुके हो लाला, अब जाके चुपके-से सो जाओ अपने कमरे में," सरला ने एक मीठी झिड़की दी।

ज्वालादत्त ने भाभी की इस झिड़की को सिर्फ मजाक समझा। बोला—"सोने की तो आज मनाही है भाभी।"

"तुम्हारे हिसाब का खोया रुपया मैं देती हूँ, कह देना हिसाब में भूल नहीं थी रुपया गिनने में ही भूल हो गई थी," सरला ने गंभीर मुद्रा में कहा।

"तुम कहां से रुपया दोगी?" ज्वालादत्त ने कुछ चकित हो कर पूछा, "तुम्हें हिसाब नहीं देना पड़ेगा?"

"मेरी बात छोड़ दो लाला, मुझे थोड़े ही झूट बोलते तुम्हारी तरह डर लगता है," सरला ने कहा।

"तुम्हारा मतलब यह है भाभी, कि झूट मैं डर के मारे नहीं बोलता। क्यों?" ज्वालादत्त के स्वाभिमान पर चोट हुई थी।

"तो क्या पाप-पुण्य का ख्याल है लाला?" सरला ने तीखे स्वर में जवाब दिया।

"झूठ बोलना मैं बहुत बड़ा पाप मानता हूँ भाभी," ज्वालादत्त तैश में आकर बोला।

"अपनी औरत को छोड़ कर लुक-छिप कर उसकी विधवा भाभी के साथ सोने से भी ज्यादा बड़ा? ...क्या?" सरला को सचमुच क्रोध आ गया था ज्वालादत्त की इस मक्कारी पर।

ज्वालादत्त एकदम तिलमिला गया सर्वथा अप्रत्याशित इस प्रहार से, और कोई बहुत ही कड़ा जवाब देने के लिये उसका दिल बेताब हो उठा। तुम्हीं ने तो पाप के इस कीचड़ में फँसाया है मुझे भाभी, तुम्हारी-जैसी कुलटाएँ ही इस कलयुग में हिन्दू समाज का सर्वनाश कर रही हैं, तुम किसी भले घर में नहीं बाजार में रंडियों के बीच ही शोभा देती हो — उसने कहना चाहा, पर यह बात उसकी जबान पर नहीं आ सकी, और जब चुप रहना भी असंभव हो गया तो सरला की ओर एक बार भी ताके बिना वह तेजी से उठ कर वहाँ से चला आया अपने कमरे में, और लैम्प बुझा कर अपनी खाट पर पड़ गया। अपमान-पर-अपमान के प्रहारों ने उसे एकदम झकझोर डाला था, पर आज की रात जो इतना बड़ा मौका मिला था उसे, उसको भी खो देने की ज्वाला और भी प्रचंडता के साथ जल रही थी उसके दिल में, उसके सारे बदन में। वह आधे घंटे से अधिक बिछौने पर नहीं पड़ा रह सका, खास तौर से तब जब कि उसे विश्वास हो गया कि सरला भाभी उसे मनाने, उसे फिर से अपने कमरे में ले जाने के लिये अब नहीं आएगी।

वह बिछौने पर से उठ बैठा और बरामदे में आकर टहलने लग गया। हवा तेज थी और बहुत ही ठंडी, पर ज्वालादत्त के सिर में गरमी थी, दिल में दर्द था, बदन में ज्वाला थी। सिर्फ एक बनियाइन पहने वह बरामदे में चक्कर लगाता रहा।

कितना वक्त बीत गया इसी तरह! कि बारह का घंटा टन...टन...टन..., बारह बार बज कर, चुप हो गया। रात का सन्नाटा और भी गहरा मालूम होने लगा।

और ज्वालादत्त के मन में अपमान की आग करीब-करीब बुझ चुकी थी, और सिर्फ एक ही ज्वाला भस्म कर रही थी अब उसके प्राणों को।

और एक क्षण में एक निश्चय करके वह चल दिया सरला के कमरे की ओर।

ज्वालादत्त को बड़ी निर्वृत्ति महसूस हुई जब उसने देखा कि दरवाजा अन्दर से बन्द नहीं किया गया था। जरूर सरला भाभी ने उसकी प्रतीक्षा की है। उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा, और चुपके से अन्दर दाखिल होकर उसने दरवाजा भीतर से फिर भिड़ा दिया।

धीरे-धीरे, टटोल-टटोल कर, ज्वालादत्त सरला के पलंग तक जा पहुंचा, और उसके सिरहाने के पास मुंह ले जाकर उसने बहुत धीरे से पुकारा—"भाभी!"

ज्वालादत्त के प्रति सरला के मन में तभी तक प्रचण्ड आकर्षण था जब तक कि उसने उसे पाया नहीं था। पर पहली बार उसे पाकर ही उसने देख लिया था कि वह किस धातु का बना है। उसने जिस तरह ज्वालादत्त को नचाना चाहा उसी तरह वह नाचा। और धीरे-धीरे सरला को उसे परेशान करने में ही ज्यादा मजा आने लग गया था, उसकी कमजोरियों का पर्दाफाश करने में, उसे चोट देने में, उसे अपमानित करने में। पुरुषत्व के प्रति नारी का सहज आकर्षण सरला के अन्दर ज्वालादत्त के लिये अब करीब-करीब बिलकुल ही नहीं रह गया था। अगर कुछ था तो उसकी असहायता के, और कभी-कभी उसकी पीड़ा के, प्रति करुणापूर्ण स्नेह, जो किसी असहाय बच्चे के लिये मां का हृदय पाने वाली नारी मात्र में होता है।

इसके अलावा, वैधव्य-जनित सामाजिक अप्रतिष्ठा के आघात से जहां उसके शक्तिमान ससुर ने उसकी रक्षा की थी, वहां साथ ही साथ विधवा सरला के मन में धीरे-धीरे अब यह डर बढ़ता ही चला जा रहा था कि पंडित जी के और उसके सम्बन्ध के बारे में न जाने क्या-क्या बातें होंगी लोगों के मन में। और इस डर ने उसकी प्रकृति में एक

बड़ा परिवर्तन किया था; जहाँ पहले वह नम्र और दीन थी, वहां अब पंडित जी और छोटे बच्चों को छोड़ बाकी सबों के प्रति वह व्यंग्यपूर्ण और कठोर हो चली थी, यहाँ तक कि दूसरों का अपमान करके, खास तौर से उनका जो उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने से जरा भी चूकते थे, उसे बड़ी तृप्ति मिलती थी।

ज्वालादत्त के कारण भी एक नई समस्या आई थी उसके सामने। पंडित जी को जरा भी भनक मिल गई अगर इस बात की, तो सरला की सारी जिन्दगी बरबाद हो जायगी। और ज्वालादत्त के प्रति समय-समय पर उसका रुक्ष और कठोर व्यवहार बहुत-कुछ पंडित जी को धोखा देने के लिये भी होता था, हालांकि उसे अपने ऊपर पूरा भरोसा था कि वह पंडित जी की कृपा से कभी वंचित नहीं होगी, किसी न किसी तरह वह बिगड़ी-से-बिगड़ी स्थिति को भी संभाल लेगी।

पर आज ज्वालादत्त के प्रति उसके मन में विशेष रूप से कठोरता आ गई थी, उसके प्रति उसके दिल में रंच मात्र भी सम्मान नहीं रह गया था, वह सम्मान जिसके बिना नारी का पुरुष के प्रति कोई खिंचाव नहीं हो सकता।

थोड़ा सा ताज्जुब उसे जरूर हुआ था जब उसके तीखे व्यंग्य से तिलमिला कर भी ज्वालादत्त ने दूसरे ही क्षण उसकी गोद में सिर छिपा कर रोना नहीं शुरू कर दिया था, जैसा कि उसने आशा की थी, और वह उसके कमरे से चला गया था। फिर भी उसे भरोसा था कि वह आएगा—पुरुष की तरह नहीं भिखारी की तरह, और तब शायद.....

पर वह जब तक जगी रही ज्वालादत्त नहीं आया, और बार-बार यह सोच कर भी कि एक बार वही उसके कमरे में जाकर देखे कि वह क्या सचमुच ही सो गया है, वह उठ नहीं पाई, और न जाने कब उसे नींद आ गई।

जब ज्वालादत्त को कोई जवाब नहीं मिला सरला से, तब उसे भय हुआ – कहीं सचमुच सो तो नहीं गई सरला भाभी! क्या वह उसे जगाए?

कुछ देर इसी पसोपेश में वह खड़ा रहा, और फिर, एक बार फिर साहस करके उसने, शायद और भी हल्की आवाज में, पुकारा—"मेरी भाभी !"

पर सरला की सांस की धीमी-धीमी आवाज में कोई रुकावट नहीं आई; कोई जवाब नहीं मिला।

ज्वालादत्त बेहद अधीर हो उठा था। और उसने साहस करके सरला के बदन को टटोल कर उसकी बांह पर हाथ रखा।

सरला जग गई। "कौन ?" वह धीरे से बोली।

"मैं हूँ भाभी, ज्वाला !" ज्वालादत्त ने सरला की खाट पर बैठते हुए कहा।

"तुम, लाला !··· आ गए ?" सरला ने पूरी तरह होश में आते हुए कहा, और उसे खींच कर अपने पास सुलाते हुए धीरे से पूछा, "क्यों आए हो लाला, कितना बजा है ?"

ज्वालादत्त निहाल हो गया। "ज्यादा नहीं बजा है भाभी, बारह का घंटा बजा था अभी···तुम नाराज हो मुझसे भाभी···मेरी प्यारी भाभी !" और ज्वालादत्त ने सरला को अपनी बांहों में कस लिया।

"अगर कोई देख ले तो ?" सरला ने शरारत-भरी आवाज में पूछा, और ज्वालादत्त की बांहों को ढीला करने की कोशिश करने लगी।

"कोई नहीं देखेगा भाभी, सब खर्राटे ले रहे हैं आज की ठण्डी रात में," ज्वालादत्त ने परम आश्वस्त स्वर में कहा और अपने बंधन को फिर से कड़ा करते हुए अपने मुंह से सरला के ओठों को खोजने लगा।

"मगर एक बात पहले बताओ लाला," अचानक जोर लगा कर ज्वालादत्त की बांहों के बंधन को खोलती हुई और अपने एक हाथ से उसके मुंह को हटाती हुई सरला बोली। उसकी आवाज में रूखापन था, कुछ कड़ाई थी।

ज्वालादत्त सहम गया। "क्या बात भाभी ?" उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध पूछना पड़ा।

"तुम सचमुच मुझे प्यार करते हो लाला ?" सरला का स्वर कठोर था।

"बहुत प्यार करता हूँ भाभी, परीक्षा कर देखो," ज्वालादत्त ने सरला भाभी के इस प्रश्न से आश्वस्त हो, मीठे स्वर में कहा।

"जमना से भी जादा ?"

"मैं तुम्हीं को प्यार करता हूँ भाभी, जमना को नहीं।"

"जमना को तो सब-कुछ दोगे तुम, पर मुझे क्या दोगे ?" सरला ने नरम पड़ते हुए कहा—बनावटी नरमी से।

"जो कहोगी भाभी।.....पर बातें बन्द करो भाभी, जो कहोगी दूंगा तुम्हें..." अधीरता के साथ ज्वालादत्त ने कहा।

"जमना को छोड़ दे सकते हो मेरे लिये तुम, लाला ?" सरला तुली हुई थी बातें करने पर ही।

"तुम यह सब क्या कह रही हो भाभी आज ?" ज्वालादत्त के स्वर में अब क्षोभ आ चला था।

"आजकल तो, सुनते हैं, विधवाओं का ब्याह भी होने लगा है लाला।..तुम ब्याह करोगे मुझसे ?" सरला ने और भी कठोर प्रहार किया।

"भाभी !...तुम नहीं मानोगी ? ...ये सब फजूल की बातें ..तुम क्या परीक्षा ले रही हो मेरी ?" ज्वालादत्त ने फिर एक बार अपना हाथ बढ़ाया सरला की ओर।

पर सरला ने एक झटके के साथ उसका हाथ हटा दिया अपने बदन से, और और-भी उत्तेजित स्वर में बोली—"अच्छा तो यही बताओ लाला, जमना के साथ सोने दे सकते हो और किसी पुरुष को ?"

ज्वालादत्त ने अब जवाब न देने का निश्चय कर लिया था। वह उठ कर बैठ भी गया पलंग पर, नीचे पांव लटका कर।

"क्यों ? जवाब नहीं दोगे किसी भी बात का ?" सरला ने लेटे-ही-लेटे इस बार और भी कड़े स्वर में कहा। "मेरे बारे में भी कभी सोचा

है लाला···कि मेरा क्या होगा ? अगर बच्चा हो जाय तो ?···अगर··· भगवान न करे··· पंडित जी न रहें आज ?···क्या होगा मेरा तब ? तुम बचाओगे मुझे ?"

अन्त में ज्वालादत्त ने देखा कि बिना जवाब दिये उसका रास्ता एकदम ही रुका हुआ है आज, और सरला के बदन पर झुक कर उसका सिर अपने दोनों हाथों में लेकर नरमी और मिठास के साथ उसने उसे सान्त्वना देने की कोशिश करते हुए कहा—"तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ भाभी, तुम्हारा सिर छूकर, कि तुम पर कभी भी कोई संकट आएगा तो तुम्हारा साथ दूँगा, कभी पाँव पीछे नहीं रखूँगा।···इंजीनियर हो जाने दो मुझे, तुम मेरे घर को अपना घर समझना भाभी··· तुम मेरी रानी होगी और जमना दासी बन कर रहेगी।"

"और अगर मेरे बच्चा हो गया तो ?" सरला ने धीरे से पूछा।

"बच्चा तुम मत होने देना भाभी," ज्वालादत्त ने उतने ही धीरे से जवाब दिया, और ज्यों ही उसने सरला के बदन पर पूरी तरह झुक कर अपना मुँह उसके मुँह पर रखा, कि सरला ने पूरे जोर के साथ दोनों हाथों से उसे धकेल दिया।

"जाओ लाला, किसी रण्डी के पास जाकर अपनी यह प्यास बुझाओ।···और बहुत ज्यादा प्यासे हो तो उस कमरे में चले जाओ, कोयल भी तो अब जवान हुई, मैं ही रण्डी बनने के लिये रह गई हूँ ?" मानो आग बरस रही थी सरला के शब्दों से।

ज्वालादत्त एकदम स्तब्ध हो बैठा रह गया सरला के पलंग के एक किनारे; वह कुछ समझ ही नहीं पाया कि यह क्या रूप है इस चुड़ैल सरला भाभी का। और कुछ देर बाद मानो होश में आकर वह उठ खड़ा हुआ। "तू सचमुच रण्डी है···बाजार में बैठ जाकर !"—उसने काफी जोर से कहा, और दूसरे ही क्षण तेजी के साथ उस कमरे से निकल गया।

बाकी रात ज्वालादत्त ने अपने कमरे के सामने के बरामदे में चक्कर

लगाते ही बिता दी, और थक कर चूर-चूर हो कर जब झुटपुटा होते-होते कुछ देर के लिये वह अपनी खाट पर पड़ गया तो जरा सी ही देर में खर्राटे लेने लगा। और जगा तो रामदीन चाचा की आवाज से—"ज्वाला भैया, ओ ज्वाला भैया,···उठो, तार आया है।"

ज्वालादत्त हड़बड़ा कर बिछौने से उठ खड़ा हुआ। दिन काफी चढ़ चुका था, और रामदीन चाचा सामने खड़े थे—तार का एक लिफाफा हाथ में लिये।

जल्दी-जल्दी ज्वालादत्त ने धड़कते दिल से अपने परीक्षाफल का अपने एक साथी का तार पढ़ा—वह फेल हो गया था!

"किसका तार है भैया···क्या खबर है?" रामदीन चाचा के चेहरे पर घबड़ाहट और अधीरता थी।

"इलाहाबाद का तार है···" ज्वालादत्त ने अपने दिल के भाव को चेहरे पर आने से रोकते हुए कहा, "अच्छी ही खबर है।"

"तो तार किस बात का है भैया?" रामदीन चाचा ने हैरानी के साथ कहा।

"मेरे पास होने की खबर है," ज्वालादत्त ने अनायास झूट बोल दिया। सरला भाभी के कमरे से लौट कर उसने खाट पर पड़ने से पहले जो महत्वपूर्ण और दृढ़ निश्चय कर डाला था उसके प्रकाश में अपने इस झूट से कोई घबड़ाहट नहीं महसूस हुई उसे। अब कहाँ उसे इस घर में रहना है? पंडित जी के आने से पहले ही तो चला जायगा वह इस घर को छोड़ कर, सदा के लिये! और अगर इस निश्चय के विरुद्ध कोई क्षीण से क्षीण भी आवाज उठती उसके दिल या दिमाग में तो उसका भी रास्ता बन्द कर दिया था अब इस लाल कागज के टुकड़े ने।

रामदीन चाचा सारे घर को यह खुश-खबरी सुनाने के लिये चल दिये, और ज्वालादत्त ने एक छोटा-सा बिस्तरा बांध—जिसमें कुछ बहुत जरूरी कपड़े और कुछ अन्य संक्षिप्त-सा सामान था—जल्दी-जल्दी वहाँ से प्रस्थान कर दिया। बंगले का फाटक पार करने से पहले सिर्फ एक

नौकर दिखाई पड़ा था उसे रास्ते में, जिसकी प्रश्नसूचक दृष्टि का उसने सिर्फ इतना जवाब दिया था —"इलाहाबाद जा रहा हूँ; तीन-चार दिन में लौट आऊँगा।"

सड़क पर जाकर उसने एक इक्का किया और सीधा बाबू काशी-प्रसाद ठेकेदार के घर जा पहुँचा, जिनसे इंजीनियर मिस्टर कपूर के बंगले पर उसकी पहलेपहल मुलाकात हुई थी और जिन्होंने कई बार ज्वालादत्त को सलाह दी थी इंजीनियरी-जैसी बड़ी और प्रतिष्ठित पद वाली नौकरी की भी कामना न करके व्यवसाय करने की। और अभी हाल में एक दिन उन्होंने उसे अपने भाई सेठ महाबीरप्रसाद से मिलाया था जो दक्षिण अफ्रीका के एक बड़े शहर में बहुत बड़े व्यापारी थे और जिन्हें ज्वाला-दत्त-जैसे ही एक सुशिक्षित नवयुवक सहायक की जरूरत थी जिसे वे खाना-कपड़ा-मकान के अलावा अपने मुनाफे में भी कुछ कमीशन देने को तैयार थे और दस बरस बाद जिसे वे स्वतंत्र कर दे सकते थे अपना अलग व्यापार करने के लिये।

उस समय ज्वालादत्त को कोई खास दिलचस्पी नहीं मालूम हुई थी उस प्रस्ताव में; पर रात के अपने निश्चय के अनुसार उसके लिये बहुत ही आकर्षक हो गया था अब उनका वही प्रस्ताव।

नवां परिच्छेद

[१]

सरला को छोड़ बाकी सभी ने यही समझा कि ज्वालादत्त फेल होने की वजह से ही पंडित जी के डर से भाग खड़ा हुआ है। पंडित जी ने दौरे पर से लौटने के बाद वह तार पढ़ा और उसके फेल होने की बात पढ़ते ही आग-बबूला हो गए। सरला को एक पेचीदी समस्या से छुटकारा मिला; ज्वालादत्त क्यों भागा इस मामले की तह तक जाने का सवाल ही नहीं पैदा हो पाया।

ज्वालादत्त अगर लौटे तो उसे उसके कमरे में बन्द करके पंडित जी को खबर दी जाय—यह आदेश पंडित जी ने सब लोगों को सुना दिया, और उसी वक्त राधेश्याम को चिट्ठी लिख दी कि अगर ज्वालादत्त वहां पहुँचा हो तो उसे यह चिट्ठी मिलते ही घर से निकाल दिया जाय, या उसे लेकर वे सब सीतापुर चले आएं; और अगर वह वहां अभी न पहुँचा हो तो जब भी पहुँचे उसे घर के अन्दर न घुसने दिया जाय। और जमुना के लिये राधेश्याम को पंडित जी ने यह लिखा कि अगर वह अपने पिता से अधिक अपने पति पर श्रद्धा रखती है—इस तरह के नालायक पति पर—तो वह अपने बच्चे को लेकर शौक से ज्वालादत्त के साथ जहां-चाहे चली जा सकती है; पर याद रखे कि फिर पिता या भाई के घर में उसके या उसके बच्चे के लिये कभी कोई जगह नहीं होगी।

राधेश्याम की कचहरी गरमी की छुट्टियों के लिये बन्द हो चुकी थी, पर उनकी स्त्री की तबीयत कुछ ऐसी ही चल रही थी, और उन सबका सीतापुर जाना दिन-पर-दिन टलता ही जा रहा था। पंडित जी

का यह पत्र पाकर तीन दिन और राधेश्याम ने ज्वालादत्त की राह देखी, और उसके बाद सबको लेकर सीतापुर चले आए।

और सीतापुर आने पर राधेश्याम को और जमुना को प्रायः रोज ही ज्वालादत्त के अपराध का किसी-न-किसी हद तक दण्ड भोगना पड़ता—मानों ज्वालादत्त के साथ जमुना के विवाह की जिम्मेदारी तो जमुना और उसके बड़े भैया पर थी ही, ज्वालादत्त की नालायकी के लिये भी वे ही जिम्मेदार थे।

पर करीब तीन हफ्ते गुजर गए और ज्वालादत्त नहीं आया, और न उसकी कोई खबर ही मिली। राधेश्याम और जमुना के मन में धीरे-धीरे घबड़ाहट बढ़ चली, और पंडित जी का भी गर्जन-तर्जन, उनके अकारण क्रोध के दौरों का जोर, दिन-पर-दिन बढ़ने लगा। जमुना को रोज ही डर लगा रहता था कि उसके बच्चे पर कहीं पहाड़ न टूट पड़े किसी वक्त, क्योंकि पंडित जी के इस तरह के दौरों की चरम परिणति हण्टरों और लात-घूंसों की बौछार में ही होते-आने का सनातन नियम था, और मार खाने लायक उम्र यहां इस समय सिर्फ जमुना के बच्चे की ही थी, जो अब ढाई साल का हो चुका था। दूसरा बच्चा राधे का था—कुछ ही महीनों का; रामगोपाल ने कुछ ही महीने पंडित जी के साथ रह कर उनकी कृपा से इलाहाबाद में ही एक नौकरी पा जाने के बाद एक किराए का मकान ले अपनी गृहस्थी अलग कर ली थी।

छोटी-मोटी मार जमुना के बच्चे पर कई बार पड़ चुकी थी, पर जमुना को ताज्जुब हो रहा था कि अभी तक वह पंडित जी के ज्वालामुखी के पूरे विस्फोट से कैसे बचता जा रहा है। पंडित जी का गुस्सा अन्तः-सलिला सरस्वती की धारा की भाँति इस बार शायद अपने-आपको ही अधिक भस्म कर रहा था, यह राधे और जमुना ही नहीं सरला भी समझ पा रही थी। और सभी डरे हुए थे कि न जाने यह क्रोध अन्त में क्या रूप ग्रहण करेगा।

और सचमुच ही इस बार के ज्वालामुखी का विस्फोट सर्वथा अक-

स्थित रूप में हुआ—ऐसी जगह, जिसके बारे में किसी ने अनुमान तक करने का साहस नहीं किया था। इस बार पंडित जी के क्रोध की बिजली गिरी सरला पर, उनकी परम कृपापात्री सरला पर।

शाम का वक्त था, सूरज कुछ देर पहले डूब चुका था। अंधेरा होने में अभी कुछ देर थी। छत पर कई बार पानी छिड़का जा चुका था और अब वह कुछ ठंडी हो चली थी। नहा-धोकर पंडित जी अभी-अभी आकर नंगे-बदन आरामकुरसी पर बैठे थे और दो बड़े-बड़े गिलास भर कर बादाम और दूध की ठंढई वे गले के नीचे उतार चुके थे। एक नौकर उनके एक ओर खड़ा ताड़ के बड़े-से एक पंखे से उनकी हवा कर रहा था, और वर्दी-पहने एक चपरासी ने अभी-अभी लाकर बगल की गोल तिपाई पर कुछ जरूरी कागजात रखे थे। पंडित जी उन्हीं की ओर हाथ बढ़ाने वाले थे, कि एक दूसरा नौकर अभी आई हुई डाक लेकर ऊपर आया, और उसी तिपाई पर उसे रख कर चला गया।

पंडित जी ने चांदी की कमानी का चमकता हुआ चश्मा आँखों में लगाते हुए डाक उठा ली, और उसमें से तीन लिफाफे छांट लिये। तीनों लिफाफे एक ही लिखावट में थे, एक ही जगह से आए थे, पर तीन पृथक-पृथक व्यक्तियों के लिये थे। लिखावट ज्वालादत्त की थी, यह समझते पंडित जी को देर नहीं लगी। वे तीनों ही छोड़े गए थे बम्बई के डाक-खाने में; तीनों पर बम्बई की मुहर थी। इनमें से एक पंडित जी के लिये था, एक 'श्रीमती सरलादेवी' के लिये, और एक 'श्रीमती जमुनादेवी' के लिये। पंडित जी की भौंहें ऊपर तक तन गईं।

जमुना की चिट्ठी पंडित जी ने तिपाई पर रख दी, और सबसे पहले सरला की ही चिट्ठी उन्होंने खोल डाली :—

मेरी प्यारी छोटी भाभी,

चरण-कमलों में इस दास का साष्टांग दंडवत स्वीकार करो। मेरी प्यारी भाभी, उस रात मुझे दुतकार कर, मुझे अपने से दूर करके, तुमने मेरा कितना बड़ा उपकार किया है यह मैं ही जानता

हूँ। मैं अब आदमी बनने जा रहा हूँ, इस देश से बाहर। जो सेठ मुझे ले जा रहे हैं उनके साथ रह कर मुझे रुपये-पैसे की कमी नहीं रहेगी, और मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूँ भाभी, कि तुमने मुझे जो सुख दिया है उसे मैं पाई-पाई का हिसाब करके चुका देने को तैयार हूँ।

तुम्हें याद है, तुमने उस रात मुझसे पूछा था कि एक रात के बदले में मैं तुम्हें क्या दूँगा? इतने साफ शब्दों में जरूर यह बात नहीं कही थी तुमने, पर मतलब यही था। मैं वादा करता हूँ भाभी, (नहीं, अब 'भाभी' कह कर तुम्हें याद करने की अपवित्र गलती नहीं करूंगा; तू किसी की भी भाभी होने लायक नहीं है, ओ री काली नागिन) मैं वादा करता हूँ कि तू अपनी जो कीमत मुझे लिख देगी उसे मैं तुझे सूद समेत एक दिन अदा कर दूंगा। मुझे हिसाब लिख कर भेज, कि कितनी रातें तूने.....

आगे पंडित जी नहीं पढ़ सके। इतनी दूर तक भी यह चिट्ठी उन्होंने एक बार में नहीं पढ़ी; बीच-बीच में कई बार क्रोध के मारे बुरी हालत हो-हो गई उनकी, और बड़ी मुश्किल से ही वे उस छोटी-सी चिट्ठी को यहां तक भी पढ़ पाए।

ज्वालादत्त उनका दामाद है और कितने दिनों से उसका कोई पता तक नहीं था कि वह कहां गया—यह दुश्चिन्ता पंडित जी के दिमाग में आई ही नहीं थी। अगर ज्वालादत्त सदा के लिये जमुना और उसके बच्चे को छोड़ कहीं चला गया है तो अपनी बेटी और अपने नाती के भविष्य की, उनके सुख-दुख की भी उन्हें चिन्ता करनी है—यह बात भी उनके दिल में अभी तक नहीं आई थी। ज्वालादत्त की इतनी बड़ी हिमाकत कि वह फेल ही नहीं हुआ बल्कि बिना उनकी इजाजत घर से निकल भी गया और उनके सामने आत्मसमर्पण न करके अभी तक उनकी उपेक्षा करता चला जा रहा है, उनकी सजा से बचता चला जा रहा है—इसी का क्रोध पंडित जी के सिर पर सवार था।

पर इस चिट्ठी को पढ़ कर यह सब भी वे भूल गए। दिमाग में रह गई सिर्फ एक बात—सरला और ज्वालादत्त, ज्वालादत्त और सरला। ज्वालादत्त ने कहां से चिट्ठी लिखी है, वह कहां जा रहा है, वह फिर लौटेगा या नहीं, उसने ये चिट्ठियाँ क्यों और किस नीयत से लिखी हैं—ये प्रश्न भी उनके दिमाग में नहीं थे इस वक्त। बल्कि वे यह भी भूल चुके थे कि ज्वालादत्त की दो और चिट्ठियाँ रखी हुई हैं उनके बगल की तिपाई पर, जिन्हें उन्होंने अभी खोला तक नहीं है।

सरला और ज्वालादत्त के बारे में दो-एक बार सन्देह की हलकी-सी छाया आकर पड़ी थी कभी उनके दिमाग में, पर उन्होंने उसकी उपेक्षा की थी। ज्वालादत्त के प्रति सरला के व्यवहार में कुछ-वैसा जब-जब दिखाई पड़ा था उन्हें तब-तब तीक्ष्ण दृष्टि से उन्होंने सरला के आन्तरिक भावों को पढ़ने की चेष्टा की थी, पर हर बार सन्देह के वे बादल छिन्न-भिन्न हो गए थे अपने प्रति सरला के निष्कपट और अपरिवर्तित व्यवहार से। पंडित जी के प्रति सरला के भावों में, उसके व्यवहार में, उसकी सेवा में कोई भी तो परिवर्तन, कोई भी तो त्रुटि नहीं मिली थी उन्हें कभी! दौरों पर से लौट कर अवश्य कभी-कभी उन्हें तीव्र उत्कण्ठा हुई थी किसी से यह जानने की कि सरला और ज्वालादत्त को कभी ज्यादा नजदीक आने का तो मौका नहीं मिला। पर किससे पूछते और क्या पूछते? इस प्रकार की गुपचुप पूछताछ करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था, उनकी आत्म-प्रतिष्ठा की भावना के प्रतिकूल। और तब वे और भी तीक्ष्ण दृष्टि से सरला के मनोभावों को समझने की चेष्टा करते, और हर बार वे पूरी तरह से आश्वस्त ही होते कि सरला खरा सोना है, उसमें किसी प्रकार की भी मिलावट की गुंजाइश नहीं।

पर आज की इस चिट्ठी ने एकबारगी ही उनके सारे विश्वास को, उन सारे आश्वासनों को, मानो एक फूंक में उड़ा दिया, उनके अन्दर छिपे सन्देह के उस गले हुए बीज को अंकुरित ही नहीं क्षण भर में पल्लवित और पुष्पित भी कर डाला। उनके सारे बदन की नसें तन गईं,

मुट्ठियाँ कस गईं, नथुने फड़कने लगे, और आँखों में लाल-लाल धारियां उभड़ आईं।

अचानक पंडित भगवतीचरण उठ कर खड़े हो गए और पंखे वाले के हाथ से ताड़ का पंखा छीन कर उसकी पीठ पर एक घूंसा जमाते हुए गरजे—"दूर हो यहां से, सूअर का बच्चा," और उसे सीढ़ी की ओर धकेल दिया।

और फिर नजदीक ही खड़े चपरासी पर बरस पड़े—"चला जा यहां से, खड़ा किस लिये है?" और जब वह भी दुम दबा कर सीढ़ी की ओर तेजी से बढ़ता नजर आया, तब उसे सुनाते हुए पंडित जी गरज उठे—"कोई नहीं आएगा ऊपर ..... नीचे जाकर खड़ा हो ..... जा!!..."

और नंगे-बदन पंडित जी, पसीने से नहाते हुए, तेज कदमों से छत पर चक्कर लगाने लगे।

करीब एक घंटा पंडित जी इसी तरह चक्कर लगाते रहे, कि रामदीन ने आकर खाना परोसे जाने की सूचना दी।

पंडित जी समझ नहीं पाए कि क्या बात कही है रामदीन ने। रामदीन के पास आकर वे रुक गए, और उसकी ओर लाल-लाल आंखों से ताकते हुए बोले—"क्या है?"

"जी, खाना परोसा जा चुका," रामदीन ने घबड़ाई हुई आवाज में, आंखें नीची करके फिर निवेदन किया।

"खाना?" पंडित जी ने मानो कुछ भी न समझते हुए पूछा। और थोड़ी देर वे उसी तरह खड़े रामदीन की ओर घूरते रहे। रामदीन की हिम्मत ही नहीं थी उस दृष्टि का सामना करने की; अगर उसने उधर ताका होता तो वह बेहद घबड़ा उठता।

धीरे-धीरे पंडित जी कुछ होश में आए, और चुपचाप आकर आरामकुरसी पर बैठ गए। "पसीना तो पोंछ रामदीन," उन्होंने धीमी और एक अजीब अस्वाभाविक आवाज में कहा, और रामदीन ने जल्दी

से आकर तौलिये से उनका पसीना पोंछना शुरू कर दिया। इस आवाज से वह और भी घबड़ा गया था; कुछ देर में हिम्मत करके उसने पूछा—"तबीयत कुछ खराब है पंडित जी?"

"नहीं," रूखी आवाज में पंडित जी ने जवाब दिया, और प्रकृतिस्थ होने पर कहा—"एक बार और नहाऊंगा।"

नहाने-धोने के बाद पंडित जी खड़ाऊं की आवाज करते हुए नीचे उतर गए और चुपचाप, एक अस्वाभाविक गंभीरता के साथ, खाने बैठ गए। गरम-गरम पूड़ियां, रबड़ी, बालूसाही। और दिनों से कुछ अधिक ही मात्रा में खाया पंडित जी ने, पर बोले एक बार भी नहीं। चुपचाप खाते चले गए, जो-जो दिया गया लेते चले गए। न एक बार भी बोले, न किसी की ओर ताका। रसोईघर के अन्दर थी राधे की बहू, जो गरम-गरम पूड़ियां तल रही थी, और पंडित जी के सामने थी जमुना, जो परोसती जा रही थी। सरला बीच में थी, और पूड़ियां बेल रही थी। पंडित जी की चुप्पी का यह रूप कभी ही कभी दिखाई देता था, और उस वक्त सरला भी उस चुप्पी को तोड़ने की कोशिश खतरे से खाली नहीं समझती थी।

और दिनों से अधिक खाकर भी पंडित जी और दिनों की अपेक्षा जल्दी ही उठ गए, और उठते-उठते, नित्य की भांति, आज उन्होंने डकार भी नहीं ली। कुल्ला करके वे नीचे के ही अपने कमरे में गए और फिर कुछ देर बाद उनकी खड़ाऊं की आवाज सीढ़ी पर चढ़ती सुनाई दी। उस वक्त कोई भी नहीं देख पाया कि पंडित जी नीचे के अपने कमरे से चमड़े का अपना हण्टर ऊपर लेते गए हैं।

ऊपर जाकर पंडित जी ने वह हण्टर ऊपर के कमरे में टेबुल पर रख दिया, और फिर टेबुल के ड्रॉअर में से उन्होंने अपनी पिस्तौल निकाली—भरी हुई पिस्तौल! खोल कर उन्होंने देखा, कि गोली ठीक है या नहीं। और फिर उसे वहीं रख कर ड्रॉअर बन्द कर बाहर चले आए—छत पर।

इस बीच छत पर, दूसरे किनारे, पलंग बिछ चुके थे—बड़ा पलंग पंडित जी का, और उसके निकट ही एक छोटा पलंग—सरला का।

पंडित जी ने सरला के पलंग की ओर देखा, और उनका पारा एकबारगी ही चढ़ चला। तेजी से सीढ़ी के दरवाजे पर जाकर उन्होंने आवाज दी—"रामदीन !···रामदीन !"

एक-एक बार में दो-दो सीढ़ियां चढ़ता हुआ बूढ़ा हो चला रामदीन आया।

पर रामदीन को देखते ही पंडित जी बिगड़ खड़े हुए—"तू किस लिये आया है ?···सरजू को भेज—जा··· !"

और थोड़ी ही देर में सरजू दौड़ता-चढ़ता ऊपर आया—कोई तीस-बत्तीस साल का हट्टाकट्टा जवान, जो डर के मारे भेड़ बना हुआ था।

"जी सरकार ?" वह आते ही हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हो गया।

"दूसरा पलंग किसका है यह, सुअर के बच्चे ?" पंडित जी ने छत के दूसरे छोर पर जाकर, अपने पीछे-पीछे आते हुए सरजू से कहा—सरला के पलंग को दिखाते हुए।

वह दूसरा पलंग सदा से वहीं बिछता आ रहा था, और सरजू समझ नहीं पाया कि उससे क्या गलती हुई। डरते-डरते उसने जवाब दिया—"हजूर·····छोटी भाभी जी का ही तो है सरकार !"

"छोटी भाभी जी का बच्चा !·····ले जा उतार कर नीचे···अभी ! ·····छोटी भाभी का नौकर है, या मेरा ?"

कोई भी जवाब देने की दुबारा हिम्मत न कर सरजू डर से थर-थर कांपता हुआ जल्दी-जल्दी उस पलंग पर बिछा बिस्तरा लपेटने लगा और उसकी जान में जान आई जब उसने देखा, पंडित जी तेजी से जाकर आरामकुरसी पर पड़ गए हैं।

पहले बिस्तरा और बाद को वह पलंग सीढ़ी पर से नीचे उतार कर रख आने के बाद सरजू ने आकर ताड़ वाला वह बड़ा पंखा उठा कर पंडित जी को प्रसन्न करने की दृष्टि से उनकी हवा करनी शुरू की, हाला-

कि उस वक्त हलकी-हलकी हवा बह रही थी और पंडित जी का बदन बिलकुल सूखा हुआ था। हाथ के इशारे से पंडित जी ने उसे रोक दिया और आदेश दिया—"सरला को ऊपर भेज—अभी···इसी दम !"

[२]

राधे की बहू और सरला खाने के लिये बैठी ही थीं कि दौड़ते हुए सरजू ने आकर खबर दी—"छोटी भाभी को सरकार बुला रहे हैं, अभी—इसी दम !"

"अभी आती हूँ चल,···कहना, खाने बैठ गई हैं, अभी खाकर आती हैं," सरला ने सरजू से कहा और अपनी थाली अपनी ओर खींच कर खाना शुरू करना चाहा। पर पहला गस्सा तोड़ कर अपने मुंह में रखने के लिये उसने ज्यों ही हाथ बढ़ाया, उसकी नजर पड़ी सरजू पर, जो अभी तक गया नहीं था। "क्यों, जाता क्यों नहीं है ?" सरला ने खिन्न स्वर में पूछा।

"सरकार बहुत नाराज हैं छोटी भाभी जी," डरी हुई आवाज में सरजू ने कहा।

सरला ने मुसकरा कर अपनी जिठानी की ओर देखा; कितना डरते हैं पंडित जी से इस घर के सभी लोग, एक मुझे छोड़ कर—सरला की वे मुसकराती आंखें कह रही थीं। और "सुन आऊं, क्या बात है," कहती हुई वह इस तरह पूरे आत्मविश्वास के साथ उठी मानों पंडित जी को शांत करके वह अभी लौट ही रही है खाने के लिये।

पर निडर सरला का भी कलेजा एक बार थोड़ी देर के लिये कांप उठा जब ऊपर जाने वाली सीढ़ी पर पहला पांव रखते ही उसने कुछ ही सीढ़ियों-ऊपर खड़े पंडित जी की कड़ी आवाज सुनी—"दरवाजा अन्दर से बन्द करके आ !"

इस सीढ़ी के नीचे और ऊपर दोनों छोरों पर एक-एक दरवाजा

था, पर रात को भी कभी कोई बन्द नहीं किया जाता था। सरला और पंडित जी दोनों ही जब ऊपर होते थे तब किसी को कुछ कहना भी होता था तो वह सीढ़ी के नीचे वाले दरवाजे पर खड़ा होकर पुकारता था सरला को, और जब सरला सीढ़ी के ऊपर वाले दरवाजे पर खड़े होकर इजाजत देती थी तभी कोई ऊपर तक चढ़ कर आता था अपनी बात कहने के लिये। और अगर राधेश्याम को ही कभी यह जरूरत पड़ी तो सरला स्वयं नीचे तक उतर कर आती थी उनकी बात सुनने के लिये।

पर न सीढ़ी का ऊपर वाला दरवाजा कभी ऊपर से बन्द किया जाता था और न सीढ़ी का नीचे वाला दरवाजा, और सरला को ताज्जुब ही नहीं हुआ, कुछ डर भी मालूम हुआ अपने ससुर का यह बिलकुल ही नया आदेश, और अपने प्रति भी उनका वह कठोर स्वर, सुन कर। कुछ-कुछ धड़कते हुए दिल से उसने नीचे वाला वह दरवाजा बन्द किया और उस पर सिकड़ी चढ़ा कर धीरे-धीरे वह ऊपर आई। पंडित जी तब तक छत पर अपनी आरामकुरसी पर जा लेटे थे।

"ये ऊपर वाला दरवाजा भी बन्द करती आ," इस बार पंडित जी ने एक निर्लिप्त-सी गंभीर वाणी में कहा, और सरला का गला बिलकुल ही खुश्क हो गया।

धीरे-धीरे वह आकर पंडित जी के एक ओर खड़ी हो गई।

पंडित जी भी थोड़ी देर चुप रहे; मानो उन्हें ठीक शब्द नहीं मिल पा रहे थे।

एक बार उन्होंने धीरे से और फिर एक बार जोर से अपना गला साफ किया, हालांकि बलगम का कोई लेश भी उनके गले में उस वक्त नहीं था। और फिर अचानक गरज उठे—"ज्वाला के साथ क्या किया था?"

तिपाई पर रखे दोहरी बत्ती वाले लैम्प के दूधिया ग्लोब में से निकल कर हलकी दूधिया रोशनी पंडित जी और सरला दोनों के ही चेहरों पर थी। पंडित जी ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि सरला के चेहरे पर, उसकी आँखों

पर, स्थापित कर दी थी—तीक्ष्ण, कठोर, निर्मम दृष्टि !

सरला की छाती के अन्दर कोई बहुत बड़ा गोला-सा अचानक फूल उठा और उसके गले तक चढ़ आया। पर प्राणपण शक्ति से सरला ने उसको अपनी छाती के अन्दर ही दबा-दबा कर कुचलना शुरू किया, और अपने चेहरे को अधिक से अधिक स्वाभाविक रखने की कोशिश करते हुए बेहद भोलेपन के साथ कहा—"जी ? ...समझी नहीं मैं !"

"ज्वाला क्या करता था तेरे साथ ?" पंडित जी ने कड़कती हुई आवाज में कहा।

"जी.....?.....मैं नहीं समझ पा रही हूँ," अपनी अबोधता में मानो टूटते हुए कहा सरला ने।

"समझी नहीं ?" दांत पीसते हुए पंडित जी ने कहा और तिपाई पर से वह चिट्ठी उठा कर सरला की ओर बढ़ा दी। उनकी आंखों के जलते हुए अंगारे सरला को मानो भस्म कर देना चाहते थे।

सरला ने, मानो वह बिलकुल ही अबोध हो, अत्यन्त कुतूहलपूर्वक हाथ बढ़ा कर वह चिट्ठी ले ली, और भय से कांपती हुई भी अपनी निर्भयता को प्रदर्शित करती हुई वह धीरे-धीरे उस चिट्ठी को खोलती हुई तिपाई पर रखे लैम्प के पास आई और वहीं छत पर बैठते हुए उसे पढ़ने लगी।

चिट्ठी के अन्त तक आते-आते सरला की आँखों के आगे एकदम अँधेरा छा गया, और वह लैम्प, और लैम्प के उस किनारे बैठे हुए पंडित जी, और उसकी ओर घूरती हुई उनकी वे तेज, चमकीली आँखें—ये सब एकदम ही धुंधले हो उठे उसकी आंखों के सामने। कुछ ही क्षण के लिये इस तरह बैठी रही होगी वह खोई-खोई सी, भय, ग्लानि और लज्जा की मूर्त्ति सी बनी। होश होते ही अपनी इस भीरुता पर वह पछताई और उसका तेज दिमाग आत्मरक्षा की नीति निर्धारित करने में तेजी से जुट गया। क्या वह अपराध स्वीकार करके कड़े-से-कड़े दण्ड की याचना करे, या अधिक दोष ज्वाला के सिर मढ़ के वह एक-चतुर्थांश दोष अपने ऊपर ले ले ? या एकबारगी ही सब अस्वीकार करती चली

जाय और चुपचाप झेल ले पंडित जी के ज्वालामुखी के विस्फोट को? कुछ भी वह ठीक नहीं कर पा रही थी, सिवा इतनी बात के कि आज उसकी अग्नि-परीक्षा है, आज की उसकी जीत सदा की जीत बन कर रहेगी और आज की हार हमेशा की हार।

सरला के मन में यह तूफान गरज रहा था, पर उसकी स्थूल आँखें उस चिट्ठी पर थीं। उसे अपने सामने रखे वह दरअसल समय ले रही थी सोचने का, अपने को संभालने का। अचानक वह चौंक उठी। पंडित जी ने वह चिट्ठी उसके हाथ से छीन ली थी, और उसकी बांह पकड़ कर एक झटके के साथ उन्होंने उसे खींचना शुरू कर दिया था।

इसके बाद कितनी देर तक उस रात उसने पंडित जी की मार खाई, तरह-तरह की मार, यह वह कभी ठीक से याद नहीं कर पाई। दोनों ही उस रोज एक नशे में थे—मारने वाला भी और पिटने वाला भी, पंडित जी भी और सरला भी। सरला के मन में एक ही बात थी, कि वह हारेगी नहीं आज, अपनी इस अग्नि-परीक्षा के दिन, और कोई भी यातना उसके लिये असह्य नहीं होगी, एक बार भी वह बाधा नहीं देगी, एक बार भी चीखेगी नहीं, चिल्लाएगी नहीं, उफ तक नहीं करेगी। मानो उसका वह मन वज्र का मन बन कर रहेगा, और उसका बदन मिट्टी का एक लौंदा। जब तक पंडित जी उसे पीटते रहे—लातों से, घूंसों से, चपतों से, और अन्त में चमड़े के उस हण्टर से भी, तब तक एक भी शब्द नहीं निकला सरला के मुंह से, एक बार भी उसका हाथ नहीं उठा पंडित जी को रोकने के लिये। वह पिटती चली गई चुपचाप, लातों से, घूंसों से, और चपतों से, और अन्त में उस चमड़े के हण्टर से भी, जिसके एक-एक वार ने उसके बदन पर खून की लाल-लाल लकीर छोड़ दी। पर उसने उफ तक नहीं की।

पंडित जी क्या-क्या अनाप-शनाप बकते चले गए उस वक्त यह भी सरला को याद नहीं आया कभी पीछे, मानो उसके कान बहरे हो गए थे, चेतना-शून्य हो गए उसके बदन की ही तरह।

और अन्त में पंडित जी ही थक कर जा पड़े अपनी आरामकुरसी पर, आठ-दस गज के फासले पर छत के नंगे फर्श पर मांस के एक लम्बे-चौड़े लोथड़े की तरह पड़ा छोड़ कर सरला को।

करीब पंद्रह-बीस मिनट बीते इसी तरह। पंडित जी का हांपना बन्द हो चुका था; नंगे-बदन का पसीना हलकी-हलकी हवा ने अब तक सुखा-सा दिया था। दिमाग भी शायद कुछ ठण्डा हुआ था।

"इधर आ," पंडित जी ने अचानक आवाज दी। न कठोरता थी इस स्वर में, और न मुलायमियत ही।

मांस का वह लोथड़ा कुछ-कुछ हिलता दिखाई दिया। सरला दोनों हाथों को छत पर टेक कर धीरे-धीरे उठ बैठी, और फिर अपने अस्तव्यस्त कपड़ों को ठीक करती हुई उठ खड़ी हुई। सारा बदन ही मानो जोर से चीख उठा। पर सरला के मुंह से वेदना का एक भी स्वर बाहर नहीं निकला। और धीरे-धीरे चलती हुई वह पंडित जी के पास आ खड़ी हुई और अपनी आंखें उठा कर उसने पंडित जी की ओर ताका, किसी करुण दृष्टि से नहीं, और न किसी अपराधी की ही दीन दृष्टि से; उन आंखों में नम्रता थी, भोलापन था, कुछ शिकायत भी थी शायद।

पर पंडित जी ने शायद यह सब कुछ नहीं देखा। बोले—"बोल, क्या कहना है तुझे?"

पर मुंह से सरला ने अब भी कुछ नहीं कहा। वह सिर्फ उसी दृष्टि से ताकती रह गई उनकी ओर, दर्द के मारे मुश्किल से किसी तरह खड़ी रहती हुई।

पंडित जी अधीर हो उठे। "बोल, क्या किया था तुम दोनों ने?" वे फिर गरज उठे।

"जी, कुछ नहीं," इस बार सरला ने जवाब दिया, बिलकुल ही सहज स्वर में।

"कुछ नहीं!" गरजते हुए पंडित जी उठ खड़े हुए, और तेजी के साथ अपने कमरे में चले गए।

और अपना भरा हुआ पिस्तौल लेकर लौटते ही पंडित जी एक हाथ से सरला को घसीटते हुए अपने पलंग पर ले आए, और अपने बिस्तरे पर उसे गिरा उसकी छाती पर पिस्तौल की नली रख दी।

"बता, नहीं तो दागता हूँ पिस्तौल अभी," पंडित जी एक बार फिर गरज उठे।

पर सरला आत्मरक्षा का अपना मार्ग निर्धारित कर चुकी थी, और अन्त तक वह अडिग रही। उसकी एक ही सफाई रही आखीर तक, कि ज्वालादत्त ने जो लिखा है सब झूट है, सरासर झूट।

"तो तुझसे दुश्मनी क्या थी ज्वाला की?" आखिर पिस्तौल को सरला की छाती से हटाने के लिये बाध्य होकर पंडित जी ने पूछा। और तब सरला ने, पंडित जी के बिछौने पर से उठने की भी कोशिश किये बिना, धीरे-धीरे पंडित जी को बतलाया कि ज्वालादत्त जवान हो उठी कोयल के आसपास किस तरह मंडराया करता था और किस तरह इस बात को लेकर सरला ने उसे बका-झका था, और किस तरह उस ठण्ढी रात को, पंडित जी के दौरे पर रहते वक्त, ज्वालादत्त ने कोयल के कमरे में घुसना चाहा था आधी रात को, और किस तरह आहट पाकर सरला ने उसे करीब-करीब रंगे-हाथों पकड़ा था, और किस तरह वह अगले दिन सबेरे भाग खड़ा हुआ था पंडित जी तक इस बात के पहुंचने के डर से।

स्तब्ध रह गए पंडित जी यह सब सुन कर, और सरला के प्रति सन्देह और अविश्वास के सारे बादल धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न हो गए उनके दिल से। और धीरे-धीरे कब वे सरला के सिरहाने बैठ गए थे, और कब उन्होंने धीरे से उसका सिर अपनी गोद में रख लिया था, यह उनको पता ही नहीं चला।

"तो ज्वाला के भागने के बाद तूने मुझसे छिपाई क्यों थी यह बात अब तक?" पंडित जी ने फिर जरा कड़े पड़ते हुए पूछा।

"यह गलती जरूर हुई मुझसे," सरला ने पंडित जी के अहंकार को

तृप्त करते हुए कहा, "और सजा दे लीजिये इस गलती की।" और उसने कोशिश की कि पंडित जी की गोदी से अपना सिर उठा कर वह उठ बैठे उनकी और सजा पाने के लिये, पर पंडित जी ने उसका सिर अपनी गोद में और जोर से दबा लिया और धीरे-धीरे उसके सिर पर, उसके गाल पर, उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे।

"बहुत चोट लगी है न?" कुछ देर बाद बहुत ही मीठे स्वर में, बड़े ही प्यार के साथ उन्होंने पूछा। शायद उनकी आंखों में भी कुछ गीलापन था—बिलकुल नई-सी बात।

और अन्त में पंडित जी सीढ़ी का दरवाजा खोल कर नीचे उतरे और सीढ़ी का नीचे वाला दरवाजा भी खोल कर उन्होंने रामदीन को पुकारा और फिर जमुना को भी, और उन्हें हल्दी-चूना तैयार करने का हुक्म ही नहीं दिया, उसकी पूरी विधि भी बतलाई— कितनी हल्दी, कितना चूना, कितना पानी, और किस तरह उन्हें आग पर कितना पकाया जाय। और जब जमुना ने सीढ़ी के ऊपर वाले दरवाजे पर आकर पुकारा—"जी, हल्दी-चूना लाई हूँ।" तब पंडित जी ने खाट पर पड़ी हुई सरला के पास से फिर आकर हल्दी-चूने का गरम-गरम बर्तन लिया, और जमुना को वहीं से लौटा कर, सीढ़ी का दरवाजा भिड़ा कर, जमुना के मन के अन्दर छिपे हुए प्रचण्ड कुतूहल को शांत करने की कोई जरूरत न समझ, वे सरला के पास आ बैठे और अपने हाथ से उसके एक-एक घाव पर गरम-गरम लेप करने लगे।

सरला ने बार-बार मना किया—"आप क्यों तकलीफ कर रहे हैं इतनी···मुझे दीजिये, मैं लगा लूंगी···शर्म लगती है मुझे, रहने दीजिये···" पर पंडित जी ने मानो उसकी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया। "पगली कहीं की, तू कैसे लेप कर पाएगी···?" सिर्फ एक बार उन्होंने उसे जवाब दिया, और अत्यन्त मनोयोग-पूर्वक अपने काम में लगे रहे।

इससे बड़ी जीत और क्या हो सकती थी सरला की? आत्मरक्षा का जो मार्ग उसने चुना था वह पूरी तरह सफल प्रमाणित हुआ; उस

दिन की उस कठोर तपस्या ने सदा के लिये उसका मार्ग प्रशस्त कर दिया। पंडित जी पर उसे सदा के लिये पूरा अधिकार मिल गया।

[३]

उस रात पंडित जी बिलकुल ही नहीं सोए। पंडित जी के ही पलंग पर पड़ी सरला ने बार-बार उठने की कोशिश की थी—"मैं जाती हूँ, आज नीचे ही सो रहूँगी," पर पंडित जी नहीं माने। "तो फिर, मैं यहीं नीचे छत पर सो जाती हूँ चटाई बिछा कर," उसने फिर आग्रह किया था। पर पंडित जी फिर नहीं माने, और उसे यह भरोसा देकर कि अपने सोने के लिये वे फिर नीचे से एक पलंग और बिछौना मंगा लेंगे, वे उसे सुलाने की कोशिश में लग गए थे। और जब उनके जानते वह सो गई और उस ओर से पंडित जी कुछ निश्चिन्त हुए तब भी उन्हें साफ दिखाई दे रहा था कि आज की रात वे सो नहीं पाएंगे। और इसलिये वे आरामकुरसी पर ही जा लेटे।

और तब उनका ध्यान फिर ज्वालादत्त की ओर गया; और अचानक उन्हें याद आया कि उसकी दो-दो चिट्ठियां और आई रक्खी हैं उस तिपाई पर, जिन्हें उन्होंने खोला तक नहीं है। लैम्प की दोनों बत्तियों को पंडित जी ने फिर तेज किया, और पहले अपने नाम का लिफाफा खोल कर उन्होंने अपनी चिट्ठी पढ़नी शुरू करनी चाही, पर फिर उन्होंने विचार बदल दिया और जमुना की चिट्ठी तेजी से खोल डाली और उसे पढ़ गए। चिट्ठी पढ़ते ही उनके दिमाग की गर्मी का पारा तेजी से चढ़ने लगा और उसे पूरा करके जल्दी से उन्होंने अपनी चिट्ठी पर नजर दौड़ाई। अपनी चिट्ठी वे पूरी खत्म भी नहीं कर सके, और वे चीख उठे—"जान ले लूँगा बदमाश की।..."

दूसरे ही क्षण पंडित जी ने सरला की ओर दृष्टि फेरी, और वे यह देख कर निश्चिन्त हुए कि वह उनकी उस चीख से भी नहीं जगी।

और वे आरामकुरसी पर से उठ खड़े हुए और तेजी से छत पर चक्कर लगाने लगे।

जमुना की चिट्ठी में ज्वालादत्त ने लिखा था कि वह एक सेठ के साथ दक्षिण-अफ्रीका जा रहा है—स्वावलम्बी बनने ही नहीं, अच्छा-खासा रुपया कमाने, और अगर जमुना चाहती है कि ज्वालादत्त उसकी और उसके बच्चे की जिम्मेदारी अपने ऊपर समझे तो अपने बाप से कहे कि वे अपनी वसीयत लिख कर उसमें ज्वालादत्त को अपनी आधी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाएं, और दस हजार रुपये फौरन ज्वालादत्त के हवाले करने को तैयार हों ताकि वह यह रुपया जमानत के तौर पर अपने सेठ के हवाले कर शुरू से ही उनके व्यापार में अपना एक हिस्सा बना सके। पर अगर जमुना के बाप ऐसा करने को तैयार नहीं हैं—ज्वालादत्त ने लिखा—तो वह न कभी हिन्दुस्तान वापस लौटेगा और न अपने को जमुना का पति या किसी बच्चे का बाप मानेगा, और वह आजाद होगा वहां पहुँच कर अपनी नई गृहस्थी बनाने के लिये।

अपने श्वसुर को ज्वालादत्त ने बहुत ही कड़ी और अपमानजनक चिट्ठी लिखी थी। "आपका दामाद बन कर आपके नौकरों से शायद ही कुछ अच्छी हालत में रहा मैं आपके घर," उसने लिखा था। "दिल्ली में लाला जी के घर मैं उनका एक आश्रित मात्र था, फिर भी उनके यहाँ मेरा उतना असम्मान नहीं था।"

"बड़ी आशाएं लेकर पहले-पहल दिल्ली से आया था आपके दर्शन करने," आगे चल कर उसने लिखा था, "और प्रथम दर्शन में मैं श्रद्धा और भक्ति से विह्वल हो गया था आपके प्रति। पर दरअसल आप क्या हैं यह तो मुझे धीरे-धीरे पता लगा, और काफी बाद को ही यह समझ पाया कि आप आदमी नहीं जानवर हैं।"

बड़ी मुशकिल से इसके बाद आगे पढ़ पाए थे यह चिट्ठी पंडित जी।

"इतना अहंकार किसी भी आदमी को शोभा नहीं देता," कुछ और आगे चल कर ज्वालादत्त ने लिखा था, "तहसीलदार से डिप्टी-

कलक्टर, और डिप्टी-कलक्टर से कलक्टर होने वाले किसी आदमी को भी नहीं। दुनिया में हो नहीं हिन्दुस्तान में ही, और हिन्दुस्तान में भी आपके आसपास, आपके चारो ओर हो अनगिनत आदमी हैं जो आपसे बड़े हैं—कोई धन में, कोई विद्या में, कोई कीर्ति में, कोई अधिकार और शक्ति में। पर आपके मानिक अहंकार और दंभ तो शायद ही किसी दूसरे में हो।..."

और एक स्थल पर सरला और पंडित जी के सम्बंध पर भी काफी कड़ा इशारा था, और काफी भद्दे और कड़े शब्द इस्तेमाल किये गए थे।

छत पर चक्कर काटते-काटते जब पंडित जी थक कर चूर-चूर हो गए तब वे एक बार फिर आरामकुरसी पर आकर बैठ गए। घड़ी में देखा – चार बज रहे थे। लैम्प की दोनों बत्तियां सारी रात जली थीं, और उनका तेल शायद खत्म हो रहा था। सबेरे से पहले का घनीभूत अंधकार लैम्प की धीमी पड़ती हुई रोशनी में और भी घना होता जा रहा था।

अचानक पंडित जी ने ज्वालादत्त की वे तीनों चिट्ठियां उठाईं और उनमें से सरला वाली चिट्ठी को लपेट कर गोल करके उसका एक छोर लेम्प की चिमनी में घुसा दिया। कुछ देर में ही उसने आग पकड़ ली, और चिमनी से उसे निकाल कर पंडित जी अपने हाथ में ही लिये अन्त तक उसका जलना देखते रहे। और इसी तरह उन्होंने अपनी चिट्ठी को भी जल कर राख हो जाने दिया।

सवेरे नाश्ता करने के बाद पडित जी ने अपने नीचे के पढ़ने वाले कमरे में राधे और जमुना को बुला भेजा।

चांदी की कमानी का चश्मा आँखों पर लगाए पंडित जी महाभारत की एक मोटी जिल्द अपने सामने खोले बैठे थे, जबकि दोनों भाई-बहन अपने पिता के सामने चुपचाप जा खड़े हुए। कई मिनट वे उसी तरह खड़े इन्तजार करते रहे, पर पंडित जी की आँखें उस मोटी पोथी पर ही जमी रहीं।

कुछ देर इस तरह खड़े रहने के बाद राधेश्याम को यह खयाल आया कि शायद पंडित जी को उन दोनों की उपस्थिति का पता ही नहीं है, और वे सोच ही रहे थे कि किस तरह अपने पिता का ध्यान आकृष्ट करे, कि सहसा, बिना उनकी ओर आँखें उठाए, पंडित जी बोल उठे—"शंकर कहाँ है ?"

"जी, कौन शंकर ?" राधेश्याम ने घबड़ाए-से स्वर में पूछा।

"तुझसे नहीं पूछ रहा हूँ—जमनी से पूछ रहा हूँ," पंडित जी ने एक अजीब मीठे और नरम स्वर में कहा और चश्मे के ऊपर से अपनी दोनों आँखों को जमुना के चेहरे पर केन्द्रीभूत कर दिया।

"जी..... जी, मैं नहीं समझी," जमुना के स्वर में और भी ज्यादा घबड़ाहट थी, और भी ज्यादा परेशानी।

पंडित जी अट्टहास कर उठे।

"तू भी नहीं समझी ?" और फिर एक अट्टहास किया पंडित जी ने, और पढ़ने वाला अपना वह चश्मा उतार कर मेज पर रखते हुए, जमुना के चेहरे पर से अपनी हँसती हुई आँखों को हटाए बिना, कुछ रुक कर, बोले—"किसे पाने के लिये तपस्या की थी तूने ?"

"जी.....?" जमुना के चेहरे पर घबड़ाहट ही घबड़ाहट थी।

"अरी बेवकूफ, शंकर को पाने के लिये तपस्या की थी या नहीं तूने ?"

"जी !" जमुना की मानों जान-में-जान आई, पर समझी वह फिर भी कुछ नहीं।

"तो, शंकर मिले या नहीं तुझे ?"

"....."

"चुप क्यों है ?.....पार्वती ने शंकर के लिये तपस्या की थी; शंकर मिल गए उन्हें।.....तूने शंकर के लिये तपस्या की; तुझे नहीं मिले शंकर ?"

जमुना फिर भी चुप रही।

"पहले उनके कण्ठ का विष मिला तुझे, विष की ज्वाला—ज्वालादत्त ! और फिर मिला तुझे अपना बेटा—शंकर। ···क्या नाम रखा है तुम लोगों ने उसका ?···मैंने उसका नाम आज से शंकर रखा।"

कुछ देर सन्नाटा रहा, जिस बीच जमुना के मन में तरह-तरह के भाव आए और गए। ज्वालादत्त को गए करीब-करीब एक महीना हो चुका था, पर जमुना के मन में कोई बड़ा भय नहीं पैदा हुआ था। उनकी प्रकृति का जो परिचय उसे मिला था उसमें कहीं भी तो कुछ ऐसा नहीं था जो उसे अपने भविष्य के बारे में अत्यधिक चिन्तित कर दे। निष्ठुर होने पर भी उनमें दृढ़ता की बेहद कमी पाई थी उसने।

इसके अलावा, जमुना के हृदय में कोई खास स्थान नहीं बनाया था ज्वालादत्त ने, स्नेह और माधुर्य का, या फिर अपने अधिकार और अपने स्वामित्व के नाते ही कोई बड़ा स्थान। अपने बड़े भैया और बड़ी भाभी की ही दुनिया अभी तक जमुना की दुनिया थी; विवाह के बाद भी उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। और अगर उसके हृदय में कोई नया स्थान बना था तो वह उस नन्हें से प्राणी ने बनाया था जो अयाचित भाव से ही एक दिन उसकी गोद में आ पड़ा था, उसके तन-मन के निचोड़ के रूप में। वह उसे पाकर निहाल हो गई थी।

"क्या कहती है—शंकर के विष की ज्वाला को लेगी, या शंकर को ?" कुछ देर के सन्नाटे को सहसा भंग करते हुए पंडित जी ने, इस बार अपने गुरु-गंभीर स्वाभाविक स्वर में, पूछा।

जमुना फिर एक बार घबड़ा गई। पंडित जी के इस प्रश्न का क्या मतलब है, ज्वालादत्त की कोई खबर आई है क्या—कुछ भी वह समझ नहीं पाई, और न कुछ पूछने का ही साहस हुआ उसे। और एक गोलमोल सा जवाब खोजती हुई वह कह बैठी—"जी, शंकर तो है ही मेरे पास।"

"शंकर तेरे पास नहीं रहने पाएगा अगर ज्वाला के साथ रहना चाहेगी," पंडित जी करीब-करीब गरज उठे।

"जी, ज्वालादत्त की कोई खबर ...?" इस बार राधेश्याम ने, असमंजस के स्वर में, कहा।

"हाँ, ज्वाला की चिट्ठी आई है," पंडित जी गरजते चले गए। वह साउथ-अफ्रीका गया है। ...वहीं रहेगा।.. एक और ब्याह करेगा, और जमुना को दासी बना कर रखेगा। ..... हरामजादा, कुत्ता कहीं का। मेरे ही टुकड़ों पर पल कर मुझीको धमकियां दे रहा है!"

कुछ देर फिर सन्नाटा रहा, जमुना और राधेश्याम दोनों के लिये एक बहुत ही अस्वस्तिकर सन्नाटा। जमुना का गला खुश्क हुआ जा रहा था, दिल धड़क रहा था— हे भगवान, क्या होने जा रहा है। अब पहले-पहल ज्वालादत्त के भाग जाने का कोई खतरनाक पहलू उसके सामने आ रहा था! क्या सारी उम्र उसे पति-विहीन जीवन बिताना पड़ सकता है?

"ज्वाला की और अपनी सौत की गुलामी करनी हो तो चली जा साउथ-अफ्रीका, अभी, इसी दम!.. मेरे घर में फिर तेरे लिये कभी कोई जगह नहीं होगी। ... और शंकर यहीं रहेगा मेरे पास। ... बोल, क्या चाहती है?" पंडित जी ने अपना आखिरी फैसला सुना दिया। बेचारी जमुना के सामने उन्होंने दरअसल कोई विकल्प ही नहीं रखा था, उसे चुनने के लिये कुछ दिया ही नहीं।

जमुना इतने बड़े प्रश्न का इतनी जल्द भला क्या जवाब दे देती! बिलकुल बच्ची नहीं थी अब वह; एक ब्याहता औरत थी, एक माँ।

"तू क्या कहता है?" इस बीच पंडित जी ने राधेश्याम से प्रश्न किया, और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही इतना और जड़ दिया—"अगर इसे उस हरामजादे के पास जाना है तो तुझे और तेरी बहू को भी मुझे लिख कर देना होगा कि इसके साथ फिर कभी तुम लोगों का कोई नाता नहीं रहेगा।"

और जब जमुना और राधे दोनों के ही लम्बे मौन को अपनी इच्छा की स्वीकृति का लक्षण मान कर पंडित जी अपनी विजय के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गए तब फिर वे कुछ देर विचारमग्न मुद्रा में बैठे रहे, और

उसके बाद जमुना के लिये लिखी गई ज्वालादत्त की चिट्ठी को मेज के एक किनारे से उठा कर जमुना की ओर बढ़ाते हुए बोले—"यह ले अपनी चिट्ठी। इसका जवाब लिख कर ले आ।" अपनी बेटी के लिये लिखी गई अपने दामाद की चिट्ठी को पंडित जी ने किस नीति-शास्त्र के अनुसार खोल कर पढ़ लिया, इसकी सफाई देने न देने का प्रश्न यों भी शायद कभी न उठता; इस प्रसग में तो यह बात किसी के मन में भी नहीं आई— जमुना और राधेश्याम के भी मन में नहीं।

पंडित जी के पास से जब जमुना अपने कमरे में लौटी तब उसकी बड़ी भाभी ने, जो कुछ देर पहले तक पंडित जी के कमरे के बाहर— दरवाजे की ओट में—खड़ी बहुत-कुछ सुनती रही थी, जमुना के हाथ से ज्वालादत्त की चिट्ठी ले ली, और जमुना सीधी अपनी खाट पर जाकर तकिये में मुंह छिपा कर सिसक उठी। उसके दिल में एक तूफान-सा उठा हुआ था—विभिन्न भावों का बवण्डर। वह कुछ भी नहीं समझ पा रही थी कि यह सब क्या है, यह सब क्या हो रहा है।

अन्त में जमुना, उसके बड़े भैया, और उसकी बड़ी भाभी, तीनों ने मिल कर ज्वालादत्त की उस चिट्ठी का जवाब तैयार किया, और जमुना और राधे फिर पंडित जी के पास गए। और यह क्रिया दुहराई गई, तिहराई गई, और अन्त में जमुना की ओर से जो जवाब तैयार हुआ वह करीब-करीब पूरा का पूरा पंडित जी का ही लिखाया हुआ था। बेहद कड़ा जवाब था वह, और जमुना की ओर से यह स्पष्ट कर दिया गया था उसमें कि अपने ससुर की सम्पत्ति पर जिसका लोभ है वह न केवल नीच पुरुष है बल्कि जमुना उसे अपना स्वामी मानने को भी तैयार नहीं है। और अगर ज्वालादत्त अपनी स्त्री और अपने बच्चे के उत्तरदायित्व से अपने को मुक्त मान कर विदेश में बसना चाहता है और दूसरा विवाह करना चाहता है तो वह कापुरुष है, और ऐसे कापुरुष की स्त्री बन कर उसका घर बसाने की जगह जमुना जीवन भर विधवा कहलाना ज्यादा पसन्द करेगी।

इतना कड़ा पत्र किसी-भी स्त्री की ओर से कैसे-भी पति के लिये लिखा जाय यह राधे को अच्छा नहीं लग रहा था, पर अपने पिता का इस सीमा तक विरोध करने का उसमें साहस नहीं था। और जमुना के लिये यह सारा प्रसंग इतना भयंकर और वीभत्स था कि जिस-किसी प्रकार भी वह जल्द-से-जल्द इससे छुट्टी पाना चाहती थी, और अगर उस तरह की चिट्ठी लिख कर ही उसे इस अप्रिय प्रसंग से छुट्टी मिल सकती थी तो इसके सिवा उसके सामने चारा ही क्या था! इसके अलावा, अपने भविष्य, अपने भाग्य के बारे में न कभी उसने पहले कुछ सोचा था और न आज ही वह सोच सकती थी। अपने पिता और अपने बड़े भैया के इशारों पर ही वह चलती आई थी, और विवाह हो जाने के बाद भी जब इस परिस्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ा था तो अब पति का रूप प्रकट होने के बाद भी भला उसकी स्वतंत्र इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न कहाँ से आता? इस उत्तर पर कड़ी आपत्ति थी सिर्फ राधे की बहू को। "यह हो क्या गया है तुमको, कि जिन्दगी भर के लिये बहन की किस्मत फोड़े दे रहे हो बाप-बेटा दोनों मिल कर," अपने पति पर वह बरस पड़ी थी। "आखिर तो जमना बीबी का ब्याह हुआ है उनसे, जैसे भी हैं उन्हींके साथ तो निभानी पड़ेगी – आज नहीं तो कल, कल नहीं तो फिर कभी। .....अभी उनकी मत मारी गई है तो क्या कभी भी राह पर नहीं आएंगे?...हम लोगों का तो धरम यही है कि आग में और घी न डालें, पानी डालने का जतन करें।..."

पर राधे की बहू की भला वहाँ क्या चल सकती थी जहाँ पंडित जी अड़े हुए थे, और जहाँ राधे खुद कमजोर था?

[४]

और ज्वालादत्त पर जितना ही पंडित जी का क्रोध दिखाई दिया उस दिन, सरला के प्रति उतना ही आदर और सम्मान। उस घर में

यों भी एक सरला ही थी जिसका वजन था पंडित जी के लिये, पर पिछली रात की घटना के बाद से मानो वह वजन दस-बीस गुना नहीं, सौ-गुना बढ़ गया था। मानों जीवन में पहलेपहल पंडित जी अनुतप्त थे किसी के प्रति अपने दुर्व्यवहार के लिये; सरला को उन्होंने उस रात जितनी बेरहमी से पीटा था मानों उसका पूरा बदला चुका रहे थे अब वह।

सारी रात सरला का सारा बदन चीखता-कराहता रहा था, सारे बदन पर मानों आग के अनगिनत शोले जलते रहे थे सारी रात, पर सरला ने एक बार उफ तक नहीं की थी, एक आवाज नहीं निकाली थी मुंह से, एक बार करवट नहीं बदली थी। सारी रात वह गहरी नींद का स्वांग रचे पड़ी रही थी, असह्य यंत्रणा भोगती हुई। यही उसका एकमात्र रास्ता था पंडित जी की जाती हुई कृपादृष्टि को फिर से वापस पाने का. और यही था उसका प्रायश्चित्त। सारी रात उस घोर यंत्रणा के बीच अन्दर ही अन्दर छटपटाती हुई भी वह यही तो देखती रही थी कि कहाँ ज्वालादत्त और कहाँ पंडित जी! सारी रात वह उतनी बड़ी अपनी उस भूल के लिये अपने को कोसती रही थी और अपने खोए हुए रास्ते के निशान खोजती रही थी। किस बचपने में आकर, किस आवेश में बह कर उसने धोखा दिया था अपने इस देवता को, इस पुरुष-सिंह को? और अपनी जिस असह्य शारीरिक यंत्रणा को भी उसने चुप-चाप सह लिया था और एक बूंद आंसू नहीं गिराया था, वह बहुत ही छोटी पड़ गई इस मानसिक यंत्रणा के सामने, और बरबस उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। उस वक्त तो पंडित जी से छिपाने के लिये उसने उन आँसुओ को भी रोका, पर जब सबेरा हो गया और पंडित जी उसे अपने-जानते सोया ही छोड़ नीचे चले गए तब वह भी कुछ देर बाद धीरे-धीरे उतर कर किसी तरह नीचे के अपने कमरे में बिछे अपने पलंग पर जा पड़ी और अन्दर से दरवाजा बन्द करके फूट-फूट कर रोई।

उस दिन कई बार पंडित जी ने चाहा कि सरला के कमरे में जाएं, उसकी खबर लें, पर दरवाजे तक जा-जा कर वे लौट आए।

पर तीसरे पहर वे कचहरी से जल्दी ही लौट आए और सीधे सरला के कमरे में जा पहुँचे।

सरला आंखें बन्द किये पड़ी थी अपनी खाट पर, दरवाजे की ही ओर मुंह किये। उसके पास ही एक स्टूल पर कोयल बैठी धीरे-धीरे पंखा झल रही थी।

दरवाजा आधा खुला हुआ था, और पंडित जी अपने स्वाभाविक नियम और अभ्यास के प्रतिकूल बहुत धीरे-धीरे, हलके पांव रखते हुए, सरला के कमरे में घुसे थे। घुस कर उन्होंने धीरे से ही अपने गले की आवाज की, यह देखने के लिये कि सरला नींद से सोई हुई है या जगी है।

कोयल घबड़ा कर उठ खड़ी हुई, और सरला ने सहसा आँखें खोल कर जल्दी से खाट पर उठने की कोशिश की।

"तू जा," एक अजीब नरमी के साथ पंडित जी ने कोयल से कहा, और कोयल तेजी से बाहर निकल गई और कमरे का दरवाजा बन्द करती गई।

"यह क्या?" सरला के माथे पर हाथ रखते ही पंडित जी बोल उठे, "बुखार आ गया है?...कब से?"

"जी, मुझे तो पता नहीं!" अकृत्रिम ही भोलेपन के साथ सरला ने कहा, और खाट पर से उतरने के लिये पांव बढ़ाए।

"लेट जा," परम स्नेहपूर्ण स्वर में पंडित जी ने कड़ाई के साथ आदेश दिया, और सरला के दोनों कन्धों पर अपने हाथ रख कर जोर देकर उसे लिटा दिया।

"बहुत तकलीफ है?" पंडित जी ने कुछ क्षण बाद गंभीर स्वर में पूछा, और सरला के सिर पर झुक कर उसके माथे पर, उसके सिर पर, धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे।

"जी नहीं," सरला ने आखें बन्द करते हुए कहा और अपनी खोई हुई बाजी को इस हद तक जीतने के गर्व और आनन्द में उसका सारा तन-मन पुलकित हो उठा।

दसवाँ परिच्छेद

[१]

सबसे छोटी विधवा बहू सरला पंडित भगवतीचरण के घर की हर तरह से रानी थी. पर उसकी सबसे बड़ी साध किसी तरह भी पूरी होती नहीं दिखाई देती थी। क्या-क्या नहीं किया उसने किसी नन्हें से बच्चे को अपना बना कर पाल लेने के लिये, पर कोई बच्चा उसे नहीं मिल सका जिसे वह अपना ले। उसके पिता ने अवश्य उसकी इस कमी को पूरा करने के लिये अपनी ओर से एक के बाद एक कितने ही प्रस्ताव समय-समय पर रखे, सरला के सबसे छोटे भाई से लेकर सरला के सबसे बड़े भाई के हर दो साल पर होते चले जाने वाले बच्चों में से किसी को भी—जो सब के सब लड़के ही होते थे 'परमात्मा की कृपा से'—सरला की गोद दे देने के लिये और पंडित भगवतीचरण की सम्पत्ति के उत्तराधिकार में हिस्सा बंटाने के लिये। पर सरला जितना अपने पिता को जानती थी उससे भी ज्यादा अपने ससुर को जान गई थी, और उनके मन में किसी भी प्रकार का सन्देह पैदा करके अपने एकमात्र आश्रयस्थल को संकटापन्न करने को वह कभी तैयार नहीं हुई। अपने भविष्य के लिये उसे कोई चिन्ता नहीं थी, अपने ऊपर उसे पूरा भरोसा था और वह जानती थी कि पंडित जी की कृपादृष्टि से वह कभी वंचित नहीं होगी। इसके अलावा, अपने पितृकुल के किसी बच्चे को अपना बना कर पाल लेने भर से ही वह पंडित जी की सम्पत्ति का एक हिस्सेदार बन जायगी, यह बात भी वह मानने को तैयार नहीं थी। अगर उस पराए बच्चे के पक्ष में अपनी सम्पत्ति का कोई हिस्सा पंडित जी अपनी वसीयत में लिखेंगे तो सरला की ही चेष्टा से, और जो सरला यह कहा

सकती है वह क्या अपने लिये ही पंडित जी की वसीयत में उनकी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा तो क्या, कुल की कुल ही सम्पत्ति नहीं लिखा ले सकेगी ?

नहीं, किसी बच्चे को पालने में सरला का इस प्रकार का कोई स्वार्थ नहीं था। बच्चा वह चाहती थी मां बनने के लिये, मातृत्व की साध मिटाने के लिये, उसे बिलकुल अपना मान कर चूमने-चाटने के लिये। बच्चे सरला के दिल में बरबस रस की धार उँड़ेल देते थे; नन्हें-नन्हें बच्चों को देख वह सब-कुछ भूल जाती थी—उसकी आंखों में रस उतर आता था, उसकी छातियां तन जाती थीं, उसके बदन का रोम-रोम अकुला उठता था।

जमुना बीबी के मुन्ना को पाकर सरला निहाल हो गई थी, पर वह जानती थी कि वह उसे नहीं मिलेगा। उसने क्या-क्या नहीं किया जमुना के दूसरे बच्चे की उपलब्धि के लिये, और जब जमुना से उसने वचन ले लिया कि वह उसे सरला को दे देगी तब किस तरह महीने पर महीने उसने एक-एक दिन गिना उसके जन्म की आशा में। पर वह होकर भी चल बसा, और सरला के मन की इतनी बड़ी साध पूरी होकर भी पूरी नहीं हुई। बड़ी जिठानी का यह लल्ला भी कितनी मनौतियों के बाद, कितने बरसों में एक आया है अब, और इसके लिये तो सरला कोई सपना देख ही नहीं सकती।

पंडित जी के आदेश से जमुना की जो चिट्ठी ज्वालादत्त के पास भेजी गई उसके बारे में पता लगने पर सरला को फिर एक नई आशा हुई। इस चिट्ठी को पाकर तो ज्वालादत्त बिलकुल ही आग-बबूला हो जायगा, और जमुना के लिये अब कभी भी उसके घर में कोई जगह नहीं होगी।...तब तो जमुना बीबी को अपने मुन्ना के साथ यहीं रहना होगा जीवन भर, अपने पिता के घर। और उनके साथ यह मुन्ना भी यहीं रहेगा, और सरला अपने दिल की प्यास उसी को लेकर बुझाएगी किसी न किसी हद तक। कितना प्यारा लगता है यह मुन्ना सरला को। किसी तरह भी वह अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहती उसे।

पर जमुना जो खुश नहीं रहती सरला से ! बला से न रहे। जब यहाँ रहेगी तो सरला के मुकाबले उसकी क्या चलेगी यहाँ ? शंकर को धीरे-धीरे पूरी तरह से अपना कर लेगी तब सरला।

मगर बड़ी जिठानी के नन्हें-से लल्ला को भी जो जमुना बीबी ही पाल रही हैं ! अभी-अभी तो थोड़ा-बहुत बकरी का दूध पीना शुरू किया है उसने, नहीं तो जब देखो तभी जमुना बीबी की छाती के लिये हुमड़ता रहता है।··· पर दूध अब कहाँ रह गया है जमुना बीबी की भी छातियों में !··· बड़ी जिठानी बीमार जरूर रहती हैं, और कोई तो जरूर चाहिये इतने नन्हें से बच्चे की देखभाल के लिये।··· तो फिर कोयल ही क्यों न चली जाय इस बार बड़े जेठ की छुट्टियां बीतने पर इलाहाबाद ? जमुना बीबी यहीं रहें, और उनका और सरला का भी यह मुन्ना·····।

पर हाई-कोर्ट खुलने पर जब राधेश्याम ने इलाहाबाद लौटने की तैयारी की तब स्वभावतः उन्होंने और उनकी बहू ने यह मान लिया कि जमुना उनके साथ ही लौटेगी; नन्हें से लल्ला को उसके बिना कौन देखेगा ! और जाने के दो दिन पहले जब पंडित जी ने राधे से यह पूछा कि कौन-कौन जा रहा है उसके साथ, तब उन्होंने अनायास यही बात प्रकट कर दी।

"जमना बीबी को ले जाते हैं तो ले जाएं," वहीं खड़ी सरला ने तुरन्त टिप्पणी जड़ी, "पर शंकर को यहीं छोड़ जाएं मेरे पास।" शंकर से मतलब था जमुना के मुन्ना का, जिसका उस दिन पंडित जी यह नामकरण कर चुके थे।

पर पंडित जी ने यह प्रश्न दूसरी दृष्टि से किया था। सरला की टिप्पणी पर ध्यान दिये बिना उन्होंने कड़ाई के स्वर में पूछा—"यह कोयल कहाँ रहेगी ? किस पर है इसकी जिम्मेदारी ? कौन इसका ब्याह करेगा ?" पंडित जी की कठोर दृष्टि राधेश्याम के चेहरे पर थी।

राधेश्याम के पास भला क्या जवाब था इस प्रश्न का।

"मैं किसी के ब्याह-व्याह की जिम्मेदारी नहीं लूंगा अब," कुछ क्षण

चुप रह कर पंडित जी ने फिर कहना शुरू किया। "·····जमुनी की जिन्दगी तो चौपट कर डाली तुम सब लोगों ने मिल कर, अब इस कोयलिया का भी···" पर इसके आगे वे क्या कहें, कुछ ठीक नहीं कर पाए।

राधेश्याम में भला कहाँ यह हिम्मत थी कि अपने पिता के इस अभियोग को वे गलत साबित करते और कहते कि शेखर के साथ जमुना का ब्याह न होने देकर, एक अज्ञात-कुल-शील अनाथ छोकरे के साथ उसे ब्याह कर, उसे विधवा से भी गई-गुजरी हालत में लाने की पूरी जिम्मेदारी पंडित जी पर ही है। राधेश्याम चुप खड़े रहे।

"बुला जमुनी और कोयलिया को," पंडित जी ने फिर कुछ देर चुप रह कर आदेश दिया, और राधेश्याम दबे-पांवों उन्हें बुलाने चले गए।

"कौन लाया था तुझे तेरे बाप के घर से?" सबके इकट्ठा हो जाने पर पंडित जी ने कोयल की ओर अपनी सहज-कठोर दृष्टि स्थापित करके कहा।

"जी, मामा जी।" भयत्रस्त कोयल ने उस दृष्टि का सामना न कर पा अपनी आँखें नीची करके जवाब दिया।

"तो वही तेरा ब्याह करेगा। उसी के साथ चली जा इलाहाबाद," पंडित जी ने अपना फैसला सुना दिया।

"और तू क्या चाहती है?" इस बार पंडित जी ने जमुना के भाग्य का निपटारा करना चाहा।

"....."

"तू भी इलाहाबाद जाना चाहती है?"

जमुना की हिम्मत नहीं पड़ी कि कह दे—"जी।"

"कितनी आमदनी हो रही है तेरे बड़े भैया की?" जमुना को चुप देख और उसके मन का भाव ताड़ कुछ देर बाद उन्होंने पूछा। और बिना किसी जवाब का इन्तजार किये कहना जारी रखा—"तू जा सकती है अगर अपना और तेरा पूरा जिम्मा राधे लेता हो।"

और उन्होंने राधेश्याम की ओर अपनी उसी सहज-कठोर दृष्टि से देखा।

राधेश्याम की भला क्या हैसियत थी कि वह अपने ही परिवार का पूरा खर्चा चला सकते। वह कुछ नहीं बोले।

"जाओ, कल तक सब लोग आपस में सलाह करके बतलाना—क्या ठीक हुआ," पंडित जी ने अन्त में कहा, और सरला को छोड़ बाकी सब धीरे-धीरे वहाँ से चले गए।

सलाह भला अब क्या करनी थी, राधेश्याम ने सोचा, फैसला तो हो ही गया कि कोयल उनके साथ जायगी और जमुना-शंकर यहीं रहेंगे। वह कहाँ अभी तक अपने पांवों पर खड़े हो पाए हैं जो अपने पिता की मर्जी के खिलाफ कोई कदम उठा सकें।

[२]

पर हुआ ठीक उलटा ही।

पंडित जी के पास से आकर जमुना सीधी अपनी खाट पर जाकर तकिये में मुंह छिपा कर पड़ गई और उसके बड़े भैया और बड़ी भाभी को तब पता लगा जब शंकर ने जाकर उन्हें खबर दी—"अम्मा लो लई ए।"

राधे की बहू को तब तक कुछ पता नहीं था। जब राधेश्याम ने बताया कि क्या फैसला हुआ है तब वह भी घबड़ा गई। जमुना बीबी के बिना उनका लल्ला कैसे जी पाएगा?

दोनों जमुना के कमरे में आए, और जब मुश्किल से जमुना का मुंह उसकी बांहों की कुण्डली की जकड़ से खींच-खांच कर उन्होंने बाहर किया तब दोनों के दोनों स्तब्ध रह गए। कुछ ही देर में जमुना का आंसुओं से तर चेहरा एकदम सफेद पड़ गया था और आंखें बुरी तरह से सूज गई थीं। इतनी ही देर में इतना रो चुकी वह!

"मैं यहां नहीं रहूंगी भाभी !" आखिर जमुना फूट-फूट कर रो उठी और बड़ी भाभी की गोद में उसने अपना सिर छिपा लिया।

और राधेश्याम अपनी आंखें पोंछते हुए बाहर निकल गए।

रात को मियां-बीवी में बड़ी देर तक सलाह-मशविरा चलता रहा, और अन्त में राधेश्याम ने यह फैसला कर डाला कि चाहे जो हो, चाहे उन्हें अपने पिता की सहायता से वंचित ही होना पड़े, इस अभागिन जमुना को वे अपने पाषाण-हृदय पिता के पास नहीं छोड़ेंगे।

और जीवन में पहलेपहल पंडित भगवतीचरण ने अपने बड़े बेटे में अपनी छाया देखी जब दूसरे दिन नाश्ते के वक्त राधेश्याम ने उन्हें अपना फैसला सुनाया।

"जी, जमुना और शंकर हमारे ही साथ जाएंगे इलाहाबाद," राधेश्याम ने नम्र किन्तु दृढ़ स्वर में कहा। पंडित जी ही नहीं, सरला को भी एक अजीब नयापन मालूम हुआ आसपास की हवा में।

"ठीक है, ले जा अपने साथ," पंडित जी ने अपने स्वर की रुक्षता कायम रखते हुए विवश होकर कहा, और कुछ क्षण चुप रह कर पूछा — "कोयल के बारे में क्या ठीक किया ?"

"कोयल जब सरला के साथ इलाहाबाद से चली आई तो मैंने समझा कि उसकी मुझ पर कोई जिम्मेदारी नहीं है।" राधेश्याम ने बिना कहीं भी रुके हुए आवेशपूर्ण स्वर में जवाब दे डाला।

"ठीक है, कोयल का ब्याह मैं करूंगी," सरला ने भी उसी दम, वैसे ही आवेश में कह डाला, और दूसरे ही क्षण नीचे झुक कर पंडित जी के पांव पकड़ कर बोली—"आपसे कभी अपने लिये कुछ नहीं मांगा है मैंने, आज मांगती हूं। कोयल मुझे दे दीजिये, उसको मैं अपना मान कर अपनी छाती ठण्डी करूंगी और मैं ही उसके ब्याह की जिम्मेदारी लूँगी।"

पंडित जी आश्चर्य में पड़ गए।

और उसी दम उठ कर सरला तेजी के साथ वहां से चली गई,

और रसो .र से कोयल को खींचती हुई अपने कमरे में ले आई ।

"बोल, तू मेरी है कि नहीं ?" घबड़ाई हुई कोयल के दोनों कंधों पर अपने हाथ रख कर उसके सामने खड़ी सरला ने उसकी आंखों में अपनी बड़ी-बड़ी, और इस समय भयावनी-सी, आंखें डालते हुए पूछा ।

"मैं तो तुम्हारी ही हूँ छोटी भाभी,···मैंने क्या किया छोटी भाभी ?···मुझ पर नाराज क्यों हो छोटी भाभी···?" कोयल अनर्गल बोलती चली गई । वह कुछ समझ नहीं पा रही थी कि यह सब हो क्या रहा है कल से ।

"तो देख, तेरे ब्याह की जिम्मेदारी मैंने ली है," धीरे-धीरे सरला ने मीठे स्वर में उससे कहना शुरू किया, "मैं ही तेरा ब्याह करूंगी । खूब अच्छा ब्याह, ऐसा ब्याह कि तू सदा सुहागिन रहेगी, सदा मेरा गुन मानेगी कि छोटी भाभी मुझे कितना प्यार करती थी, कि ऐसा अच्छा घर मिला मुझे, ऐसा अच्छा पति मिला ।···पर एक बात मेरी माननी पड़ेगी तुझे, तेरा पहला बच्चा मेरा होगा—चाहे लड़का हो चाहे लड़की ।···बोल, देगी न ? अपनी छोटी भाभी के लिये इतना करेगी न ?"

और शरमाती, सकुचाती, लजाती कोयल ने जब तक अपना सिर हिला कर अपनी स्पष्ट सम्मति प्रकट नहीं कर दी—भले ही उसका महत्त्व उसने कुछ समझा हो या नहीं—तब तक सरला ने उसे नहीं छोड़ा ।

[३]

इलाहाबाद आकर राधेश्याम को मुसीबत ही मुसीबत का सामना करना पड़ा । पिता के व्यंग-बाणों से छुट्टी पाने के लिये जल्द से जल्द आत्मनिर्भर बनने की धुन में कुछ महीने पहले एक ट्यूशन उन्होंने कर ली थी; अब एक और ट्यूशन का बोझ बढ़ा लिया । बीमार स्त्री तो थी ही, अब बहन का भी बोझ सदा के लिये उनके सिर आ

गया है। और पिता को वह नाराज करके आए हैं; उनसे एक पैसे की भी आशा करना अब मूर्खता है। मकान उन्होंने बदल दिया, और पहले से भी छोटे एक मकान में ले आए सब लोगों को। सामने की गली बेहद गन्दी थी; पर और कोई चारा नहीं था।

चार-पांच महीने इसी तरह बिताने के बाद एक दिन राधेश्याम ने अपने पिता को बड़ी ही कड़ी चिट्ठी लिखी—अपने जीवन में इस तरह की पहली गुस्ताखी की। दो-दो ट्यूशन का और सारे दिन हाई-कोर्ट का बोझ ढोते-ढोते तन्दुरुस्ती इधर काफी गिर गई थी और कभी-कभी रात को जागना भी पड़ता था अपनी बीमार स्त्री के दमा का जोर बढ़ जाने पर। एक दिन वह खुद भी बीमार पड़ गए—मलेरिया ने उन्हें धर दबाया। और दो हफ्ते बाद जब बुखार से उन्हें किसी तरह छुट्टी मिली, तब थोड़ी-थोड़ी ताकत आने पर एक दिन वह अपने निष्ठुर पिता को चिट्ठी लिखने बैठ गए—सीतापुर से लौटने के बाद पहली चिट्ठी। इस बीच इलाहाबाद और सीतापुर के बीच पत्र-व्यवहार बिलकुल ही बन्द रहा था। काफी जोरदार शब्दों में अपने दिल का बुखार उतारा राधेश्याम ने इस चिट्ठी में और अपनी सारी मुसीबतों की एक तरह से पूरी जिम्मेदारी पंडित जी के सिर डाल दी। "जमुना की जिन्दगी किसने तबाह की, सिवा आपके?" उसने लिखा था, "और मुझे भी वकालत किस लिये पढ़ाया था जब कि सभी जानते हैं कि वकालत चलने के लिये बरसों का वक्त चाहिये? इससे तो अच्छा था कि मैं गरीब, अपढ़, पिता का बेटा होता और खेती-मजदूरी करके अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण करता। आज तो मैं इस लायक भी नहीं रह गया!"

एक हफ्ते में ही पंडित जी का जवाब आ गया, बहुत ही संक्षिप्त। "तू बहुत बड़ा कृतघ्न है। मेरे पिता ने मेरे लिये कुछ नहीं किया, फिर भी मुझे कोई शिकायत नहीं है। मैंने तुझे पढ़ा-लिखा कर गलती की, यह अब मुझे मानना ही पड़ रहा है। पर तुझे किसी से क्यों शिकायत

होनी चाहिये ? तेरे अन्दर अगर कुछ भी स्वाभिमान होता तो कुली-मजदूर का काम अगर नहीं कर सकता था तो खोमचा लगा कर तो बेच सकता था ! मेरा पढ़ाया-लिखाया सब भूल जा, और अपनी शक्ति का परिचय दे।" अवश्य चिट्ठी अंगरेजी में थी।

और पंडित जी की इस चिट्ठी के साथ नत्थी थी दक्षिण-अफ्रीका से जमुना के नाम पंडित जी के पते पर आई ज्वालादत्त की चिट्ठी, जिसमें उसने उसके उस पत्र के उत्तर में लिखा था कि जमुना और उसके बेटे से अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और वह फिर से विवाह कर लेने के लिये अथवा विधवा का जीवन व्यतीत करने के लिये स्वतन्त्र है। और चिट्ठी खत्म करके अपने दस्तखत के नीचे संक्षेप में यह सूचना भी दी थी कि उसने दक्षिण-अफ्रीका की एक भारतीय शिक्षित तरुणी से विवाह कर लिया है जो शिक्षिता होने के साथ-साथ असाधारण सुन्दरी भी है और जिसके पिता ने अपनी उस एकमात्र सन्तान के ही नाम अपनी प्रचुर सम्पत्ति की वसीयत कर दी है।

पंडित जी और ज्वालादत्त दोनों के ही पत्रों ने राधेश्याम के दिल पर बहुत बड़ी चोट की और इसके बाद आठ-दस दिन तक उनके घर की दशा बहुत ही चिन्तनीय रही। उनका गया हुआ बुखार फिर लौट आया, उनकी स्त्री पर दमा का बहुत प्रचण्ड दौरा हुआ. और जमुना के सिर पर से जो आंधी गुजरी उसका तो कोई हिसाब ही नहीं था। बीमार भाई और भाभी की सेवा के अनिवार्य उत्तरदायित्व ने ही वस्तुतः उसे चूर्ण-विचूर्ण होने से बचाया, क्योंकि शंकर और किरन के भी प्रति (शंकर का नाम राधेश्याम ने इस बीच उदयशंकर रख दिया था और अपने बेटे का, उसी वजन पर, किरणशंकर; पर पहला शंकर कहलाता था और दूसरा किरन) इस समय वह लापरवाह बन गई थी। बल्कि सच पूछा जाय तो ज्वालादत्त के प्रति उसका जो क्रोध था वह करीब-करीब कुल का कुल शंकर पर आ पड़ा उस पत्र को पाने के बाद, और दो दिन तक मां के बिलकुल गुमसुम रहने पर जब अन्त में शंकर ने

अपनी ओर उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिये तरह-तरह की तरकीबें आजमा डालीं तब अचानक वह बुरी तरह से उस पर बरस पड़ी और पीटते-पीटते दुर्गति कर डाली उसकी। पर बिलकुल गुमसुम हो जाने की स्थिति में भी बीमार भाई और भाभी की नितान्त आवश्यक सेवा से विमुख वह नहीं हो पाई, और शंकर को पीट लेने के बाद जब उसका अवसाद समाप्त हो गया और उसकी जगह ले ली एक प्रचण्ड हाहाकार ने, तब भी रोने और कलपने की उसे फुर्सत नहीं मिल पाई—भाई और भाभी की बीमारी बढ़ जाने के कारण।

पर काल-स्वरूप इन आठ-दस दिनों के बीतते-बीतते राधेश्याम के घर की हालत फिर चली, और आठ-दस दिन की लम्बी बरसात के बाद, जिस बीच कि एक बार भी सूर्य देवता के दर्शन न हुए हों, जिस तरह एक रोज अचानक सबेरे आकाश एकदम साफ दिखाई देता है और हंसती हुई धूप सारी पृथ्वी पर खिल उठती है, उसी तरह राधेश्याम के घर का आंगन भी खिल उठा। जमुना के बड़े भैया और भाभी दोनों ही क्रमशः मलेरिया और दमा के दौरे से मुक्ति पाकर स्वस्थ और हँसते-खेलते नजर आ रहे थे, और शंकर और किरन को अपने दाएं-बाएं सुलाए जमुना ने सारी रात उन्हें दुलराया और सहलाया था—खास तौर से शंकर को। एक बार तो बड़ी देर तक वह सोते हुए ही शंकर को अपनी छाती पर जोर से दबाए बैठी रही थी, और जब अपनी बांह पर उसका सिर रख कर उसे उसने फिर अपने साथ लिटा लिया था तब कई बार उसका सिर, उसका गाल, उसकी आंखें चूमी थीं उसने।

और सबेरा होने के पहले एकाध घण्टे के लिये जब उसे नींद आ भी गई थी तब भी वह किसी मीठे ही सपने में विभोर थी, और सबेरे ठीक वक्त पर ही जब जग पड़ी थी तब रात भर की अनिद्रा का ही नहीं पिछले आठ-दस दिन के अवसाद और हाहाकार की थकान का भी कोई चिह्न नहीं था उसके तन-मन पर। एक अजीब ताजगी का स्वाद लेकर वह उठी, और शंकर और किरन के गालों को बारी-बारी से चूम कर

बिस्तरे पर से उठ खड़ी हुई। कुछ नहीं गया है उसका, कुछ खोया नहीं है—उसका रोम-रोम अनुभव कर रहा था। सारी जिन्दगी हलकी दिखाई दे रही थी उसे अपने सामने—उसे कोई डर नहीं है, कोई घबड़ाहट नहीं।

और राधेश्याम ने भी बिस्तर पर पड़े-पड़े तय कर डाला था अपनी बीमारी के बीच, कि ज्यादा से ज्यादा छः महीने वह और इस तरह ट्यूशन करते हुए हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करके देखेंगे, और फिर भी अगर काम नहीं चल सकेगा तो किसी स्कूल में मास्टरी करेंगे—वकालत छोड़ देंगे। पिता का पत्र पाकर प्रथम आवेश में एक बार यह भी उनके मन में जरूर आया था कि वह खोमचा लगा कर अपने कन्धे पर रख कर उसे बेचते फिरें, और सीतापुर में ही जाकर अपने कलक्टर पिता के इलाके में! और यह आवेश दो-तीन दिन तक प्रबल ही पड़ता चला गया था उनके मन में। पर धीरे-धीरे यह नशा भी उतर गया था, और राधेश्याम भी इस बीमारी के बाद तन और मन दोनों में हलकापन महसूस कर रहे थे।

[४]

कुछ महीने और बीते, पर राधेश्याम का संघर्ष बढ़ता ही गया। इसी वक्त अचानक राधेश्याम के ससुर का देहान्त हुआ और अपनी वसीयत में वे अपनी एकमात्र बेटी के लिये भी कुछ नकद रुपया छोड़ गए। राधेश्याम को इलाहाबाद प्यारा था, साथ ही वहाँ वकालत किसी तरह जम जाय तो भावी समृद्धि का लालच भी था। और इसलिये जब उनकी स्त्री ने अपना वह कुल पितृधन उनके हवाले कर दिया तो उन्होंने चुपचाप ले लिया।

किन्तु यह धन भी समाप्त हो गया और राधेश्याम की आमदनी खर्च के बराबर नहीं हुई।

मदद की तब शेखर ने।

जमुना के साथ विवाह की बात टूट जाने पर शेखर के पिता के बहुत चाहने पर भी शेखर ने दूसरा विवाह नहीं किया था, और किसी न किसी बहाने पिता की बात वह टालता ही आया था। और इस बीच बड़ी प्रतिष्ठा के साथ संस्कृत में एम० ए० पास करके बनारस में ही संस्कृत कॉलेज में वह संस्कृत का अध्यापक नियुक्त हो गया था। उसके बाद एक खोजपूर्ण निबन्ध लिख कर उसने और भी प्रतिष्ठा प्राप्त की और अभी-अभी वह बनारस से इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के कॉलेज में अध्यापक होकर आया था। उसके पिता का भी इस बीच देहान्त हो चुका था।

जमुना के साथ विवाह-सम्बन्ध टूटने के बाद से शेखर उससे कभी नहीं मिला था—बीच-बीच में कभी-कभी एक शहर में रहते हुए भी। और जबसे जमुना का स्वामी उसे छोड़ कर लापता हो गया था और जमुना को नौका बिना पतवार की रह गई थी तब से तो उसकी झेंप और लज्जा अनुताप में परिणत हो गई थी और जमुना के लिये उसका हृदय सहानुभूति से भर गया था। पर उसे मुंह दिखाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई; राधे भैया से मिलने उनके घर जाकर भी वह बाहर ही बाहर होकर लौट आता था।

शेखर को उसके पिता ऋण चुकाने का जो भार दे गए थे, उसे वह भूला नहीं था। उसके पिता ने क्रोध के आवेश में उस ऋण को स्वीकार करते हुए जो दस्तावेज लिख कर पंडित भगवतीचरण के पास भेजा था उसे वैसे ही क्रोधावेश में पंडित जी ने भी फाड़ डाला था और उसके कुल टुकड़े उन्हींके पास वापस भेज दिये थे, और इसलिये कानूनन शेखर पंडित जी का ऋणग्रस्त नहीं था। पर पिता की आज्ञा उसे शिरोधार्य थी, और जमुना के दुःख ने उसे उदार बना दिया था। राधे भैया के संकट के समय उनकी मदद करके जमुना के प्रति हुए अन्याय का जिस अंश में भी हो निराकरण करने के लिये उसका हृदय उतावला हो उठा। न जाने क्यों उस विवाह-सम्बन्ध के विच्छेद का सबसे अधिक दोषी वह

अपने को मानता था। शायद जमुना को वह अभी तक भूल नहीं सका था।

पर राधेश्याम शेखर की मदद कैसे स्वीकार कर लेते! उन्होंने इनकार कर दिया – "नहीं शेखर, यह नहीं हो सकता। अब मैं कहीं किसी स्कूल में मास्टरी करूँगा, वकालत मुझसे नहीं होगी।"

"दो-चार साल और देखो भैया," शेखर ने आजिजी के साथ कहा। "वकालत तुम्हारी जरूर चलेगी, थोड़ा और सब्र करो। और अगर मुझे पराया समझते हो तो अपने पिता का ऋणी समझ कर ही लो।"

"मेरे पिता के तुम ऋणी हो सकते हो, पर मेरे तो नहीं," राधेश्याम ने तुरंत उसकी बात काटी। "पंडित जी और तुम्हारे बीच मैं क्यों पड़ूं?"

"इसलिये कि पंडित जी कानून से तो मुझसे कुछ पा नहीं सकते। तुम्हें जो मदद वह बाप होकर नहीं दे रहे हैं वह मैं क्यों न उन्हींके रुपये से दूँ? मैं उन्हें क्यों रुपया लौटाऊँ जबकि वह उससे कोई फायदा नहीं उठा सकते, और तुम उठा सकते हो?" शेखर खूब उत्तेजित हो उठा था।

"अच्छा?" राधेश्याम देर से अपनी आंखें शेखर के चेहरे पर गाड़े हुए थे; वह भी उत्तेजित हो उठे थे। बोले, "अच्छा! तो अब तू मुझे कर्जा लौटाएगा, मेरे पिता का कर्जा? और मैं तुझसे ले लूंगा? मेरे पिता ने न दिया होता, मैंने दिया होता—तब क्या मैं तुझसे वापस ले लेता? पंडित जी ने, दादी ने, जो कुछ दिया था, वापस लेने के लिये दिया था? मैं यह नहीं कह सकता कि पंडित जी को आज तू लौटाए तो वह नहीं लेंगे; पर मैं भी ले लूंगा, क्या ऐसा नीच तूने मुझे समझा है?"

शेखर की आंखों में आंसू भर आए। दोनों आमने-सामने खड़े थे। शेखर ने अपनी दोनों बांहों में राधेश्याम को जकड़ लिया और उनके कन्धे पर अपना सिर रख दिया। और उसी तरह, मुंह छिपाए हुए, धीरे-धीरे राधेश्याम के कानों के बिलकुल पास बोला—"भला मैं तुम्हें क्या दूंगा भैया! तुम यों नहीं ले रहे थे इसलिये ऐसे कहा मैंने। जब तुम मुझे

इतना अपना मानते हो तो फिर ऐसे वक्त मुझसे नहीं लोगे तो किससे लोगे ? मैं तुम्हें वकालत नहीं छोड़ने दूंगा।.....मेरी तनखा में हम दोनों का काम चल जायगा।...क्यों न हम दोनों एक साथ रहें भैया ?"

राधेश्याम भी विचलित हो गए, पर उस वक्त उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। "अच्छा छोड़, आज नहीं, फिर कभी कहूँगा।" कह कर उन्होंने किसी तरह शेखर से पीछा छुड़ाया। पर तीन दिन के अन्दर फैसला कर लेने का शेखर वादा ले गया, और चलते-चलते कह गया—"मैं मानूंगा नहीं भैया, तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी। हम दोनों साथ-साथ रहेंगे।"

पर जमुना नहीं मानी।

"यह कैसे हो सकता है ?" बड़े भैया से शेखर का प्रस्ताव सुनते ही कठोर स्वर में उसने कहा। "इन लोगों का एक पैसा भी हम लोग नहीं छू सकते।"

राधेश्याम ने कई पहलुओं से यह दिखलाने की कोशिश की कि इसमें इतना अनौचित्य नहीं है जितना ऊपर से देखने पर मालूम पड़ता है; दोनों परिवारों में भाई-भाई का सम्बन्ध कई पीढ़ियों से चला आ रहा है, पंडित जी ने इन लोगों पर कम खर्च नहीं किया, शेखर अपने ऋण से उऋण होना चाहता है, उसके पिता का उसे आदेश था कि वह ऋणी न रह जाए, आदि, पर जमुना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राधेश्याम सोच-विचार के बाद स्वयं शेखर के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के लिये राजी-से हो गए थे, कम से कम उन्हें कोई अनौचित्य उसमें, विचार करने पर, नहीं दिखाई दिया था। और अपनी स्त्री को भी उन्होंने किसी तरह राजी कर लिया था। पर उन्होंने यह सोचा भी नहीं था कि जमुना बिना कारण इस तरह जिद पकड़ लेगी।

"तो फिर इलाहाबाद और यह वकालत छोड़ कर कोई छोटी-मोटी नौकरी पर गुजर करनी पड़ेगी," राधेश्याम ने भी गरम पड़ कर चेतावनी-सी दी, "यह मैं कहे देता हूँ।"

"तो तुम जो चाहे करो," जमुना ने और भी गरम होकर कहा, "शंकर को लेकर मैं जहां जगह मिलेगी चली जाऊंगी। मैं उन लोगों का पैसा नहीं खाऊंगी।" दलील जमुना के पास कोई नहीं थी, पर एक क्रोध था, शायद शेखर पर, शायद अपने दुर्भाग्य पर, जिसके लिये अपने अन्तस्तल के किसी कोने में शायद वह शेखर को ही जिम्मेदार समझती थी, दोषी मानती थी।

और राधेश्याम को विवश हो जाना पड़ा।

पर शेखर फिर भी नहीं माना। जब बातों ही बातों में किसी तरह वह समझ गया कि राधे भैया को नहीं, जमुना को आपत्ति है तब पहले तो वह थोड़ी देर के लिये स्तब्ध-सा जैसा-का-तैसा खड़ा रहा, पर कुछ ही क्षण बाद हँस पड़ा। "जमना को मैं राजी कर लूंगा भैया, चलो।" और उस दिन पहलेपहल वह राधे के घर के भीतर घुस चला।

पर उसे दूर नहीं जाना पड़ा, जमुना शायद दरवाजे की ओट खड़ी सब सुन रही थी। जल्दी से हट कर भी वह दूर नहीं जा पाई, और शेखर और राधे के सामने तुरंत ही आ पड़ी।

"क्यों जमना?" उसने सारे लज्जा-संकोच, सारी झिझक को बल-पूर्वक दूर करके कहा, "बाहर ही बाहर आकर कब तक चला जाया करूं?"

"किसने मना किया अन्दर आने को?" जमुना ने शेखर की आँखों में आँखें गड़ा कर एक रूखी, आभाहीन हँसी हँसते हुए आवेश-शून्य स्वर में कहा।

"तुमने!" शेखर ने भी हँसते हुए, पर दृढ़तापूर्ण स्वर में, जवाब दिया।

"कब?" जमुना घबड़ा-सी गई।

"जाने दो यह सब," शेखर ने सहसा बिलकुल गंभीर होकर कहा, "झगड़ा करने नहीं आया हूँ। मैं तुमसे और भाभी से यह पूछने आया

हूँ ...” और बीच ही में उसने पुकारा—“भाभी, जरा तुम भी इधर ही चली आओ, या कहो तो हमीं सब उधर आ जायं। मैं एक बात का फैसला करा लेना चाहता हूँ आज !” और जब तक वह भी नहीं आ गई, बहुत ही गंभीर भाव से वह पत्थर की मूर्त्ति की तरह खड़ा रहा। जमुना एकदम घबड़ा गई और वह भी उतनी ही गंभीर मुद्रा में खड़ी रही। सिर्फ राधेश्याम की हँसी रोके नहीं रुक रही थी। उसने शेखर को इस रूप में पहले कभी नहीं देखा था और उसे यह विश्वास नहीं हो पा रहा था कि यह नाटक नहीं हो रहा है।

“मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ, तुमसे और जमना से भाभी,” और उसकी दृष्टि अब जमुना की भाभी के चेहरे पर स्थापित हो गई। वह भी राधे की हँसी में योग दे रही थी, पर दिल से नहीं, ऊपर ही ऊपर—वहभी कुछ समझ नहीं पा रही थी कि यह इतना शोरगुल, इतनी गंभीरता क्यों है शेखर और जमुना के चेहरों पर।

“मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ, तुमसे और जमना से भाभी,” शेखर ने जमुना की भाभी के चेहरे पर अपनी गंभीर दृष्टि स्थापित करके, पर वस्तुतः जमुना को लक्ष्य करके कहा, “कि पिता-पिता में जो झगड़ा हो गया उसके लिये क्या हम दोषी हैं ? और अगर हमीं में से कोई दोषी है तो क्या यह ऐसा दोष है कि क्षमा नहीं किया जा सकता ?” शेखर का गला भर्रा उठा, और स्पष्ट ही उसकी आँखें भी भर चली थीं, पर उसने इसकी परवा नहीं की। वह उसी आवेश में बोलता ही गया—“वह झगड़ा होने से पहले हम जो थे, क्या वह अब हो ही नहीं सकते ? राधे भैया मेरे बड़े भाई नहीं हैं ? मै उनका छोटा···भैया··· नहीं हूँ ?” उसका स्वर एक दम टूट गया, और अपना मुंह अपने हाथों में छिपा कर वह कुछ दूर पड़ी खाट पर जा पड़ा।

सब लोग स्तब्ध रह गए। सबसे अधिक जमुना। और कुछ देर बाद जमुना वहां और खड़ी न रह सकी, सहसा अन्दर भाग गई—लड़खड़ाती-सी।

और दूसरे ही दिन से शेखर उसी मकान में आकर रहने लगा।

और उसके बाद जो रक्षाबन्धन का त्योहार आया उसमें राधे के हाथ में राखी बांधते वक्त जमुना को शेखर के भी हाथ में बांधनी पड़ी, और भ्रातृ-द्वितीया के दिन उसका भी टीका करना पड़ा। शेखर का आग्रह था कि वर्द्धन की खोई जगह उसे दी जाय। और जमुना इस आग्रह को टाल न सकी।

और कभी-कभी जमुना अनायास सोचने लग जाती कि अगर पिता-पिता में वह झगड़ा न हुआ होता तो? अपने को रोकने की कोशिश करने पर भी कभी-कभी इस दिशा में वह कुछ दूर तक सोच जाती, और एक स्वप्न-से में विभोर हो उठती।

पर इस स्वप्न को तोड़ता शंकर। क्या शेखर से ब्याह हो जाने पर भी उसे यह शंकर मिला होता? न जाने कौन मिला होता, वह कैसा होता, कैसी शक्ल होती! नहीं, शंकर की जगह कोई दूसरा उसे नहीं चाहिये था। कभी नहीं!

[५]

जमुना के दिन बहुत बुरे नहीं बीत रहे थे अपने बड़े भैया के घर। अपने बड़े भैया और बड़ी भाभी के पास वह सचमुच यह भूल-सा गई थी कि उसका अपना घर नहीं बसा। बल्कि दरअसल दमा की मरीज उसकी बड़ी भाभी ने अपनी पूरी गृहस्थी की चाभी उसी के हाथ सौंप रखी थी, और सच पूछा जाय तो वही जमुना की गृहस्थी में मेहमान-सी बन कर रहती थी।

जमुना खुश ही थी अपने इस जीवन से, कुल मिला कर। उसका शंकर था, और किरन, और इन दो बच्चों को लेकर उसका सारा दिन कब शुरू होता था और कब खत्म होता था यह उसे पता ही नहीं चलता था। और जबसे ये शेखर भैया भी आ गए थे इसी घर में तब से तो

इस बड़ी उम्र के बच्चे की भी सारी की सारी चिन्ता उसी को करनी पड़ती थी। उम्र में जरूर शेखर उससे बड़ा था, पर जमुना को वह अपना छोटा भाई जैसा ही लगता था। अपने बड़े भैया और बड़ी भाभी से वह स्वयं स्नेह पाती थी, पर शेखर भैया उसी के स्नेह के पात्र थे। राधे भैया का हुक्म जमुना के सिर-आंखों पर था, उनका शासन उसे प्रिय था, पर यह शेखर भैया मिले थे उसे उसके शासन को मान लेने के लिये। और जमुना उन पर अपने इस अधिकार का प्रयोग करके भी खुश ही थी।

धीरे-धीरे साल डेढ़ साल बीत गया शेखर को इस घर में आए, और इस बीच एक से अधिक बार ही जमुना ने शेखर भैया के ब्याह की बात उठाई उनकी उपस्थिति में ही, अपने बड़े भैया और बड़ी भाभी के सामने। पर शेखर हर बार टाल गया।

"मगर ऐसे कब तक चलेगा छोटे भैया?" एक दिन जमुना ने शेखर को खाना खिलाते वक्त उसके सामने बैठे-बैठे पंखा झलते हुए पूछा। अब तक 'शेखर भैया' जमुना के 'छोटे भैया' कहलाने का अधिकार प्राप्त कर चुके थे।

"कैसे बीबी?" शेखर ने आंखें उठा कर कुछ ताज्जुब के साथ पूछा। अपने से छोटी जमुना को भी शेखर जमुना न कह कर प्यार और आदर-सूचक बीबी ही ज्यादा कहता था।

"यही,... ब्याह बिना किये कब तक चलाओगे?" जमुना ने काफी गंभीर भाव से कहा।

शेखर ने आंखें नीची कर लीं—शरमा कर नहीं, नाराजी का भाव दिखाते हुए।

"मैं बहुत बड़ा बोझ बन चला हूँ तुम लोगों के लिये बीबी?" कुछ देर तक चुप रह कर सहसा उसने भी गंभीर स्वर में पूछा।

"यह कैसी बात करते हो छोटे भैया?" जमुना ने रुष्ट होकर कहा। "तुम बोझ बन रहे हो हमारे ऊपर?"

"तो फिर किसलिये ब्याह की बात उठाती हो तुम बार-बार ?" शेखर ने रूठे-से स्वर में कहा।

"क्यों, सारी जिन्दगी क्या बिना ब्याहे ही बिता दोगे ?···क्यों ?··· किसलिये !" जमुना के स्वर में एक छिपी सी वेदना थी।

शेखर ने तुरन्त जवाब नहीं दिया।

'मगर तुम भी तो···" कुछ देर बाद शेखर ने कहना शुरू किया, पर आगे क्या कहे—वह ठीक नहीं कर पाया।

"मेरे साथ किस बात की बराबरी है तुम्हारी, छोटे भैया? मुझे किस बात की कमी है, मेरे पास क्या नहीं है ?" जमुना ने चाहा कि उसका स्वर पूरी तरह स्वाभाविक रहे, उसमें कहीं कोई गीलापन न आ जाय, कहीं कोई सूनापन न दिखाई देने पाए। पर शेखर का दिल और भी मसोस उठा।

"मैं तुम्हारी क्या बराबरी करूँगा बीबी ?···मेरे कहने का मतलब यही था कि जैसे तुमको सब-कुछ मिला हुआ है वैसे ही मुझे भी क्या सब-कुछ नहीं मिला हुआ है यहाँ ?" उसने बुद्धिमानी के साथ बात घुमा दी।

उस दिन बात और नहीं बढ़ी।

कुछ ही दिन बाद पंडित भगवतीचरण, समय से कुछ पहले ही रिटायर होकर, इलाहाबाद आ गए जहां अपना मकान बनवाने के लिये वे पहले ही जमीन खरीद चुके थे। आने के कुछ महीने पहले राधेश्याम के पास पंडित जी की एक चिट्ठी आई थी जिसके साथ मकान का एक नकशा और मकान का काम शुरू करने के लिये बहुत सी हिदायतें थीं। दो-ढाई साल बाद पंडित जी की यह पहली चिट्ठी राधेश्याम को मिली थी। पिता-पुत्र के बीच इस बीच पत्र-व्यवहार तक बिलकुल ही बन्द रहा था।

राधेश्याम ने इस बीच बहुत जबर्दस्त आर्थिक संघर्ष झेला था और इसके लिये अपने पिता पर मन ही मन कम क्रोध नहीं था उन्हें, पर जब पिता ने अपने काम के वक्त अपने बेटे से मदद मांगने में सकोच नहीं किया तब राधेश्याम के लिये भी अपने पिता की इच्छा को पूरा न

करना असंभव हो गया। और तब से पिता-पुत्र के बीच फिर पत्र-व्यवहार शुरू हो गया था।

अन्त में एक दिन पंडित जी रिटायर होकर सपरिवार—जो भी उनका परिवार अब रह गया था—इलाहाबाद आ गए, और राधेश्याम स्टेशन पर उन्हें लेने गए। पंडित जी के मकान का काम जरूर शुरू हो गया था पर अभी उसमें रहा नहीं जा सकता था। राधेश्याम ने उनके लिये किराए का एक मकान ठीक कर रखा था।

इस नए किराए के मकान में पंडित जी को आए चार दिन हो गए, पर राधेश्याम को छोड़ कोई भी वहां नहीं गया, न जमुना ही और न उनकी बहू ही। और शेखर के सामने तो यह सवाल आया ही नहीं।

राधेश्याम इस बीच रोज ही एक बार शाम को हो आते थे पंडित जी के यहाँ, और रात को जमुना और उसकी भाभी देर तक उनसे उस घर की छोटी से छोटी बात खोद-खोद कर जानने की कोशिश करती थीं। और इसी तरह उन्होंने जाना था कि कोयल के ब्याह की किसी को फिक्र ही नहीं है, और वह अपनी छोटी भाभी के ही इशारे पर उठती-बैठती है।

"तो तुम लोग एक बार भी नहीं जाओगी वहां?" चौथे दिन राधेश्याम वहां से लौट कर दोनों से अचानक पूछ बैठे।

"हमें वहां कौन पूछता है?" दोनों की ओर से जमुना ने कहा।

"क्यों, सरला तो रोज पूछती है तेरी बात, और शंकर की।... शंकर को देखने के लिये तो बहुत ही छटपटा रही है..." राधेश्याम ने जवाब दिया।

"छोटी भाभी ही तो पूछती है अपने मतलब के लिये!...पंडित जी ने तो एक बार भी नहीं बुलाया?" जमुना ने इस बार कुछ कड़े स्वर में कहा।

"बाप के घर भी कोई बुलाने पर जाता है?" राधेश्याम ने भी इस बार कुछ गरम होकर कहा।

"ब्याही हुई लड़की बुलाने पर ही बाप के घर जाती है बड़े भेया," जमुना ने तपाक से कहा।

राधेश्याम के पास कोई जवाब नहीं था। एक बार मन में आया कि कह दें—तू तो अपनी ससुराल में नहीं है जमनी, पर बेकार बात बढ़ाने से कोई लाभ नहीं था। वे चुप हो गए।

पर दूसरे दिन तीसरे पहर, जब राधेश्याम हाई-कोर्ट में थे, रामदीन चाचा के साथ, जो अपनी जमुना बेटी और अपने नाती-पोते को देखने पहले दिन ही राधेश्याम के साथ छूटे चले आए थे और उनका यह मकान देख गए थे, घर के अन्दर अचानक घुस पड़ीं, और कोई नहीं—जमुना की छोटी भाभी और कोयल!

जमुना या राधे की बहू, किसी ने भी इसकी आशा नहीं की थी।

"तुमने तो हमें भुला ही दिया बीबी," नम्रता और मिठास की मूर्त्ति बनी सरला ने दोनों से ही एक साथ कहा, "पर मेरा तो यह एक-एक दिन कटना मुशकिल हो गया।···कोयल से कहा मैंने, चल बिटिया, वो हमें भूल गईं तो क्या, हम तो उन्हें नहीं भूल सकतीं।"

और पास खड़े, लजाते हुए, साढ़े पांच छः साल के शंकर को सरला ने उसकी बाँह पकड़ कर अपनी ओर खींचने की कोशिश की। पर शंकर सरला के बंधन को छुड़ा कर अपनी मां की टांगों में लिपट गया। तीन-चार साल का किरन इस बीच एकटक सरला को देख रहा था, पर सरला की दृष्टि उस ओर नहीं थी। इस गोरे-गोरे, गोल-मटोल से, विहँसते हुए किरन की जगह वह 'साँवला-सलौना,' 'कृष्ण-कन्हैया' ही कहीं ज्यादा खींच रहा था उसे। उसी की ओर खिंची हुई तो सरला आई थी आज यहां तक, बिना बुलाए ही और आत्म-सम्मान की भावना को पी कर!

और जब कुछ देर बैठ कर अन्त में सरला जाने के लिये उठने लगी तब तक अपनी मीठी-मीठी बातों और अपने नम्र व्यवहार से वह जमुना के क्रोध को बहुत दूर तक धो चुकी थी, और बीच-बीच में कभी-कभी शंकर दो-चार घण्टे के लिये किसीके साथ उनके घर आ जाया करे,

इसके लिये वह जमुना को बहुत-कुछ राजी कर ले सकी थी।

उन दोनों को भी—जमुना को और अपनी जिठानी को—'वहां' कभी-कभी आने के लिये सरला ने अपनी ओर से आग्रहपूर्वक निमंत्रित करने में कोई कसर नहीं उठा रखी, पर उस निमंत्रण को टालने के लिये ऐन मौके पर जमुना को एक बहुत अच्छा बहाना मिल गया, कम से कम उस वक्त के लिये। उसकी बड़ी भाभी के फिर बच्चा होने वाला था और किसी दिन भी हो जा सकता था, और अपनी आंखों से उनकी ओर इशारा करते हुए जमुना ने सिर्फ इतना कहा—'पूरे दिन हैं बड़ी भाभी के...वह तो जा ही नहीं सकतीं, मैं भी कैसे छोड़ सकती हूं इन्हें कुछ देर के लिये भी।"

और सरला ने यह सवाल फिर नहीं उठाया। "तो मुझसे तो नाराज नहीं हो न छोटी बीबी?" उसने सिर्फ इतना कहा, और जमुना को अपनी मुसकराहट से यह सिद्ध करना पड़ा कि भला उनसे वह कैसे नाराज रह सकती है!

सरला उठते-उठते भी देर तक उठी नहीं उस दिन, और उठ-उठ कर भी कोई न कोई बात छेड़ कर फिर बैठ गई। और ऐसा करते-करते ही कॉलेज से लौट कर शेखर आ गया, और उन लोगों को देख कर झेंपता, लजाता हुआ अपने कमरे की ओर बढ़ चला।

"अपनी इस भाभी को एकदम ही भूल गए लाला?" सरला ने आंखों में मुसकराहट भर कर, कतरा कर जाते हुए शेखर को सुना कर कहा, और शेखर को ठिठक कर रुक जाना पड़ा और फिर लौट कर सरला भाभी का, जिन्हें वह करीब-करीब भूल ही चुका था, और उनके पास बैठी बड़ी-बड़ी आंखों वाली उस सांवली तरुणी का सामना करने के लिये विवश हो जाना पड़ा। वह समझ गया था कि यही कोयल है।

"जैरामजीकी भाभी," शेखर ने लज्जा-कुण्ठित स्वर में, मुसकराने की कोशिश करते हुए कहा, और "जैरामजीकी लाला," कहती हुई सरला ने कोयल की ओर इशारा करके शेखर को बतलाया कि "यह

कोयल है, ·····नाम तो तुमने सुना ही होगा ।" और फिर कोयल से बोली—"जैरामजीकी नहीं की शेखर मामा को ?···लजाती क्यों है, यह सबसे छोटे और सबसे नए मामा हैं तेरे ।"

'जैरामजीकी," बड़ा जोर लगा कर अपनी बड़ी-बड़ी आंखें शेखर मामा की ओर उठा कर किसी तरह कोयल ने बहुत ही धीमी आवाज में कहा. और दूसरे ही क्षण उसकी आंखें शर्म से नीचे तक झुक गईं । और करीब-करीब वही अवस्था उसके शेखर मामा की थी ।

जमुना ने देखा, और सरला ने भी । और दोनों की ही आंखें चार हुईं और दोनों ही मुसकरा उठीं ।

"लो, तुम्हारे लिये लड़की भी ढूंढ़ ली मैंने," शाम के खाने के वक्त जमुना ने अपने शेखर भैया से कहा । "अब चटपट ब्याह कर डालो ।" और हँसती हुई आँखों से उसने उसकी ओर ताका ।

"ज्यादा तंग करोगी मुझे तो मूंड़ मुंड़ा कर गेरुआ पहन लूंगा," शेखर ने बनावटी क्रोध के साथ कहा, पर दिल उसका भी एक बार हिलोरें ले उठा ।

और उस रात देर तक जमुना को नींद नहीं आई ।

कोयल उसकी अपनी भानजी थी और उसके बड़े भैया ने ही उसकी जिम्मेदारी ली थी दादी के मरते वक्त उनकी खाट के पास बैठ कर, और कोयल के बाप ने भी मरते वक्त उन्हीं पर तो भरोसा किया था । और इसलिये अठारह-उन्नीस साल की बिना-ब्याही कोयल के लिये रह-रह कर उसे गहरी चिन्ता हो जाती थी और बड़े भैया को बार-बार याद दिलाती आई थी वह उनकी उस जिम्मेदारी की । पर वह बराबर अपनी जिम्मेदारी अपने पिता पर डाल देते थे—"मैं क्या कर सकता हूँ अब, पंडित जी जो चाहेंगे करेंगे ।"

"तो जैसा मेरा हुआ वैसा ही उसका भी होगा—या इससे भी बुरा—यह कहे देती हूँ मैं," जमुना खिन्न होकर जवाब देती । पर राधे-श्याम भी बेचारे क्या कर सकते थे !

पर आज तो जमुना तीन-चार साल बाद कोयल को इतनी बड़ी देख कर एकदम ही व्याकुल हो उठी थी। भला इस उम्र में भी किसी भले घर की लड़की बिना-ब्याही रही है कहीं? और वह उसकी अपनी भानजी है, उसकी अपनी बहन की बेटी—इसका बोझ बुरी तरह से उसके दिल पर लद गया। मानो उसी पर सारी दुनिया की निगाहें हैं।

फिर, उसकी यह अपनी भानजी आज पूरी तरह से उसकी छोटी भाभी के इशारे पर उठती-बैठती है, बिलकुल उनके कहे पर चलती है—यह उसने आज कुछ ही वक्त में जिस तरह देखा और महसूस किया था उससे उसका दिल बुरी तरह से कड़वा हो उठा था। अपनी छोटी भाभी के प्रति जहां पहले जमुना के मन में ईर्ष्या ही ईर्ष्या थी वहां इधर कुछ साल से घृणा ही घृणा थी, और कोयल पर उसी छोटी भाभी का यह अधिकार उसे बुरी तरह से खल गया आज। अगर शेखर भैया से ब्याह हो जाय इस कोयल का, तो सरला भाभी के चंगुल से सदा के लिये छुटकारा पा जायगी वह बेचारी।

और यह शेखर भैया भी तो और भी अपने हो जायंगे तब! ब्याह तो उनका होना ही है; अगर बाहर की किसी लड़की से हुआ तो कौन जानता है, शेखर भैया को हमीं लोगों से छीन ले वह!

और रात को सपने में जमुना ने देखा, दोनों का ब्याह हो रहा है, बाजे बज रहे हैं, फूलों की वर्षा हो रही है।

और उसी रात सरला भी एक नींद सो लेने के बाद जग पड़ने पर फिर सो नहीं पाई। वह लजीला-सा शेखर उसकी आंखों के आगे नाच-नाच उठा, और फिर कोयल और शेखर की 'जैरामजीकी' वाली वह शर्मीली तस्वीर!

और उसके भी मन में आया कि इस शेखर से अगर कोयल का ब्याह हो जाय तो .....

और वह सोचने लगी कि किस तरह शेखर उसके यहां आना-जाना शुरू करे।

ग्यारहवां परिच्छेद

[१]

बूढ़ा रामदीन इधर कई साल बीमार नहीं पड़ा था, और अब जब बीमार पड़ा है तब पहलेपहल वह देख पा रहा है कि उसके इस घर में कितना बड़ा परिवर्तन हो गया है, किस तरह वह बिलकुल बदल ही गया है। आज पहलेपहल उसे इस बात का पता लगा है कि यह घर अब उसका नहीं रहा, वह यहां बिलकुल पराया-सा है। और आधी रात के करीब बुखार उतरने के बाद एक बेहोशी की नींद में कुछ घण्टे सोकर जबसे वह जगा है तबसे कितने ही पुराने चित्र उसकी आंखों के सामने से घूम गए हैं, और कितनी ही बार हिचकियाँ ले-लेकर वह बच्चों की तरह जोर-जोर से रोया है, और अब भी बीच-बीच में आंसू बहाता ही चला जा रहा है; उसका सारा तकिया गीला हो चुका है अब तक रोते-रोते।

और कितनी बार जोर-जोर से हिचकियां लेकर रोते वक्त उसे यह डर हुआ है कि नजदीक ही के कमरे में सोए हुए पंडित जी उसकी आवाज से जग कर आ रहे हैं, या कम-से-कम सरला को ही भेज रहे हैं उसकी खबर लेने के लिये, और इस डर के पीछे एक मीठी सी आशा भी रही है कि अब भी कोई है यहां जो उसके लिये चिंतित है, बीमारी के वक्त उसकी खाट पर उसके सिरहाने बैठने के लिये आ रहा है। पर यह भय और यह आशा दोनों ही धीरे-धीरे निरर्थक सिद्ध होती हैं और एक बार फिर बूढ़ा रामदीन रो उठता है, फूट-फूट कर, अपने तकिये में मुंह गाड़ कर।

कहने को जरूर रामदीन इस घर में नौकर है, पर नौकर की तरह वह रहा कभी नहीं है यहां। उसने इसे अपना घर ही समझा है हमेशा,

और आज से पहले कभी उसे इस संबंध में कोई शंका भी नहीं हुई है। पहलेपहल जब पंडित जी का पल्ला उसने पकड़ा था तब मालिक की तरह नहीं, बड़े भाई की तरह उसने उनकी पूजा की थी। एक ही गांव में, एक ही मुहल्ले में दोनों के घर थे और बचपन से ही दोनों का संबंध अटूट था – पंडित जी अपनी बाल-मंडली के सरदार थे, और रामदीन उनके दल का सबसे बड़ा पण्डा। पंडित जी अगर राम थे तो वह उनका हनूमान। और जब रामदीन की मां इस संसार में उसे अकेला छोड़ कर और पंडित जी की मां के हाथ में उसका हाथ देकर चल बसी तबस वह इसी परिवार का एक अंग बन गया – पंडित जी की मां ने सचमुच ही सहज मातृ-स्नेह के साथ उसे अपना लिया, और अधिक वात्सल्य के क्षणों में राम-हनूमान की यह जोड़ी उनके लिये राम-लछमन की जोड़ी बन गई।

किन्तु पंडित जी ने खेल-कूद छोड़ पढ़ने-लिखने में मन लगाया, बड़े-बड़े इम्तहान पास किये, अच्छी-अच्छी नौकरी कीं, अफसर बने, रुपया कमाया। रामदीन ने यह-सब कुछ भी नहीं किया। वह मूर्ख का मूर्ख ही बना रहा; और पंडित जी की अनुपस्थिति में उनकी मां का संरक्षक बन कर गांव में ही रहा और जब शादी की उमर आई तब एक दिन उसका ब्याह भी हो गया, और छोटी सी बहू घर आ गई।

लेकिन जब पंडित जी की मां पहलेपहल अपने बेटे की नौकरी पर उनके पास रहने आईं, तब उनके साथ-साथ आकर रामदीन पंडित जी के पास ही रह गया, फिर कभी मां के साथ गांव लौट कर नहीं गया। और इसी बीच अपने मैके में उसकी बहू भी चल बसी।

और तब से पंडित जी के बच्चों को ही रामदीन ने अपना बच्चा समझा, उनके घर को अपना घर। और पंडित जी की सेवा में अपना तन-मन लगा कर निश्चिंत भाव से वह अपनी जीवन-यात्रा में रम गया। पंडित जी के प्रति बचपन से ही उसकी जो श्रद्धा थी, वह समय के साथ-साथ उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई थी। अवस्था और बल में वे रामदीन से

अधिक थे ही, विद्या बुद्धि, अधिकार और वैभव में उनके साथ उसकी कोई तुलना ही नहीं हो सकती थी। उनके क्रोध के भय से वह थर-थर कांपता था, पर इससे उसकी श्रद्धा में कमी न आकर वृद्धि ही होती थी। पंडित जी जो भी करते थे उसमें कोई दोष उसे नहीं दिखाई देता था, और पंडित जी की मां से यह सब लेकर वह कई बार झगड़ चुका था। पंडित जी की जिन-जिन 'मलेच्छताओं' के लिये उनकी मां उन्हें निरन्तर कोसती रहती थीं, रामदीन की दृष्टि में वे पंडित जी के बड़प्पन, उनके अधिकार की द्योतक थीं; अपनी भावुक श्रद्धा की आंखों से वह पंडित जी को सब नियमों और बंधनों से ऊपर मानता था—शास्त्रों का भी शास्त्र, पंडितों का भी पंडित। गोसाईं तुलसीदास की रामायण की दुहाई देकर वह पंडित जी के सारे दोषों का एक ही जवाब देता—

समरथ कहं नहिं दोस गुसाईं,
रबि पावक सुरसरि की नाईं।

पर आज यह सब ढलता चला जा रहा है। बुखार उतरने के बाद की नींद टूटने पर आज अतीत के जो चित्र उसकी आंखों के सामने घूम गए हैं, वह एक दूसरा ही नकशा छोड़ गए हैं उसके तड़पते हुए, बेचैन दिल पर। तकिये को भिगो देने वाले इन आंसुओं और छाती को भीतर तक झकझोर देने वाली हिचकियों ने अपने आराध्य इन पंडित जी और अब तक अपने माने गए उनके इस घर को बहा कर फेंक दिया है उसके अन्तस्तल से एकदम बाहर।

आज पहलेपहल वह बीमार नहीं पड़ा है इस घर में! कितनी ही बार पड़ा है, और हर बार की याद मीठी है, उसके दिल में आज एक-साथ ही गुदगुदी और हाहाकार मचा देने वाली।

यह ठीक है कि पंडित जी का जो रुख उसकी बीमारी में आज है वही हमेशा रहा है—पर उनसे उसने स्नेह की कभी आशा भी नहीं की थी; स्नेह-दौर्बल्य से वह अपने पंडित जी को हमेशा ही ऊपर मानता आया है। फर्क इतना ही हुआ है कि औरों से मिलते रहने वाले स्नेह

के बीच पंडित जी की निर्मम उदासीनता जहां पहले अत्यन्त सहज और स्वाभाविक मालूम होती थी वहां आज वह एकदम कठोर और अमानुषिक दिखाई दे रही है। आज कोई भी तो नहीं है जो अपनी स्नेह-कातरता से उसके दुर्बल हृदय को घेर रखे।

अत्यन्त ज्वलन्त रूप में उसके स्मृति-पट पर जग उठा है आज उसकी कुछ साल पहले वाली बीमारी का एक चित्र, जब अम्मां थीं, जमना थी, राधे की बहू थी, और नहीं थी यह चुड़ैल सरला। पंडित जी उस बार भी कभी उसे देखने नहीं आए थे उसके कमरे में, पर अम्मां और जमना में से एक न एक बराबर ही दिन-रात उसके पास रहे आए थे सारी बीमारी भर, और दोनों ने अपने मृदुल स्नेह से उसे यह खयाल तक नहीं आने दिया था कि वह अपने ही घर में नहीं है, अपनी ही मां और अपनी ही बेटी की स्निग्ध सेवा नहीं पा रहा है।

"रामदीन चाचा,·····रामदीन चाचा," पुकारती हुई जमना जब उसकी खाट पर झुक कर उसके सिर पर से कम्बल खींचने लगी थी उस दिन, तब उसे बेहद गुस्सा आ गया था. और जमना की बांह झटक कर उसने कम्बल छुड़ा लिया था और फिर उसमें अपना सारा सिर ढक कर दीवाल की ओर करवट करके वह फिर सोने की कोशिश करने लगा था।

"इतनी देर हो गई, कब तक सोते रहोगे?" जमना फिर भी उसे छेड़े बिना नहीं मानी थी, "चलो जल्दी. अम्मां कबसे बुला रही हैं, बजार जाना है।"

"नींद आ रही है मुझे, जा यहां से," बिना अपना मुंह खोले रामदीन ने कड़ी आवाज में उससे कहा था, और खुद भी नहीं समझ पा रहा था कि आज ऐसे बेवक्त उसे इतनी नींद क्यों आ रही है, इतना जाड़ा क्यों लग रहा है।

"उठो रामदीन चाचा," जमना ने फिर भी उसका पीछा नहीं छोड़ा था, और इस बार उसकी खाट पर ही बैठ कर उसने फिर से उसके सिर पर से कम्बल खींचने की कोशिश शुरू कर दी थी।

"कैसी लड़की है, जरा भी किसी का ख्याल नहीं करती !" इस बार बहुत ही चिढ़ कर रामदीन ने कम्बल में से मुंह निकाला और अपने दुर्वासा-नेत्रों से जमना को उसी क्षण भस्म कर देना चाहा।

"यह क्या !.....तुम्हारी आंखें इतनी लाल क्यों हैं...?" जमना ने उन आंखों से डरने की जगह घबड़ा कर जल्दी से उसके माथे पर अपना हाथ रखते हुए कहा था, "अरे, तुम्हें तो बुखार चढ़ा है रामदीन चाचा...कितना गरम हो रहा है माथा !"

और जमना की उस घबड़ाहट, उसकी उस कातर दृष्टि और वाणी में भरी मीठी ममता की छाया में सोया पड़ा रामदीन फिर और भी न उठा, और भी अच्छी तरह से कम्बल को लपेट-लपाट कर, सिकुड़-सिकुड़ा कर बुखार को सरदी में और भी काँपता हुआ अपनी बीमारी का यह नया रस पाकर उसे सेने के लिये मचल-सा उठा। बुखार का डर उसे उस बार प्रायः बिलकुल ही नहीं हुआ।

जल्दी से जमना दूसरे कमरे में जाकर एक और मोटा-सा कम्बल उठा लाई, और इस बार अपने कम्बल में अपना पूरा सिर न ढँक कर, अपनी अधमिची आंखों से रामदीन अलस भाव से देखता रहा—किस तरह यत्न के साथ जमना ने उस दूसरे कम्बल से भी उसे अच्छी तरह से लपेट दिया, और एक बार फिर उसके माथे पर, और फिर उसके गाल पर, अपना ठण्डा-सा हाथ रख कर बुखार की गरमी का अन्दाज लगाया, और एक बार फिर उसके पास खाट पर बैठ कर, उसकी आंखों के पास अपना चेहरा ले जाकर अपनी स्निग्ध दृष्टि के साथ-साथ स्निग्ध वाणी में उसने पूछा था—"कब से जाड़ा लग रहा था, रामदीन चाचा ? अच्छी तरह ओढ़ा भी नहीं, किसी को बुलाया भी नहीं !...अब कुछ कम लग रहा है जाड़ा ? और लाऊं कुछ ओढ़ने को ?"

और कुछ ही देर बाद जमना ने जाकर अम्मां को खबर दी थी, और वह भी उसके साथ जल्दी-जल्दी आई थीं और उसका माथा छू कर देखा था, और फिर हाथ की नब्ज। और इसके बाद एक दूसरी खाट

पर बिस्तरा बिछा कर उसे उस पर लिटाया गया था, और रजाई ओढ़ाई गई थी। और अम्मां और जमना, कोई न कोई, बराबर उसके पास बैठी ही रही थीं सारी रात, और जब बुखार बढ़ते-बढ़ते वह बेहोश हो गया था और बकने लगा था तब भी बीच-बीच में कुछ होश आने पर वह देखता था कि उन दोनों की स्निग्ध, कातर, चिंतित दृष्टियों से वह घिरा हुआ है।

और जब आधी रात बीतने पर पसीना छूटना शुरू हुआ था और उसके सारे कपड़े गीले हो गए थे, तब दरवाजे-खिड़की बन्द करके अम्मां और जमना ने ही तौलियों से उसका पसीना पोंछा था, और उसके कपड़े बदले थे।...

.....और यह चित्र आंखों के आगे घूमता जा रहा है, और बूढ़े रामदीन की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है—पांच-छः दिन की दाढ़ी के छोटे-छोटे बालों में उलझती-रुकती हुई। और एक बार तो वह बड़े जोर से तड़प कर रो उठा—"अरी तू कहां चली गई अम्मां!" और हिचकियों के मारे उसकी छाती फटने लग गई।

और इतने आंसू बहा कर बूढ़े रामदीन को मानों बिलकुल नई ही आंखें मिली हैं आज; आज इस घर का सारा इतिहास उसे एक नई ही दृष्टि से दिखाई दे रहा है।

आज आठ दिन हो गए उसे बुखार शुरू हुए—और कितनी ही बार बुखार की बेहोशी कुछ टूटने पर आंखें फाड़-फाड़ कर उसने अपने चारों ओर खोजा है अपनी उस पुरानी तस्वीर को। पर कोई नहीं दिखाई दिया—न अम्मां, न जमना! सरजू रमोइया बीच-बीच में कभी कभी उसकी खबर ले जाता है और जिस दिन बुखार की बारी नहीं होती उस दिन एक बार सरला आकर उसके पथ्य के बारे में पूछ जाती है। पर बुखार के दिन वह पड़ा-पड़ा कराहता रहता है, फिर बेहोशी में बेखबर सो जाता है, और उसके बाद जब पसीने में नहाया हुआ जग उठता है तब बाहर बरामदे में सोए हुए सरजू को पुकारते-पुकारते उसका गला सूख

जाता है, छाती धड़कने लगती है, जब कहीं जाकर उसकी नींद टूटती है। और फुरसत के साथ, धीरे-धीरे अँगड़ाई लेता हुआ सरजू आकर उसके पसीने पोंछ देता है, और फिर जाकर सो रहता है, और दूसरे ही क्षण खर्राटे लेने लग जाता है।

और तब रामदीन सोचता है कि अम्मां क्यों यह घर छोड़ कर गईं, क्यों मरीं, क्यों वह भी उनके साथ नहीं चला गया, उनके साथ नहीं मर गया!

अचानक उसे फिर याद आ गया कि कल सारे दिन उसे पथ्य नहीं मिला है, उसके पेट में एक घूंट दूध तक नहीं गया है! परसों रात रोटी खाने के लिये उसका बहुत ही मन चला था, लेकिन पंडित जी की इजाजत नहीं मिली थी और बेहद पतले साबूदाने पर ही उसे सब्र करना पड़ा था। रात भर भूख के मारे वह छटपटाता रहा और कल सबेरे रोटी के लिये वह मचल गया। जब सरला ने आकर बताया कि बुखार की बारी का दिन होने की वजह से पंडित जी ने आज भी साबूदाना ही खाने के लिये कहा है तब रामदीन भीतर ही भीतर कुढ़ कर रह जाने पर भी बोला कुछ नहीं। और जब साबूदाना मिलने का भी वक्त कब का बीत गया और वह नहीं आया तब तो उसके सारे बदन में आग-सी लग गई और उसीमें जलता-भुनता हुआ वह अपनी खाट पर करवटें बदलता रहा, पर आवाज उसने किसी को भी न दी। और जब आठ के बाद नौ, और नौ के बाद फिर दस का भी घण्टा घड़ी में टन-टन करके बज उठा तब भूख और क्रोध से व्याकुल होकर उसने जल्दी-जल्दी कई बार जोर-जोर से सरजू को आवाजें दे डालीं। पर तभी दूसरे कमरे से पंडित जी की डाट आई—"क्यों इतना चीख रहा है पड़ा-पड़ा?" और वह भय और लज्जा से कट कर रह गया।

उसके कुछ देर बाद सरजू आया। और जब रामदीन ने अपना पथ्य न मिलने की शिकायत बेहद तीखी आवाज में की, तब सरजू भी उबल पड़ा—"क्या-क्या काम करूँ मैं अकेला? आज कल्लू भी नहीं

आया है। साबूदाना कब का बना रखा है, पर और कामों से फुरसत मिले तब तो लाऊं!" और फिर थोड़ा नरम पड़ कर बोला—"माफ कीजिये चाचा जी, फिर भूल भी गया था मैं।" और उसने रामदीन के सामने अपने हाथ जोड़ दिये। पर रामदीन ठण्डा नहीं हो सका। जल्दी से दौड़ कर सरजू जब ठण्डा हो साबूदाना उसे पकड़ा कर फिर अपने काम पर तेजी से वापस चला गया तब उसने गुस्से के मारे साबूदाने का वह कटोरा खाट से नीचे जमीन पर धम-से रख दिया और कम्बल ओढ़ तकिये में मुंह गाड़ कर पड़ गया।

कुछ देर के बाद जब कहारिन खाली कटोरा लेने के लिये आई और उसे भरा देख कर लौट गई तब रामदीन को थोड़ा सन्तोष हुआ—अच्छा है, पंडित जी तक बात पहुंचे, और फिर सरला से लेकर सरजू तक सबकी खबर ली जाए आज कस कर।

और इसलिये जब कुछ देर बाद सरला के पांवों की आहट उसे मिली तब उसने दीवाल की ओर करवट करके कम्बल और भी अच्छी तरह से लपेट लिया।

सरला आई और चुपचाप उसकी खाट के पास खड़ी हो गई। रामदीन भी चुपचाप ही पड़ा रहा—न हिला, न डुला; किसी तरह भी इस बात का आभास उसने नहीं दिया कि वह जगा है या सोया। सरला भी जैसी आई थी वैसी ही खड़ी रही—कुछ भी नहीं बोली।

और इस तरह कितने ही क्षण बीत गए।

आखिर रामदीन का धीरज जाता रहा। वह थोड़ा हिला, थोड़ा कम्बल इधर-उधर किया और फिर भी जब काफी देर तक सरला की ओर से कुछ भी नहीं हुआ तब गुस्से से कांपता हुआ वह अचानक उठ बैठा।

पर वह स्तब्ध रह गया। न वहां सरला थी और न साबूदाने का वह कटोरा।

घण्टे पर घण्टे बीतते चले गए, पर कोई भी नहीं आया, किसीने भी उसके खाने की, उसे मनाने की फिक्र नहीं की—सारा घर जैसे सूने

रामदीन की बीमारी, उसकी जलती हुई भूख से बिलकुल बेखबर था !

और रामदीन भूख, क्रोध और मान-अभिमान के ज्वालामुखी में जलता-तपता-उबलता हुआ करवटें बदलता, छटपटाता पड़ा रहा, और उसने कितनी बार अपने भगवान से मनाया कि अगर आज भी बुखार को आना है तो अभी, इसी क्षण, आ क्यों नहीं जाता वह, जला कर भस्म क्यों नहीं कर देता उसे आज ! अब नहीं जीना चाहता वह इस दुनिया में, जहां उसका कोई नहीं रहा, सबके-सब उसे छोड़ चले गए !

और जब आखिर बुखार आकर भी उसे एकदम जला कर खाक किये बिना ही चला भी गया है, तब पसीने में लथपथ और आंसुओं में सराबोर रामदीन की दुनिया ही बदल गई है। और आज वह पहले-पहल देख पा रहा है कि इस रांड़ सरला ने ही आकर इस घर को चौपट किया है—इसकी लक्ष्मी हर ली है। बचपन का अनाथ यह रामदीन अगर सचमुच अनाथ हुआ है तो इस कुलच्छनी के ही इस घर में आने के बाद।

और आज ही वह देख पा रहा है कि अम्मां इस घर को छोड़ते वक्त जो सराप देकर गई थीं वह पूरा सही उतरा है; इस छोटी बहू को सिर चढ़ा कर, इसे मेम साहब बना कर पंडित जी ने इस घर का सत्यानास करके ही छोड़ा है।

और आज अपनी यह नई दृष्टि लेकर बूढ़ा रामदीन पंडित जी के चरित्र के संबंध में भी जीवन में पहली बार सशंक हो उठा है। पंडित जी की अपार शक्ति के प्रति उसकी अब तक जो असीम श्रद्धा थी उसके कारण अब तक वह अंधा बना आंखें रहते भी यह नहीं देख पाया था कि पंडित जी किधर बहते-डूबते चले जा रहे हैं; आज अचानक इस ओर ध्यान जाते ही एक पल में उसके हृदय की सारी श्रद्धा घोर घृणा और ग्लानि में बदल गई। आज पहलेपहल पंडित जी और सरला के रहस्य-पूर्ण, गोपनीय-से संबंध के किसी कुत्सित पहलू पर उसकी निगाह गई है, और जाकर वहीं अटक गई है।

और अब वह समझा है कि यह इस चुड़ैल छोटी बहू का ही जादू था जिसने पंडित जी से अपनी मां तक को घर से निकलवा दिया था। और पंडित जी तथा सरला के प्रति क्रोध और घृणा से बूढ़े रामदीन के ज्वर-जर्जर देह में भी एक अजीब ताकत-सी आ गई और अपनी मुट्ठियां कस कर वह खाट के ऊपर उठ बैठा।

नहीं, इस घर में वह एक दिन भी और नहीं रहेगा, इस नरक में रह कर यहां का अन्न-जल वह नहीं ग्रहण करेगा। अब तक जो कुछ यहां का खाया-पिया है, वही अगर उसकी रक्त-मज्जा में आज जम कर पारे की तरह न बैठ गया होता तो वह इस तरह अन्धा ही क्यों होता, अपनी अम्मां के साथ वह तभी न चला गया होता इस कम्बख्त, चंडाल पंडित की गुलामी छोड़ कर?

पर क्या जा सकेगा वह आज अभी यह दुर्बल देह लेकर, इस घर को छोड़ कर? कैसे जाएगा, कहां जाएगा?

और गहरी चिन्ता के अतल समुद्र में वह डूब गया—कब तक बैठा रहा, पता नहीं, पर थक कर जब वह अवश होकर फिर लेट रहा तब तक कमरे के बाहर बरामदे में सवेरे की हलकी-हलकी रोशनी हो चली थी।

नहीं, वह नहीं रहेगा इस घर में, इस तेजी से बढ़ती आने वाली रोशनी में। अंधेरा···अंधेरा···अंधेरे में ही समा जाना चाहता है वह। और अचानक त्रिवेणी के संगम की नीली-नीली जल-राशि उसकी आंखों के आगे लहरा उठी, और उसके दिल में एक हलचल-सी उठ खड़ी हुई—इस नरक के अन्न-जल से पले इस पाप-देह को गंगा मैया की ही गोद में सौंप देगा वह आज, अब और कहीं उसके लिये कोई जगह नहीं है·····

"रामदीन चाचा!"

रामदीन चौंक उठा—"कौन?···शेखर भैया!" और बूढ़े रामदीन को लगा, मानों वह शेखर गंगा मैया की गोद में से उसे खींच कर बाहर निकाल रहा है। नहीं, वह बाहर नहीं आना चाहता—डूब जाने दो उसे इन लहरों में, गंगा मैया की भंवरों में!

"हमें तो कुछ पता ही नहीं था कि तुम इतने दिन से बीमार पड़े हो," रामदीन की खाट पर उसकी बगल में बैठते हुए शेखर ने अपनी सहज मीठी आवाज में कहा। "कल शाम को पता लगा, धोबिन से..." और रामदीन के माथे पर हाथ रख कर, और फिर उसकी नब्ज टटोलने के बाद कुछ देर चुप रह कर बोला, "इस वक्त नहीं है, पर बड़े दुबले हो गए हो रामदीन चाचा !"

एक सपने-से में डूबा-सा रामदीन अपनी धुंधली-सी पड़ी आंखों से चुपचाप शेखर की ओर ताकता रह गया, बोला कुछ भी नहीं।

"जमना ने तो जब से सुना है बेहद परेशान हो गई है तुम्हारे लिये। कह रही थी, वहां कौन देखभाल करने वाला है, यहीं ले आओ शेखर भैया, अभी ले आओ। पर एक तो रात थी, दूसरे मुझे एक जगह जाना भी था जरूरी—इसीलिये रात नहीं आ सका।"

और बूढ़े रामदीन की दोनों आंखों में से धीरे-धीरे एक-एक बूंद उमड़ कर ढुलक गई।

शेखर स्तब्ध रह गया। रामदीन चाचा की आंखों में आंसू देखने की कल्पना तक वह कभी नहीं कर सकता था। और उसे इनका अर्थ समझते देर नहीं लगी।

"अच्छा, मैं गाड़ी ले आऊं रामदीन चाचा," कुछ और कहने के लिये शब्द न पाकर वह जल्दी से बोल उठा। "तुम, इतने, पंडित जी से कहला दो कि अपने राधे भैया के घर जा रहे हो।" और वह तेजी से उठ खड़ा हुआ।

रामदीन को अपने भीतर इतनी भी शक्ति नहीं मालूम हुई कि वह शेखर को कुछ जवाब दे—हां कहे या ना, गंगा मैया की गोद में जाने की इच्छा को तुरन्त तिलांजलि देकर इस शेखर के साथ चला-चले या नहीं। और शेखर गाड़ी लेने चला भी गया—रामदीन चुपचाप पड़ा देखता ही रह गया।

और तेजी के साथ उसकी आंखो के आगे बचपन से लेकर अब तक

के जमना के कितने ही चित्र नाच गए—जब वह उसे अपने घुटनों पर बिठा कर खिलाया करता था, कंधे पर चढ़ा कर घुमाने ले जाता था, अपनी बांहों में उसे लेकर उछाला करता था—तब से लेकर उस वक्त तक के चित्र जब कि उसका ब्याह हुआ, फिर वह विधवा न होकर भी विधवा बनी, उसका शंकर जनमा, और फिर अपने बाप का घर छोड़ कर वह सुसराल नहीं, अपने बड़े भाई के आसरे जाकर पड़ी, जो खुद अब इस शेखर के सहारे अपनी गृहस्थी की नाव खे रहे हैं। इधर की एक-एक घटना, एक-एक तस्वीर बूढ़े रामदीन के दिल में आज बरछी की तरह चुभ उठी।

नहीं, गंगा मैया की गोद में उसकी जगह नहीं है, अपनी जमना बेटी के खोए सुहाग को वह खोज कर लाएगा—सारी दुनिया में चक्कर काटेगा पर तब तक नहीं लौटेगा जब तक उसे लेकर नहीं आता—इस पंडित के काले पापों का प्रायश्चित उसे करना है, इस नरक के अन्नजल को अपने रक्त से धोकर बहा देना है। (ज्वालादत्त का पता मिल गया है और वह दक्षिण अफ्रीका में मजे में है और उसने दूसरा ब्याह कर लिया है, यह बात उससे भी छिपा कर रखी गई थी।)

और एकदम असहाय और बेबस कर देने वाली इस बीमारी-भर जमना बेटी की स्नेहपूर्ण सेवा पाने के लिये वह बुरी तरह से व्याकुल हो उठा, गाड़ी लेकर शेखर के लौटने में एक-एक पल की भी देरी अब उसे असह्य मालूम होने लगी। और उसी समय सामने के बरामदे में से जाते हुए सरजू को उसने जोर से पुकारा—"सरजू!"

सरजू आकर उसकी खाट के किनारे खड़ा हो गया।

"जा, पंडित जी से कह दे....." रामदीन की आवाज कांप रही थी, सारा बदन कांप रहा था।

"अच्छा जा, मैं ही चलता हूँ।...हैं कहां पंडित जी इस बखत?" अपने भावावेश को दबाने की कोशिश करते हुए सहसा तेजी के साथ, एक अस्वाभाविक रूप से कठोर स्वर में, रामदीन ने पूछा।

"पढ़ने के कमरे में नाश्ता कर रहे हैं।"

और रामदीन के बदले हुए रूप पर मन ही मन हँसता हुआ सरजू रसोइया कुछ तेजी के साथ कमरे से बाहर निकल गया।

[२]

मार्च की शुरूआत है। सबेरे की तरफ अभी भी कुछ ठंढ रहती है। प्रातःकालीन पूजापाठ समाप्त करके पंडित भगवतीचरण पढ़ने-लिखने के अपने कमरे में अब भी पूरब वाली खिड़की के ही पास आरामकुरसी पर बैठ कर नाश्ता करते हैं, जहां कुछ ही देर पहले निकले सूरज की हलकी-हलकी गरम-गरम धूप पंडित जी के सारे बदन को हिला कर सेक देती है। कुछ ही दिन पहले तक इस धूप में काश्मीरी दुशाला ओढ़ कर बैठने की जरूरत पड़ती थी, पर अब उसकी जरूरत नहीं रही है। और आज तो पंडित जी सिर्फ एक रेशमी कुरता पहने इस हलकी धूप में आकर बैठ गए हैं।

कमरे के पूरब-दक्खिन वाले कोने में उत्तर की ओर मुंह किये पंडित जी आरामकुरसी पर सीधे-तने बैठे, आंखों पर चांदी की चमकती हुई कमानी का चश्मा लगाए, एक मोटी-सी किताब अपने हाथ में रखे, पढ़ने में लीन हैं। उनके पीछे और दाहिनी ओर की, दक्खिन और पूरब वाली, खिड़कियां खुली हैं, और दाहिनी ओर से आने वाली धूप ने उनके एक ओर के आधे चेहरे को एक सुनहरी-रुपहली रेशमी-सी आभा में रंग दिया है।

पंडित जी की मूंछें और दाढ़ी इस बीच प्रायः बिलकुल ही सफेद हो गई हैं, बीच-बीच में जहां-तहां दिखाई दे जाने वाले काले बाल उनमें पांच फीसदी से ज्यादा अब नहीं होंगे। झरने पर पड़ती हुई धूप से खिली चांदनी की तरह इस वक्त वहां चांदी ही चांदी बिखरी दिखाई दे रही है।

"टन···टन···टन···टन···"

पच्छिम की दीवाल पर टँगी बड़ी घड़ी ने सात का घण्टा बजाया, और पंडित जी ने किताब के अन्दर निशान रख कर उसे बन्द कर दिया।

सामने के दरवाजे में खड़ा सरजू एक छोटी-सी मेज लाकर आराम-कुरसी की बांहों के बीच में पंडित जी के सामने रख गया और इसी समय सरला नाश्ते की थाली लेकर अन्दर दाखिल हुई। गरम-गरम भाप उड़ाते हलुए से चांदी की चमकती हुई तश्तरी बिलकुल भरी हुई थी, फूल के भारी कटोरे में छलकता हुआ मलाईदार दूध उसके किनारों को छू रहा था, और एक दूसरी चांदी की तश्तरी मे कुछ मेवा थी—अखरोट-गिरी, किशमिश, छुहारे, काजू, वगैरः।

पंडित जी चश्मा उतार कर रख चुके थे; आंखें उठा कर उन्होंने सरला की ओर देखा, जो अब नाश्ते की थाली पंडित जी के सामने की मेज पर रखी रही थी।

सरला भी इस बीच बदल चुकी है। बहुत ही दुबली-पतली थी वह, जब ब्याह के बाद आई थी। अब उसका बदन भर गया है, चेहरे पर कान्ति है, आंखो में रस है। अभी नहा कर पूजापाठ करके आई है, इसलिये लम्बे-लम्बे, गीले, काले-काले बाल पीठ पर बिखरे हुए हैं, और सिर बिलकुल खुला हुआ है। चौड़े काले मखमली किनारे की सफेद धोती और बारीक-बारीक काली बूंदों वाली एक सफेद कमीज—पूरे बांहों की—उसके बदन पर खूब फब रही है। वैधव्य का कोई चिह्न कहीं बाकी नहीं रह गया है—न बदन पर, न मन पर। इस दिशा में एक ही परिवर्तन दिखाई दे रहा है; कांच की चूड़ियों की जगह हाथों में चार-चार सोने की चूड़ियां, और माथे पर लाल-लाल सिंदूर की जगह केसर के पीले चंदन की गोल बिन्दी।

"रामदीन का बुखार उतरा?" पंडित जी ने सरला की ओर आंखें उठा कर, दूध-मलाई से भरी चम्मच अपने मुंह में रखने के बाद पूछा।

"जी उतर चुका है, सरजू देख आया है।"

धीरे-धीरे, तृप्तिपूर्वक, पण्डित जी नाश्ता कर रहे हैं और उनकी कुरसी के बाईं ओर खड़ी सरला यत्नपूर्वक पंखा झल रही है, थाली के आसपास मंडराती हुई दो-एक मक्खियों को दूर रखने के लिये।

दूध समाप्त करने के बाद हलुए का पहला चम्मच पण्डित जी के मुंह में गया ही था कि सामने के बरामदे में रामदीन के खांसने की आवाज सुनाई दी और उसके साथ-साथ नंगे पावों का धम-धम का शब्द, और पण्डित जी ने अपने मुंह के अन्दर हलुए के कौर को निगलने के पहले ही कुछ विस्मय के साथ सरला की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से ताका। सरला भी उत्तरोत्तर इसी ओर बढ़ती आने वाली उस पद-ध्वनि का सहसा कुछ भी अर्थ नहीं समझ सकी।

"पण्डित जी !" अचानक पण्डित जी के सामने वाले दरवाजे में आ खड़े हुए, कम्बल में लिपटे, लड़खड़ाते रामदीन ने जोर से पुकारा।

भोजन के समय किसी प्रकार की भी बाधा पाना पण्डित जी के लिये असह्य होता है; भौंहें चढ़ा कर उन्होंने रामदीन की ओर कठोर दृष्टि से ताका।

और सरला के हाथ का पंखा उसके हाथ में निश्चल हो गया। भौंचक्की-सी वह भी रामदीन की ओर ताकने लगी।

रामदीन कमरे के अन्दर नहीं दाखिल हुआ, चौखट पकड़ कर दरवाजे पर ही झुका हुआ-सा खड़ा हो गया, और चीख कर बोला—"हलुआ खा रहे हो बैठे-बैठे पण्डित !...और मुझे कल सारे दिन साबूदाना भी नहीं मिला !" पण्डित जी की नौकरी पर उनके पास आने के बाद यह पहला मौका था कि रामदीन उन्हें 'आप' न कह कर 'तुम' कह रहा था और 'पंडित जी' की जगह सिर्फ 'पण्डित !' क्रोध और दुर्बलता के मारे वह खड़ा-खड़ा कांप रहा था।

सफाई मांगने की गरज से पण्डित जी ने सरला की ओर दृष्टि फेरी, और उसके घबड़ाए हुए-से चेहरे पर आंखें पड़ते ही उनकी भौंहें ढीली पड़ गईं।

"जी, सरजू काम में भूल गया और···और···" घबड़ाए हुए स्वर में सरला ने सफाई देनी शुरू की, "और जब रामदीन चाचा ने साबूदाना मंगाया तब वह ठण्डा हो गया था।" बूढ़े रामदीन चाचा का यह स्वर, उनकी यह भंगिमा, पण्डित जी के सामने उनका यह गर्जन इतना अप्रत्याशित था, इतना अकल्पनीय, कि वह एकदम लड़खड़ा-सी उठी।

"साबूदाना क्या गरम खाया जाता है?" मेघ-गंभीर कठोर स्वर में पण्डित जी गरज उठे, रामदीन के चेहरे पर अपनी अग्नि-दृष्टि स्थापित करके। हलुए से भरी चम्मच पण्डित जी के हाथ में निश्चल हो गई।

"तुम तो करोगे ही तरफदारी इस छोटी बहू की।" आज जीवन में पहली बार रामदीन ने पण्डित जी के स्वर का, उन्हीं के स्वर में, उनकी भाषा का उन्हीं की भाषा में जवाब देते हुए लड़खड़ाती आवाज में कहा। "अन्धा था मैं पण्डित, अन्धा!···नहीं जानता था, तुम इतने नीचे उतर जाओगे इस···" और लाल-लाल, हिंस्र आंखों से सरला की ओर देखता हुआ रामदीन टूट गया, उसकी बोली गले में घुट कर रह गई।

सरला उस दृष्टि का सामना नहीं कर सकी, न उस निर्मम, कठोर, लज्जास्पद संकेत का ही, जो स्पष्ट उसी के लिये था। और पण्डित जी की ओर देखे बिना ही सहसा वह तेजी से उस कमरे से निकल गई, पश्चिम वाले दरवाजे में होकर।

पण्डित जी के भी जीवन में शायद यह पहला ही मौका था जब ऐसी परिस्थिति का सामना उन्हें इस तरह करना पड़ा हो—अपने विरुद्ध किसी को गरजने का उन्होंने मौका दिया हो और अपनी अग्नि-दृष्टि और मेघ-गर्जन के सामने किसी को पिघलते, झुकते, चूर-चूर होते देखने की जगह, उलटे उसी को वार करते देखा हो।

अभूतपूर्व रूप में एक असहाय, निरपेक्ष भाव से पण्डित जी ने अपनी

दृष्टि रामदीन की ओर से हटा ली और हलुए की रुकी हुई चम्मच अपने मुंह में डाल ली। जल्दी-जल्दी हलुआ खाने और तत्कालीन परिस्थिति से अपने को उदासीन रखने के भगीरथ प्रयत्न में उन्होंने अपने अन्दर के बढ़ते हुए तूफान का मुंह बंद कर देना चाहा।

पर रामदीन का ज्वालामुखी जीवन में आज पहली बार फट निकला था, और जब फट निकला था तो संसार की कोई भी शक्ति अब उसे खौलने-उबलने-उमड़ने से नहीं रोक सकती थी। गरम-गरम लावा, पत्थरों और आग की ज्वाला की बाढ़, आ गई थी—सब का सब निकाल कर बहा देने के पहले अब यह ज्वालामुखी शान्त होने वाला नहीं था। और पण्डित जी शायद रामदीन के चेहरे पर पहली दृष्टि डालते ही यह समझ गए थे।

"कसाई है तू पंडित···कसाई !" 'तुम' से अब 'तू' पर उतर कर रामदीन ने अपनी अग्नि-वर्षा जारी रखी, "एक-एक करके कितनों को खा चुका है तू···अम्मा तेरे पीछे मरी, जमना बिटिया रांड़ न हो के भी रांड़ बन गई···दर-दर मारी-मारी फिर रही है पर अपने बाप के घर में जगह नहीं है अभागिन के लिये···किसने किया यह सब ?···याद है, अम्मां क्या कह के गई थी तेरा यह घर छोड़ के ?···इस छोटी बहू को सिर चढ़ा के सारा घर सत्यानास करके छोड़ा तुमने पंडित !"

और रामदीन का दम फूल उठा, लड़खड़ाता हुआ वह धम से वहीं जमीन पर बैठ रहा। और चुपचाप पण्डित जी की ओर देखता-ताकता वह रह गया, और धीरे-धीरे उसकी आंखों से असहाय क्रोध के आंसू उमड़ चले।

पण्डित जी की आंखें फिर रामदीन के चेहरे पर नहीं पड़ीं। हलुआ समाप्त करके अब वह जल्दी-जल्दी मेवा चबा रहे थे।

"अच्छा, तो मैं चला पंडित," बरामदे में शेखर को अपने लिये खड़ा देख सहसा रामदीन ने अपनी दुर्बलता, अपनी अवश, अवसन्न अवस्था को जोर लगा कर दूर करते हुए जमीन में दोनों हाथ टेक कर

धीरे-धीरे उठ कर खड़े होते-होते तीव्र स्वर में कहा, "जबसे होश संभाला, तुम्हारी अम्मा की गोद में पला ··· जबसे हाथ-पाँव चलने लगे तुम्हारी टहल की·····" न जाने कहाँ से रोग-जर्जर, दुर्बल रामदीन में इस वक्त एक अजीब जोर आ गया था—कांपता, लड़खड़ाता भी वह इस वक्त आग की ज्वाला बना हुआ था—और भावावेश के साथ-साथ उसके गले का स्वर उच्च और तीव्र होता जा रहा था, "हाँ, मैने तुम्हारी टहल की है—टहलुए की तरह नहीं, लछमन की तरह, जैसी लछमन ने राम की की थी ··· राम की !" और क्रोध और घृणा से रामदीन का चेहरा एकदम विकृत हो उठा; अत्यन्त कठोर मुद्रा थी उसकी दांत पीसते हुए अन्तिम शब्द कहते समय—"राम !····· राम ही समझा था मैंने तुम्हें ! तुम्हारी पूजा की थी, तुम्हें कितना बड़ा समझा था !" और एक गगनभेदी अट्टहास गरज उठा रामदीन के मुंह से, उसके वक्षस्थल के गिरि-गह्वर में से गूंजता हुआ।

और सहसा एकदम रुक कर रामदीन पंडित जी के चेहरे पर आँखें गड़ा कर एकटक उनकी ओर ताकने लगा, देखने के लिये कि क्या असर हो रहा है उसके विस्फोट का उनके ऊपर। शायद एक हलकी आशा थी उसकी उस दृष्टि में—कहीं कोई सुनहरी किरण दिखाई दे जाय उसे शायद, इस घर में उसे रोक रखने, आश्रय देने, की सूचक नहीं, स्वयं पंडित जी के उद्धार, उनके इस नरक से उबरने की रोशनी की ओर संकेत करने वाली।

"क्यों ? ··· अब भी इस राक्षसी से पिण्ड छुड़ाओगे अपना, इस माया-मिरिग से ?"

पर रामदीन को सहसा स्तब्ध हो जाना पड़ा पंडित जी के गगनभेदी गर्जन से—"निकल जा इसी वक्त मेरे घर से, हरामजादे ! ···" पंडित जी अपने उग्रतम रूप में सहसा उठ खड़े हुए थे और एक हाथ से अपने सामने की छोटी मेज को हटा, दूसरा हाथ रामदीन की ओर झटकारते हुए वे एक ही दो कदम में रामदीन पर टूट पड़े।

पंडित जी का एक साधारण हलका धक्का ही रोग-जर्जर, लड़खड़ाते रामदीन को गिरा देने के लिये काफी था, गरदन पर पड़े पंडित जी के चपेटे से तो वह लड़खड़ाता, लुढ़कता बरामदे में काफी दूर जाकर गिरा, और उसके बाद लातों और घूंसों से पंडित जी ने जिस तरह उसे धुनना शुरू किया उससे उस दिन रामदीन को बिना स्वयं गंगा मैया की शरण लिये ही गंगा-लाभ हो जाता, अगर बलिष्ठ और निर्भीक शेखर साहस-पूर्वक पंडित जी के पंजे से उसे निकाल कर अपनी गोद में लिये गाड़ी तक न ले गया होता।

न जाने क्यों, शेखर का मुकाबला करने का साहस उस दिन पंडित जी ने अपने अन्दर नहीं पाया।

[३]

रात के करीब नौ बजे का वक्त होगा। खाना खा-पीकर घण्टे डेढ़ घण्टे ऊपर के कमरे में पढ़ने के बाद इस वक्त पंडित जी छत पर के कमरों के सामने वाले बरामदे में अपने पलंग पर आकर लेट गए थे।

आज सरला को नीचे के सारे काम-काज से छुट्टी पाकर ऊपर आने में कुछ देर हो गई है, और जहां अब तक पंडित जी के हाथ-पांव दबा कर उसे और पंडित जी दोनों को सो जाना चाहिये था, वहां वह अभी-अभी आकर पंडित जी के पांव दबाने बैठी है।

कई क्षण बीत गए, पर न पंडित जी ही कुछ बोले और न सरला ही। आज सारे ही दिन दोनों अलग-अलग मानों अपनी ही अपनी दुनिया में रहे हैं। यों, सरला ने पंडित जी की किसी सेवा में कोई चूक नहीं की है, और न पंडित जी ने ही अपने किसी नियम का व्यतिक्रम किया है, पर समय-समय पर यथा-नियम बार-बार निकट आकर भी वे आज बराबर एक-दूसरे से दूर ही दूर रहे हैं।

और इस समय भी पंडित जी शायद अपनी विचार-मुद्रा में ही रहे चले आते, अगर सरला ने ही उसमें बाधा न दी होती।

"अपने बाबूजी के पास चली जाऊँ मैं?" अत्यन्त शान्त, मधुर स्वर में सरला ने सारे दिन का अवसाद-मौन भंग करते हुए धीरे से कहा। कोई शिकायत नहीं थी उसके लहजे में, पंडित जी को चोट पहुँचाने का कोई मंशा नहीं दिखाई देता था उस स्वर में। और पंडित जी की विचार-मुद्रा एकदम टूट गई। "क्या—?" भारी गले की मोटी और खिंची हुई आवाज में वह मानों चौंकते-से बोल उठे। रोशनी बहुत हलकी रहने पर भी पंडित जी के माथे पर चढ़ी हुई रेखाएँ, तनी हुई भौंहें, और उनकी उग्र, कठोर दृष्टि पंडित जी की एक-एक भावभंगी से परिचित सरला की आंखों के सामने चित्रित हो गई।

"मेरा करम फूट चुका है पंडित जी," अत्यन्त गंभीर पर स्वाभाविक स्वर में सरला ने जवाब दिया, "आप कब तक उसके टुकड़े जोड़ेंगे?... कबतक मैं आपके चरणों में बैठ कर, आपकी छाया में पल कर आप ही को खाऊंगी, आपका घर उजाड़ूंगी?..." और सरला टूट चली, उसका गला भर्रा उठा। "मुझे छुट्टी दीजिये..." और पंडित जी के पांवों पर वह वहीं लोट गई, सिसक-सिसक कर रो उठी, मानों कबका रुका बांध टूट गया हो।

और सहसा 'स्प्रिंग' की तरह उछल कर पंडित जी उठ बैठे, और अपनी दोनों बांहों से सरला को अपनी गोद में खींचते हुए गरज उठे—"खबरदार, जो फिर कभी ऐसी बात कही...! तू मुझको छोड़ कर चली जायगी?...किसलिये? किसी की परवा की है मैंने कभी, जो आज करूंगा?"

और धीरे-धीरे सरला के बालों पर, आंसुओं से गीले उसके गालों पर, हाथ फेरते-फेरते पंडित जी ने सहसा उसका सिर उठा अपनी छाती से कस कर लगा लिया।

और इसी तरह कुछ निस्तब्ध क्षण बीतने लग गए।

"घबड़ाने की कोई बात नहीं है सरले!" एक अजीब नरम स्वर में पंडित जी ने कुछ देर बाद कहना शुरू किया, "तुझे मैं बीच-गंगा में डूबने

के लिये नहीं छोड़ सकता। कौन तुझे इस जीवन में सुख दे सकता है अब, मेरे सिवा ?..... और मेरा सुख ? मेरा सुख जहां है वह मैं भी जानता हूँ और तू भी। दुनिया में ऐसा कोई नहीं है जो पंडित जी के रास्ते में आ सके, मेरे सुख में रुकावट डाल सके।... मुझे किसीकी परवा नहीं है," पंडित जी का स्वर सहसा फिर तेज हो चला, "मैं और किसी को अपना नहीं मानता।.. तू ही मेरी दुनिया है और तेरे लिये मैं सब कुछ करूँगा।...राधे गया, जमनी गई, और आज रामदीन भी चला गया," पंडित जी का गला अजीब ढंग से चढ़ता-उतरता चल रहा था, "लेकिन तू नहीं जा सकती। तेरे लिये मैं किसी समाज की परवा नहीं करता।... मैं नया समाज बनाऊंगा, तेरे लिये और अपने लिये। यहां जो रहेगा, जो आएगा, तेरे सामने माथा टेकेगा....." और भावावेश में पंडित जी का कण्ठरोध हो गया।

धीरे-धीरे, कुछ देर बाद, वह शान्त हो गए। सरला की भी आँखें सूख चलीं।

अपनी बलिष्ठ बांहों में अपनी छाती पर सरला को जकड़े, बड़ी देर पंडित जी उसी तरह पलंग पर बैठे रहे, और जब उनको होश-सा आया और उन्होंने देखा कि वह इसी तरह सो गई है, उनकी बांहों में ही ढुलक गई है, तब धीरे-धीरे उसे अपनी बाँहों में ही लिये वह पलंग से उतर कर उठ खड़े हुए और पास ही बिछे उसके पलंग पर ले जा कर उसे इस तरह कोमलतापूर्वक सुला दिया और ऊपर से चादर ओढ़ा दी, मानों वह एक नन्ही-सी बच्ची है, और वह उसकी मां हैं।

पर सरला अब जग गई थी। और इतनी थोड़ी ही देर में उसने एक मीठा सपना देख लिया था।

कुछ देर नींद से सोए रहने का स्वांग रचे हुए वह उस सपने की तस्वीर अपने मन की आंखों के आगे दुहरा गई। सबेरे का ही दृश्य था, जबकि पंडित जी की क्रोधाग्नि में कूद कर शेखर ने बूढ़े रामदीन चाचा को उनसे छीन लिया था। दरवाजे की ओट से सब कुछ देखा था सरला

ने, और वह स्तब्ध रह गई थी। किस तरह तेजी से झपटते हुए शेखर लाला आ पड़े थे पंडित जी और रामदीन चाचा के बीच, और किस तरह पंडित जी के उठे हुए हाथों को उन्होंने रोक दिया था और उनकी बढ़ी हुई लात को बेकार बना दिया था। और कितनी कड़ी और निडर आंखों से उन्होंने ताका था पंडित जी की ओर! और सरला को बेहद ताज्जुब हुआ था जब शेखर लाला रामदीन चाचा को अपनी बांहों में उठा कर ले गए और पंडित जी खड़े-खड़े ताकते ही रह गए, और फिर चुपचाप लड़खड़ाई-सी चाल से अपने कमरे में लौट गए।

पूरी की पूरी यही तस्वीर थी इस सपने की, सिवा एक बात के। रामदीन चाचा की जगह सपने में सरला खुद थी, जिस पर पंडित जी की मार पड़ी थी और जिसे पंडित जी के पंजे से छुड़ा कर शेखर लाला अपनी बांहों में उठा कर चल दिये थे। बहुत डर लग रहा था सरला को सपने में, और वह शेखर की बांहों में जकड़ी और भी जोर से उनसे चिपट गई थी।

एक गुदगुदी-सी मच गई सरला के प्राणों की गहराई में, एक बिजली सी दौड़ गई उसके बदन में—एक छोर से दूसरे छोर तक।

तेजी से वह उठ कर अपनी खाट पर बैठ गई, और लेटे हुए पंडित जी की ओर मुंह करके बोली—"जी···सो गए आप?"

"नहीं तो," पंडित जी ने तकिये पर रखा अपना सिर उसकी ओर घुमा कर मुलायम पर गंभीर स्वर में जवाब दिया, "तू जग गई?"

"जी, क्षमा चाहती हूँ," मीठी आवाज में सरला ने कहा, "न-जाने कब नींद आ गई।"

"आ जा यहां," अपने पलंग पर सरला के लिये जगह बनाते हुए पंडित जी ने बहुत ही कोमल होकर कहा, और सरला उठ कर उनके पास चली गई। पंडित जी ने उसे अपनी बांहों में लपेट लिया।

कुछ क्षण इसी तरह बीते, फिर कुछ मिनट।

"जी, एक बात कहनी थी," उनकी एक बांह पर सिर रखे-रखे ही सरला ने अचानक कहा।

"कहती क्यों नहीं है ?" पंडित जी ने अभय दिया।

"जी, कोयल के लिये एक वर आया है मेरी निगाह में," नम्रता-पूर्वक सरला ने कहना शुरू किया, "आपकी आज्ञा हो तो कोशिश करूं..."

"कोयल का ब्याह तो तेरी ही मर्जी से होगा, मुझे क्या करना है," पंडित जी ने सहज स्वर में जवाब दिया। "तू जो चाहे कर, मैं दखल नहीं दूंगा।"

"जी, मैं तो आपकी दासी हूँ, मेरा तो कर्त्तव्य है आपकी आज्ञा लेना," सरला मीठे-मीठे बोली।

और पंडित जी एक तृप्त हँसी हंस पड़े। "अच्छा तो बता फिर, किस पर निगाह गई है तेरी ?" उन्होंने कहा।

"जी...जी...कैसे कहूँ ?...आपको बुरा तो नहीं लगेगा..." हिचकिचाती हुई सरला बोली।

"धत् पगली ! बतला कौन है ? मैंने कह नहीं दिया कि मैं दखल नहीं दूंगा ?" पंडित जी फिर हंसते हुए बोले और सरला को एक बार फिर और भी जोर से अपने आलिंगन-पाश में जकड़ लिया।

"जी, शेखर लाला !" पंडित जी का बाहु-पाश कुछ ढीला होने के बाद सरला बोली, पर उसका गला सूख-सा चला। न-जाने पंडित जी का क्या रुख हो ? और अपनी घबड़ाहट छिपाने के लिये उसने साथ ही साथ सफाई भी देनी शुरू कर दी — "अभी तक फिर उन्होंने ब्याह नहीं किया है..., हमारी कोयल अब बीस साल की हो रही है....., अपना छोड़ और कौन ब्याह करेगा अब उससे....."

"तो डरती क्यों है इतनी, पगली ?" पंडित जी ने प्यार की एक चपत सरला के गाल पर जमाते हुए कहा, "शेखर क्या मुझे बुरा लगता है ?...बुला उसे मेरी ओर से कल यहां।...बस, अब खुश हुई न ?"

"जी," सरला ने गद्‌गद स्वर में कहा और उसने पंडित जी की छाती में और उनकी दाढ़ी में अपना मुंह गाड़ दिया।

[४]

और इस घटना के कोई तीन महीने बाद एक दिन शुभ-लग्न में शेखर के साथ कोयल का ब्याह हो गया। जमुना को सबसे बड़ा दुख यही था कि शेखर भैया ने उसके कहने से जो ब्याह नहीं किया वही सरला भाभी के कहने से कर डाला।

और उसे सबसे बड़ा भय भी यही था कि कोयल के साथ-साथ अब उसके छोटे भैया भी क्या उस चुड़ैल सरला भाभी के जाल में फंस कर रहेंगे!

पर वह कर ही क्या सकती थी? उसको पता ही नहीं लगा कि कब उसके छोटे भैया उस सोने की हिरनी के जाल में फंस गए। उसे वक्त ही कहां मिला था इधर, इन तीन महीनों में, कुछ देखने और समझने का! उसकी बड़ी भाभी ने इन्हीं दिनों एक नन्हीं-सी बच्ची जनी, और खुद मरते-मरते मुश्किल से बचीं। और शेखर भैया ने भनक भी नहीं दी कि क्या चल रहा है उनके मन में, क्या-क्या कर रहे हैं वह अपनी जमना बीबी से छिपा कर।

और जब एक दिन आकर उन्होंने शर्माते-शर्माते उससे खुद ही यह कह डाला कि कोयल से ब्याह करने को वह राजी हैं, तब जमुना ही भला किस मुंह से, और किस बहाने उन्हें मना करती?